बच्चों का स्वास्थ्य और उन के रोग

आरोग्य-मन्दिर-प्रकाशन

बच्चोंका स्वास्थ्य और उनके रोग

[बच्चोंके स्वस्थ रखने और उनके रोग-निवारणकी सरल विधि]

संपादक
विट्ठलदास मोदी

आरोग्य-मंदिर-प्रकाशन

प्रधान विक्रेता : सस्ता साहित्य-मंडल, कनॉट सर्कस, नयी दिल्ली

तीसरी बार : १९७६

मूल्य : [illegible] रुपया

प्रकाशक
आरोग्य-मंदिर
गोरखपुर

मुद्रक
इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस,
इलाहाबाद

भूमिका

प्रकृतिने बड़ी बुद्धिमानीके साथ अपनी सृष्टिकी रक्षा करने और उसका क्रम जारी रखनेकी व्यवस्था की है। जिन लोगोंमें पर्याप्त शारीरिक और मानसिक शक्ति नहीं होती, उन्हें वह साधारणतः संतानका मुख देखनेका अवसर ही नहीं प्रदान करती। अगर अयोग्य व्यक्ति प्रजनन-कार्यमें प्रवृत्त हों और किसी प्रकार गर्भाधान हो भी जाय तो पहले तो गर्भके टिकनेकी ही संभावना नहीं रहेगी और अगर टिक भी जाय तो या तो बच्चा गर्भमें ही मर जायगा या जीवित जन्म भी ले तो वह कुछ ही घंटोंका मेहमान होगा।

वंशागत दोष

कुछ बच्चे पैतृक दोषके साथ जन्म लेनेपर भी जीवित रहते हैं। इस दोषका संबंध सीधे माता-पितासे होना जरूरी नहीं है, ऊपरकी पीढ़ियोंसे भी हो सकता है। प्रायः कहा भी जाता है कि बच्चेके स्वास्थ्यकी नींव नानीकी कोखमें पड़ा करती है। इस प्रकारके दूरागत दोषका स्वास्थ्यपर पड़नेवाला प्रभाव जितना लोग साधारणतः समझा करते हैं उससे कहीं अधिक हुआ करता है। ऐसे दोषपर विजय पाना कुछ कठिन भी होता है और वह आरंभसे ही बच्चेके स्वास्थ्य और जीवनमें बाधक होने लगता है। लालन-पालनकी अच्छी-से-अच्छी सुविधा प्राप्त होनेपर भी ऐसे बच्चे प्रायः अस्वस्थ रहा करते हैं।

स्वास्थ्यका दायित्व

विकारके साथ जन्म लेनेवाले बच्चोंमें अधिक संख्या माता-पितासे प्राप्त दोषवाले बच्चोंकी ही होती हैं। स्वस्थ संतानकी उत्पत्तिमें पिताके स्वास्थ्यका कितना हाथ होता है इस बातको पिता कभी-कभी नहीं समझ

पाता और सारा दायित्व मातापर ही डाल दिया करता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि बच्चेके निर्माणका कार्य करनेके कारण माताके स्वास्थ्यका उसपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है, पर भावी संतानके स्वास्थ्यका दायित्व वस्तुतः दोनोंपर होता है।

चूंकि बच्चा माताके शरीरमें ही अपना रूप ग्रहण करता और बढ़ता है इसलिए उसपर माताके रक्तका, जिससे गर्भमें उसे पोषण प्राप्त होता है, प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। एक तो पोषणाभाव आदिके कारण माताका रक्त इतना अल्प हो सकता है कि बच्चेको पर्याप्त पोषण ही न मिल सके जिससे वह बहुत दुबला-पतला और कमजोर हो सकता है; दूसरे रक्तकी मात्रा पर्याप्त होते हुए भी हो सकता है कि वह बच्चेके लिए उपयुक्त न हो; क्योंकि माताका आहार ऐसा हो सकता है कि उससे रक्त तो काफी बने, पर उसमें बच्चेके निर्माण और स्वास्थ्यके लिए आवश्यक कुछ तत्वोंका अभाव हो। उदाहरणार्थ, अगर उसमें कैलसियम या फासफोरसकी कमी हो तो बच्चेकी अस्थियों और दांतोंका निर्माण ठीक तरहसे नहीं हो सकेगा और उसके अस्थिवक्रता, दंतक्षय आदि रोगोंका शिकार होनेकी बहुत अधिक संभावना रहेगी। इसके अतिरिक्त माताकी मानसिक अवस्थाका भी रक्तपर कम प्रभाव नहीं होता जो गर्भस्थ बच्चेके लिए हानिकारक हो सकता है।

खैरियत यही है कि उपर्युक्त दोषोंके साथ जन्म लेनेवाले बच्चोंकी संख्या अधिक नहीं होती, अधिकांश बच्चे जन्म ग्रहण करते समय स्वस्थ ही होते हैं और प्रकृति यही चाहती है कि वे आजीवन स्वस्थ ही बने रहें, पर साधारणतः ऐसा होता नहीं। शैशवकालसे ही रोगोंका आक्रमण आरंभ हो जाता है और यह सिलसिला जीवनपर्यंत चलता रहता है। जहां नियमतः शत-प्रतिशत व्यक्तियोंको स्वस्थ होना चाहिए, वहां प्रायः सभी लोगोंके किसी-न-किसी रोगसे ग्रस्त या रोगकी प्रवृत्तिसे युक्त होनेका ही नियम हो गया है। ऐसी अवस्थामें अगर ऐसा कोई आदमी देख पड़े जो आजीवन स्वस्थ रहा है तो उसे अपवाद ही समझना चाहिए। प्रश्न यह है कि यह विपर्यय होता क्यों है?

रोग क्यों ?

साधारणतः बच्चे अयुक्त और अति आहारके ही कारण रोगोंके चंगुलमें फंसते हैं और आहारसंबंधी यह दोष गर्भावस्थामें ही आरंभ हो जाता है। एक तो तथाकथित सभ्यताकी कृपासे खान-पानकी आदतें पहलेसे ही बुरी होती हैं, दूसरे, गर्भाधान हो जानेपर एक और प्राणीका निर्माण होनेकी बातके आधारपर भूलसे माताएं यह समझ लेती हैं और साथ ही अन्य लोगोंकी भी राय होती है कि अब दोके लिए खाना आवश्यक है। परिणाम यह होता है कि गर्भमें ही बच्चेका शरीर विजातीय द्रव्यसे भर जाता है, जो रोगका क्षेत्रनिर्माण करनेके साथ-साथ प्रसवमें भी कष्टका कारण होता है। बच्चेके जन्म लेनेपर भी अतिआहारका सिलसिला बंद नहीं होता, बच्चेको मोटा-ताजा देखनेका माताका हौसला आवश्यकता न होनेपर भी दूध पिलाते रहने या तरह-तरहके कृत्रिम आहार देते रहनेको बाध्य करता है जिससे बच्चेकी पाचनशक्ति खराब हो जाती और सर्दी, मसूरिका आदि रोगोंका आक्रमण होने लगता है। दुर्भाग्यकी बात तो यह होती है कि कीटाणुवादके भ्रांत सिद्धांतसे प्रभावित होनेके कारण इन रोगोंका कारण लालन-पालनसंबंधी दोष न माने जाकर बाहरसे आये हुए कीटाणु माने जाते हैं और रोगसे छुटकारा दिलानेके लिए लालन-पालनसंबंधी दोषोंको दूरकर सुधारके कार्यमें प्रवृत्त शरीरकी प्राकृतिक शक्तिकी सहायता करनेके बजाय विषौषधोंके प्रयोगद्वारा रोगके लक्षणोंको दबानेका प्रयत्न किया जाता है जिससे रोगका मूल रूप ज्यों-का-त्यों बना रह जाता है जो काल पाकर जीर्णावस्थामें परिणत हो जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक कारणोंसे भी बच्चेके स्वास्थ्यमें खराबी आया करती है, पर खेदकी बात है कि हमारे देशमें स्वास्थ्यके इस पहलूपर बहुत कम ध्यान दिया जाता है। मन और शरीरमें अन्योन्याश्रय संबंध होनेके कारण दोनों एक-दूसरेसे निरंतर प्रभावित होते रहते हैं और एककी अवस्था

बुरी होनेपर दूसरेकी अवस्था भी खराब हो जाती है और फिर इस दुष्प्रभावका एक चक्र ही बन जाता है जो बराबर चलता रहता है। यदि बच्चेको पूर्णतः स्वस्थ रखना अभीष्ट हो तो उसके मानसिक स्वास्थ्य और विकासपर ध्यान देना और भी आवश्यक है; क्योंकि मनके शरीरका शासक होनेके कारण उसका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक होता है।

स्वास्थ्यकी नींव

आजके बच्चे ही कल राष्ट्रके नागरिक होंगे और वही राष्ट्र सबल और समृद्ध हो सकता है जिसके नागरिक स्वस्थ और शक्तिशाली होंगे, पर इस स्वास्थ्य और शक्तिकी नींव आरंभिक अवस्थामें ही डाली जा सकती है। जिस तरह कमजोर नींववाले मकानपर दूसरी मंजिल नहीं बनायी जा सकती और अगर बनायी भी जाय तो वह कुछ ही दिनोंके अंदर धराशायी हो जायगी उसी प्रकार अगर गर्भावस्था और शैशवकालमें किसी पैतृक या लालन-पालनसंबंधी दोष या गलत उपचारके कारण बच्चेके स्वास्थ्यका निर्माण नहीं हो सका, नींवमें दृढ़ता नहीं आ सकी तो बच्चा जीवित भी रहा तो वह बराबर अस्वस्थ और रोगी बने रहनेके कारण स्वयम् तो सुखमय जीवन व्यतीत कर ही नहीं सकेगा, परिवार-वालों और कुछ हदतक समाजके लिए भी बोझ बना रहेगा। इसलिए माता-पिताका लालन-पालन, रोग और उपचार तथा मानसिक स्वास्थ्य-संबंधी सिद्धांतोंसे परिचित होना आवश्यक है। आशा है, यह पुस्तक इस आवश्यकताकी पूर्ति मजेमें कर सकेगी।

पुस्तकका ढांचा तैयार करनेमें 'आरोग्य'में प्रकाशित लेखोंका मुख्य रूपसे सहारा लिया गया है और रैस्मस अल्सेकर, हैरी बेंजामिन, हैरी क्लीमेंट्स, मार्गरेट ब्रेडी, बर्नर मैकफैडन आदि विशेषज्ञोंकी पुस्तकोंसे भी आवश्यकतानुसार सहायता ली गयी है जिसके लिए हम उनके आभारी हैं।

अगर इस पुस्तकसे भावी राष्ट्रके स्वास्थ्य-निर्माणमें थोड़ी भी सहायता मिली तो हम अपना प्रयत्न सफल समझेंगे। —संपादक

विषय-सूची

बच्चोंका स्वास्थ्य और उनके रोग

बच्चोंका अपूर्ण पोषण

जीवनमें सफलता प्राप्त करनेके जितने भी साधन हैं उनमें सशक्त शरीर ही सबसे मुख्य है और उसीपर अन्य सब साधन निर्भर हैं। आप अपने बच्चेके भविष्यके लिए क्या कर रहे हैं? क्या आप उसे ऐसे शरीरके निर्माणमें सहायता दे रहे हैं जो सशक्त हो और भावी जीवनमें पड़नेवाला भार संभाल सके?

छात्रोंके स्वास्थ्यका परीक्षण करनेवाले एक डाक्टरका मत है कि लगभग सत्तर प्रतिशत छात्रोंमें अपूर्ण पोषणका प्रभाव दिखायी पड़ता है। बहुतोंमें पाया जानेवाला दंतविकार इसीका परिणाम है। रोग-निवारणके तरह-तरहके उपायोंके होते हुए भी आज बच्चोंको होनेवाले रोगों—शीतला, इनफ्लुएंजा आदि—की व्यापकतामें कोई कमी नहीं देख पड़ती और इन संक्रामक रोगोंका कारण, दुष्ट कीटाणु नहीं हैं जिनके मत्थे बच्चोंको होनेवाले सारे रोगोंका दोष मढ़ दिया जाता है; मुख्य कारण अपूर्ण पोषण है जो कोमल शरीरकी रोगोंका प्रतिरोध करनेवाली शक्तिका ह्रास कर देता है।

परिचायक लक्षण

अपूर्ण पोषण छोटे बच्चोंके लिए सबसे बड़ा घातक सिद्ध होता है। अगर कीटाणुओंने हजारोंका अंत किया होगा तो अपूर्ण पोषणने लाखोंका। एक विशेषज्ञने अपूर्ण पोषणके शिकार बच्चेका चित्र इस प्रकार अंकित किया है—वह आमतौरपर पतला होता है पर मोटा और अशक्त भी हो सकता है; उसका चमड़ा बदरंग, नाजुक, मोम—जैसा और मटमैला भी हो

सकता है; उसकी आंखोंके नीचे काले धब्बे होंगे और पलकोंके नीचे और मुंहके अंदरकी श्लैष्मिक कला पीली या बदरंग हो सकती है; उसके बाल रुखड़े होंगे; जीभपर मैल जमी होगा और कोष्ठबद्धता बनी रहेगी; उसकी पेशियां पिलपिली और अविकसित होंगी; कंधे गोल और सीना चिपटा और तंग होगी; दांत गले होंगे और टौंसिल भी बढ़े हो सकते हैं; स्वस्थ बच्चोंमें जो स्वाभाविक स्फूर्ति होती है उसका उसमें अभाव होगा; खेलमें या काम करनेमें वह अनवधान होगा, जल्द थक जायगा और प्रायः सुस्त समझा जायगा; उसमें मनोयोगशक्ति बहुत कम होगी और बच्चोंमें जिज्ञासाकी जो स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है उसका भी उसमें अभाव होगा; आंखों और चेहरेसे मुर्दनी और सुस्ती व्यक्त होती रहेगी, उसका स्वभाव चिड़चिड़ा होगा और उसपर नियंत्रण करना भी कठिन होगा; वह अजनबी लोगोंसे बराबर डरता रहेगा; उसका दिल-दिमाग कमजोर होगा, बेचैन रहेगा, अच्छी नींद नहीं आयेगी और अपने भोजनके संबंधमें खुचुर करता रहेगा ।

इन छोटे-बड़े बहुसंख्यक लक्षणोंके मौजूद रहते आश्चर्यकी बात है कि हजारों माता-पिता इस अपूर्ण पोषणकी अवस्थापर जरा भी ध्यान नहीं देते और तबतक निश्चिंत पड़े रहते हैं जबतक चेचक या लोहित ज्वरका आक्रमण अंदरकी सड़ी-गली अवस्थाकी सूचना देकर उन्हें सचेत नहीं करता । फिर भी भ्रांत कीटाणुवादसे पुष्ट उनका अज्ञान असल कारण—अपूर्ण पोषण—की ओर उनका ध्यान नहीं जाने देता ।

आहारकी सदोषता

कोई माता कह सकती है कि 'इस तरहके कुछ चिह्न मेरे बच्चेमें नजर तो जरूर आते हैं, पर मैं कभी कम नहीं खिलाती, बल्कि इसके विपरीत बच्चेको काफी पोषक आहार दिया जाता है ।' उसका भोजन वस्तुतः कितना पोषक होता है, उसपर ध्यान देनेसे स्थिति स्पष्ट हो जायगी । सुबह नाश्तेमें कचौड़ी, हलवा, मुरब्बे (जो आमाशयमें अम्ल पैदा

करते और दांत विकृत करते हैं) आदि दिये जाते हैं और दिन तथा रातके भोजनमें मैदेकी रोटी या पूरी, मशीनका चावल, मसालेदार तरकारी, मांस आदि रहते हैं। आश्चर्यकी बात यह नहीं है कि वह कमजोर या विवर्ण देख पड़ता है, बल्कि आश्चर्य तो यह है कि उसका अस्तित्व अभीतक बना हुआ है और वह चल-फिर भी लेता है। ठीक है, आहार तो काफी दिया जाता है, पर कैसा ? वह ९५ प्रतिशत अयुक्त तो होता ही है, अगर बच्चा उसके प्रति अनिच्छा प्रकट करता है तो जबर्दस्ती उसके गलेके नीचे उतारा जाता है।

आज हमारे देशमें यही अयुक्त आहार करोड़ों बच्चोंको दिया जा रहा है। आहारसंबंधी खास-खास गलतियां हैं—बहुत अधिक या बार-बार खिलाना बहुत अधिक चीनी या मिठाइयां खिलाना, श्वेतसारकी अधिकता, तंतुओंकी क्षतिपूर्ति या निर्माण करनेवाले तत्त्वों—पके ताजा फल, सूखे फल, हरी तरकारियां सलाद आदिकी कमी, पूर्णान्नसे बनी हुई चीजें न देकर मुलायम और बारीक चीजें देना और जबड़ों और दांतोंसे काम न लेना, दूध या दूधसे बने हुए पदार्थ अधिक देना जिससे टॉंसिलकी वृद्धि, कब्ज आदि होते हैं।

अन्य कारण

गलत आहारके अलावा अपूर्ण पोषणके और भी कारण होते हैं। अपर्याप्त निद्रा, क्लांति और भावात्मक तनाव या उत्तेजना भी प्रायः इसका कारण होती है। सोना भोजन—जैसा ही लाभदायक होता है। अपुष्ट बच्चोंपर हुए प्रयोगसे पता चला है कि आहार ठीक कर देनेपर भी निद्राकी मात्रा पर्याप्त न होनेपर साधारण रूपमें जितनी बाढ़ होनी चाहिए उतनी नहीं हो पाती। बच्चोंको सात-आठ बजेतक सो जाना चाहिए।

शुद्ध वायु और धूपका पर्याप्त रूपमें न मिलना भी अपूर्ण पोषणका एक मुख्य कारण है। सूर्यकी किरणोंमें एक तत्त्व है जो खाद्य पदार्थोंके

अभिशोषणके लिए अनिवार्य रूपमें आवश्यक है। पहले यह समझा जाता था कि आहारसे विटामिनोंकी अच्छी प्राप्ति न होनेपर ही अस्थि-वक्रता होती हैं, पर विटामिनोंकी प्राप्ति होनेपर भी इस रोगका होना जारी रहा और धूप अच्छी तरह मिलनेपर ही बच्चे नीरोग हुए।

हमारी गरीबी इसमें कहांतक सहायक होती है, इसके संबंधमें तो कुछ कहना ही बेकार है।

नवजात शिशुओंका सर्वोत्तम आहार

कृत्रिम और प्राकृतिक आहार

शिशुओंको पोषण प्रदान करनेका प्राकृतिक ढंग ही सर्वोत्तम है यह स्वीकार करनेमें किसीको आपत्ति नहीं होगी।

कृत्रिम खाद्य पदार्थोंके संबंधमें जानने योग्य एक विशेष बात यह है कि गायका दूध प्राप्तकर बच्चोंके लिए उसे तैयार करनेमें जितना व्यय होता है उसके अल्पांशमें ही मानव-दुग्ध प्रस्तुत हो सकता है। दूसरी बात यह है कि कृत्रिम आहार चाहे जितना भी अच्छा हो वह कभी प्राकृतिक आहारका मुकाबला नहीं कर सकता है। ऐसा शायद ही कोई उदाहरण देख पड़े जिसमें कृत्रिम आहार माताके दूधसे अच्छा प्रमाणित हो। स्तन-पायी बच्चे इतने तगड़े तो नहीं होते, पर वे अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होते हैं; न तो उन्हें जुकाम होता है और न पाचन खराब होता है। कठिन शारीरिक कष्टोंको भी वे बड़ी आसानीसे झेल लेते हैं। इस सुंदर आरंभका उनके भावी जीवनपर भी गहरा असर होता है।

स्तनपायी बच्चोंके बहुतसे रोगोंसे बचे रहनेका कारण यह होता है कि वे माताके शरीरसे स्वास्थ्यवर्द्धक कीटाणुओंको प्राप्त करते हैं। ये उनकी आंतमें प्रगति कर एक तरहका विटामिन उत्पन्न करते हैं जो शरीरमें निरोध-शक्ति उत्पन्न करता है। जो बच्चे निष्कीटित (स्टर-लाइज्ड) दूधके आहारपर रखे जाते हैं उन्हें जीवनके आरंभिक कालमें ही उक्त कीटाणुओं और उनके उत्पन्न किये हुए शक्तिप्रद विटामिनसे वंचित हो जाना पड़ता है जिससे पीछे उनके स्वास्थ्यको क्षति पहुंचनेकी संभावना रहती है।

प्रेमका वातावरण होनेपर तो उनकी आश्चर्यजनक वृद्धि होती है और

वे माताके दूधके हर एक घूंटके साथ प्रेम ग्रहण करते हैं। खोजसे पता चला है कि प्रथम वर्षमें जहां माताका दूध पीनेवाला एक बच्चा मरता है वहां बोतलसे दूध पीनेवाले छहसे तेरह बच्चेतक मरते हैं। बोतलसे दूध पीनेवाले बच्चोंको आरम्भमें ही आगे बढ़नेका आधार नहीं मिल पाता। हां, अगर माता अच्छी स्थितिमें या नीरोग न हो तो उसे दूध नहीं पिलाने देना चाहिए। कुछ माताओंको बच्चेके लायक काफी दूध नहीं होता। अगर उनका खान-पान और रहन-सहन ठीक हो तो यह त्रुटि नहीं आने पायेगी।

अप्राकृतिक आहार ऐसे बहुतसे रोगोंका कारण होता है जो कई वर्षोंतक प्रकट नहीं होते। बोतलसे दूध पीनेवाले बच्चोंका बदन भरा होता है और वे मोटे भी होते हैं जिससे कुछ लोग उन्हें स्वस्थ समझने लगते हैं, पर यह भूल है; दरअसल उनमें स्तनपायी बच्चोंके बराबर शक्ति नहीं होती और उन्हें जल्द ही सब तरहके रोग घेर लेते हैं। ग्रंथि-संस्थानपर, जो बचपनमें बहुत जल्द खराब होता है, बोतलसे दूध पिलानेका बहुत बुरा असर होता है; लालाग्रंथियों आदिके शोथका यही मुख्य कारण होता है।

यही नहीं, आंतोंकी गैससे उत्पन्न होनेवाले रोगोंसे मरनेवाले बच्चोंमें ८० से ९० प्रतिशततक कृत्रिम रूपसे खिलाये जानेवाले बच्चे होते हैं।

सर्वोत्तम क्यों ?

बच्चेके लिए माताका दूध सर्वोत्तम आहार इस कारण है कि उसमें पोषणके लिए आवश्यक सभी पदार्थ उचित मात्रामें मौजूद रहते हैं। हां, कुछ ऐसी विशेष अवस्थाएं जरूर होती हैं जिनमें गायका तैयार किया हुआ दूध अधिक लाभदायक हो सकता है। इसका एक कारण तो यह है कि गायके दूधमें अस्थिका निर्माण करनेवाले खनिज द्रव्य अधिक मात्रामें होते हैं, इसलिए अगर लघुकाय, अपुष्ट बच्चोंको गायका दूध दिया जाय तो अच्छा लाभ होगा, पर अगर माताके दूधमें ही ये तत्त्व मिला दिये जायं

तो और अधिक लाभ होगा। दूसरा कारण है गायके दूधमें स्त्रीके दूधकी अपेक्षा बी० वर्गके विटामिनोंका अधिक होना। अगर माताके आहारमें ही ये विटामिन शामिल कर लिये जायं तो उसका दूध अधिक अच्छा प्रमाणित होगा। तीसरा कारण यह है कि स्तनपायी बच्चोंमें गायके दूधपर रहनेवाले बच्चोंकी अपेक्षा शूलकी प्रवृत्ति अधिक होती हैं; पर बच्चे इस शूलके प्रभावका तो निराकरण कर सकते हैं, अयुक्त आहारके प्रभावका निराकरण उनके लिए कठिन होता है। इसलिए विशेष अवस्थावाले अपुष्ट बच्चोंको छोड़कर औरोंके लिए कोई भी पदार्थ माताके दूधकी समता नहीं कर सकता।

माताके दूधमें आवश्यक सारे पदार्थ—जल, प्रोटीन, वसा, खनिज-लवण, शर्करा, विटामिन आदि—ही पर्याप्त मात्रामें मौजूद नहीं होते बल्कि कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जो आमाशय आदिके रसके साथ मिलकर बच्चेके लिए दूधका पचकर अभिशोषित होना सरल बना देते; हैं। दूधमें वर्तमान रहनेवाले कुछ तत्त्व शरीरके अन्य किसी भागमें, यहांतक कि प्रकृतिमें भी कहीं नहीं पाये जाते, केवल दूधका स्राव करने वाले स्तनमें ही उचित मात्रामें पाये जाते हैं।

प्रायः कहा जाता है कि माताके दूधमें कुछ ऐसे पदार्थ होते हैं जो बच्चेके शरीरमें एक प्रकारकी रोग-निवारक शक्ति पहुंचा देते हैं। यह सत्य है कि बच्चेकी जीवन-यात्रा बहुतसे रोगोंके निवारणकी पर्याप्त शक्तिके साथ आरंभ होती है और इस शक्तिका मातासे प्राप्त होना भी माना जा सकता है, पर यह क्रिया उसी कालमें संपन्न होती है जब बच्चा गर्भमें होता है, प्रसवके बाद नहीं; हां, माताका दूध इस प्राकृतिक निरोध-शक्तिको बनाये रखनेमें और प्रकारसे सहायक अवश्य होता है।

माताका आहार

अगर माताके आहारमें उपयुक्त खाद्य पदार्थोंकी कमी हो तो दूधका निर्माण होना संभव न होगा, इसलिए माताको स्वयं अपने और बच्चेके

लिए भी इन पदार्थोंकी प्राप्ति अवश्य होती रहनी चाहिए। साधारणतः अच्छा भोजन मिलते हुए भी दो पदार्थों—प्रोटीन और बी० वर्गके विटा-मिनोंकी प्राप्तिपर विशेष ध्यान देना चाहिए। दूध तथा दूधसे बने हुए पदार्थ इन दोनोंकी प्राप्तिके अच्छे साधन हैं। इसके अलावा गर्भ-वहन और स्तनपानके समयमें भी भोजनकी मात्रा अंतःप्रवृत्तिकी जितनी मांग हो उतनी ही होनी चाहिए। स्तनपान करानेवाली माताको और समयोंकी अपेक्षा अधिक आहारकी आवश्यकता हो सकती है।

शिशुओंका पालन-पोषण

जन्म लेते ही बच्चेको खिलानेकी उतावली कभी नहीं करनी चाहिए। प्रकृतिने कुछ इस तरहकी व्यवस्था की है जिससे उसे तुरंत खिलानेकी आवश्यकता नहीं होती। जन्मके २४ घंटे बाद स्तनपान कराना अच्छा होता है। इतनी देरमें सारा शोरगुल और उत्तेजना भी प्रायः कम पड़ गयी होती है। कुछ लोग जन्म लेनेके कुछ ही घंटे बाद 'जन्मघूंटी' देते हैं। यह बहुत बड़ी गलती है। यह उत्तेजक होती है जिसका आरंभमें ही बच्चेकी आंतोंको श्लैष्मिक कलापर बुरा असर होता है। माताका पहला दूध बच्चेकी आंतोंको उत्तेजित करनेके लिए काफी रेचक होता है। यह प्राकृतिक रेचक है और इससे किसी तरहकी क्षति पहुँचनेकी संभावना नहीं रहती।

आहारकी मात्रा

बहुतसे लोग पूछा करते हैं कि बच्चोंको कितना दूध पिलाया जाय; पर सभी बच्चोंकी स्थिति एक-सी न होनेके कारण मात्रा निर्धारित कर सकना संभव नहीं है। आवश्यकतानुसार वह न्यूनाधिक हो सकती है। अगर मां-बाप स्वस्थ हैं और बच्चा भी ठीक पैदा हुआ हैं तो उसके आहारकी मात्रा आप-ही-आप ठीक हो जायगी। अगर बीच-बीचमें पूरकके रूपमें थोड़ा-थोड़ा पानी भी दिया जाता रहे तो उसे अधिक दूधकी आवश्यकता नहीं होगी। सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चेको जीभर पी लेने दिया जाय और जब वह स्तन या बोतलकी उपेक्षा करने लगे तो पिलाना बंद कर दिया जाय। वह आप ही धीरे-धीरे आहारकी मात्रा बढ़ाता जायगा।

रोनेका कारण

अधिक खिलानेपर बच्चे परेशानीसे रोया करते हैं जिसे माताएं

भूलसे भूखका सूचक मान लेती हैं। बहुत-से बच्चोंको भूख नहीं लगती, उन्हें बड़ोंकी तरह प्यास लगती है, पर उन्हें पानीके बदले दूध पिलाया जाता है तो इससे कुछ कालके लिए उन्हें शांति मिल जाती है, पर महा-स्रोतमें विकृत बना हुआ दूध उपदाह उत्पन्न कर उन्हें फिर बेचैन कर देता है और वे रोने लगते हैं। इस स्थितिको न समझ सकनेके कारण माताएं दूध पिला-पिलाकर बच्चेकी मृत्युका कारण बनती हैं और अपने अविवेकपूर्ण प्यारका बदला दुःखके रूपमें पाती हैं। बच्चेको सिर्फ तीन बार दूध पिलाया जाय और समय इस प्रकार रखा जाय कि अंतर बराबर पड़े। रातमें पानीके अलावा और कुछ न दिया जाय। दूध पिलानेकी बोतलमें कुनकुना पानी भर लीजिए और तीन-चार बार दिनमें पिलाया कीजिए। रातमें भी बच्चा दो-एक बार पानी पीना चाहेगा।

गलत धारणा

प्रायः जन्मकालसे ही बच्चेको बार-बार और बहुत अधिक पिलाना शुरू कर दिया जाता है। अगर बच्चा स्वस्थ देख पड़ा तो चिकित्सक भी दिनमें दो-दो घंटेपर और रातमें तीन-तीन घंटेपर दूध पिलानेकी राय दिया करते हैं; अगर बच्चा कमजोर देख पड़े तो और अधिक बार पिलानेको कहा जाता है। २४ घंटेके अंदर १० से २४ बारतक दूध पिलाना कोई असाधारण बात नहीं है। कभी-कभी तो घंटेमें तीन-तीन बारतक पिलाया जाता है। दलील यह पेश की जाती है कि बच्चेका पेट छोटा होता है, उसमें एक बारमें अधिक आहार नहीं अंट सकता, इसलिए उसे बार-बार भरते रहना जरूरी है; उसे जितना अधिक आहार मिलेगा उतनी ही तेजीसे उसकी बाढ़ होगी। मगर तथ्य तो यह है कि बच्चेका पेट इसलिए छोटा होता है कि उसे बहुत कम मात्रामें आहारकी आवश्यकता होती है। बाढ़ बहुत धीमी चालसे होती है और लगभग २५ वर्षतक इसका समय होता है। अगर देखभाल ठीक तरहसे हो तो उसके शरीरकी गरमी बहुत कुछ बनी रहेगी और सिर्फ थोड़े-से ईंधनकी उसे जरूरत होगी। आहारके

संबंधमें इतनी गलत धारणाएं फैली हुई हैं कि माता-पिता यह समझ ही नहीं पाते कि बच्चोंको पर्याप्त पोषण प्रदान करनेके लिए कितना आहार आवश्यक है।

पूर्णतः स्वस्थ नौजवान भी इतनी बार खाना जारी रखकर अपना स्वास्थ्य कायम नहीं रख सकता; कुछ ही दिनोंमें वह रोगका शिकार हो जायगा। बच्चे तो इसको सहन कर ही नहीं सकते, और इसका सबसे बड़ा प्रमाण लाखों बच्चोंका पहला वर्ष पूरा होनेके पहले ही मर जाना है। शैशवावस्थामें होनेवाले अधिकांश रोगोंका संबंध आहारसे ही होता है। पेट और आंतें अच्छी हालतमें हों तो रोग बच्चोंके पास फटकने भी नहीं पाते। आहारपर तो पूरा ध्यान दिया ही जाय, वे गरम और साफ रखे जायं और उनका कमरा भी हवादार हो। महास्रोत स्वस्थ होनेपर, जो उपयुक्त और संयत आहारसे ही संभव है, बच्चे कीटाणुओंके आक्रमणका भी, जिसका डर बड़ोंके दिमागको परेशान किये रहता है, आसानीसे निवारण कर सकते हैं। पाचनकी गड़बड़ीके बाद बच्चोंमें जो रोग प्रकट होते हैं वे वस्तुतः अधिक आहारके लक्षणमात्र हैं।

कमीकी पूर्ति

भरसक तो बच्चेको स्तनपान ही कराना चाहिए, पर अगर माताको पर्याप्त दूध न होता हो तो कमीकी पूर्ति स्वस्थ गायके शुद्ध दूधसे की जाय; क्योंकि माताके दूधके बाद गायका ही दूध सर्वोत्तम होता है। हां, इस बातका ध्यान रहे कि दूध बासी या बहुत देरका दुहा हुआ न हो। दूधके बराबर ही पानी मिला लिया जाय या दो भाग दूधके साथ एक भाग पानी रहे। दोनोंको मिलाकर एक सेरमें एक चम्मचके हिसाबसे दुग्धशर्करा डाल दीजिए और उसे थोड़ा गरम कर बच्चेको पिलाइए। दुग्धशर्करा इक्षुशर्कराकी तरह पानीमें जल्द नहीं घुलती, इसलिए यह उतनी मीठी नहीं होती, पर बच्चोंके स्वास्थ्यकी दृष्टिसे अच्छी होती है, इसलिए अगर शर्करा डालनी ही हो, तो यही डाली जाय। बार्लीका पानी या इस तरहकी

और कोई चीज दूधमें न मिलायी जाय। बोतलसे दूध पीनेवाले बच्चोंको प्रातःकाल थोड़ा फलका या तरकारीका रस देना लाभदायक होता है। स्तनपान करनेवाले बच्चोंको भी इससे लाभ होगा; हालां कि उन्हें इसकी कोई विशेप आवश्यकता नहीं होती। बच्चा एक महीनेका हो जाय तो दिनमें सिर्फ एक बार एक चम्मच रस दीजिए और चार मासमें मात्रा धीरे-धीरे बढ़ाकर दो चम्मच कर दीजिए।

माताके दूधमें पायी जानेवाली शुक्ली (अल्बुमिन) खट्टी होनेपर जल्द नहीं जमती, पर गायके दूधकी सारी शुक्ली जम जाती है। इसके अलावा माताका दूध छोटी-छोटी फुटकियोंमें जमता है जिनपर पाचन-रसोंकी अच्छी क्रिया होती है और वे आसानीसे अभिशोषित भी हो जाती हैं, गायके दूधकी शुक्ली बड़ी-बड़ी फुटकियोंके रूपमें जमती है जो बड़ी होनेके कारण आसानीसे नहीं पचतीं। पानी न मिलाने और तेजीसे घोंट जानेपर यह स्थिति विशेप रूपसे प्रस्तुत होती है।

बोतलकी सफाई

अगर बोतलसे दूध पिलाया जाता है तो बोतलकी सफाईपर विशेप रूपसे ध्यान देना आवश्यक है। इस्तेमालके लिए एक ही बोतल न रखकर कई बोतल रखी जायं जिसमें उन्हें साफ करनेका समय मिलता रहे। तीन बार पिलानेके लिए छह और चार बारके लिए आठ बोतलें रखी जायं और एक दिनका अंतर देकर काममें लायी जायं। इस्तेमालके बाद बोतल धोकर साफ कर ली जायं और तब सोडेमें उबालकर कई बार धोयी जायं और धूपमें खड़ी कर दी जायं। इस्तेमालके पहले भी उन्हें उबाले हुए पानीसे धो लेना चाहिए। चूंकि बोतलोंकी संख्या पर्याप्त होगी इसलिए वे क्रमसे रखी रहें और एक बोतल एक ही बार काममें लायी जाय। टोंटीकी सफाईपर भी पूरा ध्यान देना जरूरी है; क्योंकि बच्चोंको दूध पिलानेके कार्यमें मानसिक पवित्रतासे अधिक सफाईका महत्त्व है।

स्तन-पानकी अवधि

एक और व्यावहारिक प्रश्न है—वच्चोंको कितने दिनोंतक स्तनपान कराया जाय ? इस अवधिका ठीक-ठीक निश्चय करना वहुत कठिन है। विभिन्न देशोंकी स्थितिके अनुसार इसमें कुछ अंतर हो सकता है। इंग्लैंड आदि कुछ देशोंमें यह अवधि नौ मासकी मानी जाती है, पर अमेरिकामें छह मास या इससे कमकी ही मानी जाती है। साधारणतः यही उचित जान पड़ता है कि माताका दूध वच्चेके लिए कम पड़ने लगे तो कमीकी पूर्ति गायके दूध या फलों-तरकारियोंके रससे की जाय। अभिप्राय यह कि स्तनपान कराना एकवारगी बंद न कर धीरे-धीरे ही किया जाय। इस प्रकार उसे माताका दूध भी कुछ मिलता जायगा।

श्वेतसारीय आहार

लगभग एक वर्षकी अवस्थामें श्वेतसारीय पदार्थ देना आरंभ किया जा सकता है। पहले वच्चा वहुत कम खाएगा, फिर धीरे-धीरे मात्रा वढ़ाता जायगा। रोटी काफी कड़ी हो जिसमें वच्चेको निगलनेके पहले उसे खूब चवानेके लिए बाध्य होना पड़े। इस प्रकार वच्चेको खूब चवा-कर खानेका अभ्यास भी हो जायगा। दूधमें भीगी हुई रोटी या रोटीके साथ दूध कभी न दिया जाय। अगर रोटी-दूध खिलाना ही हो तो साथ न देकर आगे-पीछे देना चाहिए। गेहूंकी जो भी चीज खिलायी जाय वह चोकरदार आटेकी वनी हो; मैदेमें खनिज लवण नहीं होता जो वच्चेकी वाढ़ और स्वास्थ्यके लिए आवश्यक है। वहुतेरी माताएं चार-पांच मासकी ही अवस्थामें वच्चेको श्वेतसारीय पदार्थ खिलाना आरंभ कर देती हैं। यह वहुत वड़ी भूल है। इस अल्पावस्थामें उसमें श्वेतसार पचानेकी शक्ति नहीं होती; क्योंकि आरंभके कुछ महीनोंतक वच्चेमें कुछ पाचन-रसोंका अभाव होता है। ऐसी हालतमें इस प्रकारका खाद्य पदार्थ वच्चेके रोगका ही कारण होगा।

अति-आहारके दुष्परिणाम

बहुतसे बच्चोंमें जन्मके कुछ ही घंटों या दिनोंके बाद अति-आहारके चिह्न प्रकट होने लगते हैं। नाकका बहना इसका एक साधारण लक्षण है। अति-आहारसे यह बहुत बढ़ जाता है जिससे जीवनभर बने रहनेवाले जुकामकी नींव पड़ जाती है और समय-समयपर अस्थिवक्रता, ग्रंथिशोथ, उकवत, विसूचिका, मसूरिका आदि रोग प्रकट होते रहते हैं। मां-बापको इन रोगोंकी प्रतीक्षा करनेको कहा जाता है और वे लोग बराबर सुनते भी रहते हैं कि ये सभी शैशवावस्थाके रोग हैं। यह प्रकृतिके लिए एक लांछन है जो हमेशा शरीरको स्वस्थ बनाये रखनेकी ही चेष्टा करती रहती है।

अधिक प्यारके कारण मृत्यु

आम तौरसे मां-बाप बच्चेको प्यार करते हैं, पर उनका यह प्यार ही, जो प्रायः व्यसनका रूप धारण कर लेता है, उस असहाय बच्चेकी मृत्युका कारण हो जाता है। आस्कर वाइल्डके शब्दोंमें 'जिसे हम प्यार करते हैं उसे ही मार डालते हैं।' एक सुप्रसिद्ध चिकित्सकने लिखा है—'पहला साल पूरा होनेके पहले ही बहुतसे बच्चे मर जाते हैं—ऐसे बच्चे जो महीनों स्वास्थ्यकी प्रतिमूर्ति-से जान पड़ते हैं और बालविसूचिका, ज्वर आदिसे आक्रांत होनेके पूर्व कभी अस्वस्थ नहीं देख पड़ते। उनका पेट हमेशा ठसाठस भरा रहता है, शरीर सिरसे पैरतक वसासे लद जाता है और कुछ दिनोंतक फुर्तीले और चंचल भी देख पड़ते हैं जो माता-पिता और उनके मित्रोंकी प्रसन्नताका कारण होता है। इसके अनंतर कुछ कालतक कब्ज, सर्दी, बालविसूचिका आदि रोगोंसे ग्रस्त रहकर ये पिंजरावशिष्ट बच्चे माता-पिताकी दृष्टिसे ओझल हो जाते हैं। अकुशल स्त्रियां खाना बनानेके लिए आग जलाते समय चूल्हेमें इतना ईंधन ठूंस देती है कि आग तेज जलनेके बजाय बुझ जाती है। बच्चोंके संबंधमें भी ठीक यही होता है। उनके शरीरमें इतना ईंधन ठूंस दिया जाता है कि उनका जीवनानल बुझकर ही दम लेता है।' जो जीवित रहते हैं उनके मार्गमें भी इसके कारण

बड़ी बाधा पहुंचती है। शरीरकी गिरी हुई अवस्था प्रत्येक बच्चेमें कुछ-न-कुछ खराबी ला देती है जिससे रोगकी नींव पड़ जाती है और बच्चे बड़े होनेपर तरह-तरहके भयंकर रोगोंके शिकार होते रहते हैं।

प्राकृतिक संकेत

बच्चेका उदर संवेदनशील होता है और अधिक आहारका विरोध करता है। जमे हुए और कभी-कभी जमनेका समय मिलनेके पहले ही दूधका वमन इसीका परिणाम होता है। यह आत्मरक्षाका प्राकृतिक उपाय है। अगर इस संकेतपर ध्यान देकर पेट ठीक न हो जानेतक दूधके बदले पानी दिया जाय और तब आहारकी मात्रा घटाकर पाचन-शक्तिके अनु-सार रखी जाय तो बच्चेकी हालत ठीक हो जायगी।

कभी-कभी जिन बच्चोंकी पाचन-शक्ति अच्छी नहीं होती उन्हें आवश्यकतासे अधिक दूध पिलानेपर न पचा हुआ दूध भी पचे हुए दूधकी ही तरह जम जाता है। उसका जल तो शोषित हो जाता है, पर ठोस अंश बिना पचे ही बड़ी आंतमें पहुंच जाता है और दही-जैसे रूपमें मलके साथ बाहर निकलता है। महास्रोतसे गुजरते समय उसका कुछ अंश सड़ भी जाता है जिससे उत्पन्न हुए विषका कुछ अंश तो शरीर ग्रहण कर लेता है और कुछ बड़ी आंतमें ही रह जाता है जिससे अपानवायुमें बड़ी दुर्गंध आ जाती है।

मलमें जमे हुए दूधका निकलना अतिभोजनसे होनेवाले खतरेका सूचक है। इसपर ध्यान न देनेपर बाल-विसूचिका होनेकी—विशेषकर गरमीके मौसममें—संभावना बढ़ जाती है। यह दुग्धजन्य विषमताका ही परिणाम होती है। इसमें आत्मरक्षाके प्रयत्नमें आंतें क्षुब्ध होकर बहुत अधिक लसीका निकालने लगती हैं जिससे बच्चेका शरीर शीघ्र ही शिथिल पड़ जाता है और प्रायः मृत्यु भी हो जाती है। अगर दूध पिलाना फौरन बंदकर बच्चेके चाहनेपर सिर्फ कुनकुना पानी थोड़ा-थोड़ा दिया जाय तो बच्चेके बच जानेकी आशा रहती है।

अच्छी पाचन-शक्तिवाले बच्चे रोज काफी—सेरों—दूध पचा लेते हैं, पर सबका उपयोग नहीं कर सकते; अगर कर सकते तो कुछ ही दिनोंमें उनकी अच्छी बाढ़ हो जाती। पाचनकी तरह अतिरिक्त मात्रा-का निष्कासन आसान नहीं होता। इससे त्वचा, वृक्कां, फुप्फुसों और आंतोंपर उनकी शक्तिसे अधिक भार पड़ जाता है और इसे बाहर निकालनेमें प्रायः नाक और गलेकी श्लैष्मिक कलासे सहायता लेना आवश्यक हो जाता है। ऐसे ही बच्चोंके संबंध प्रायः सर्दी 'पकड़' लेने-की बात कही जाती है, पर दरअसल सर्दी 'पकड़ी' नहीं जाती, बल्कि बच्चोंको खाने को दी जाती है।

कुछ अवस्थाओंमें मल बाहर निकालनेका भार त्वचापर भी पड़ता हैं और उसकी भी हालत श्लैष्मिक कला-जैसी ही होती है। वह सीमित मात्रामें ही मल बाहर निकाल सकती है इसलिए अधिक मात्रामें विजातीय द्रव्य एकत्र हो जानेपर उसमें शोथ हो जाता है और पहले खुजली होकर पीछे उकवत हो जाता है। बच्चा उसे नोचते-नोचते प्रायः नाखून गड़ा दिया करता है और चेहरा जख्मोंसे भर जाता है। इस हालतमें आहारकी मात्रा कम कर देनेपर उदर और आंतोंमें अम्ल उत्पन्न करनेवाले खमीर का बनना बंद हो जाता हैं, शरीरके पोषणके लिए पर्याप्त आहारका अभिशोषण हो जाता है और त्वचाको केवल अपना साधारण कार्य करना रहा जाता है। क्षोभका कारण दूर हो जानेपर चर्मविकार भी शीघ्र ही चला जाता हैं। इस प्रकारके बच्चेका वजन जितना होना चाहिए उससे बहुत अधिक होता है और मां-बापको आश्चर्य होता है कि ऐसे स्वस्थ बच्चेको रोग क्यों हुआ ?

मानसिक रोग

खिलानेमें समझदारीसे काम न लेनेपर मानसिक रोग भी हो जाते हैं। स्वस्थ बच्चा प्रसन्नचित होता है, अस्वस्थ बच्चा चिड़चिड़ा हो जाता है। चिड़चिड़ापन और क्रोध मानसिक विकृतिके ही लक्षण हैं।

क्रोध तो अस्थायी उन्माद ही है। अगर अधिक खिलाना जारी रहे तो मस्तिष्कविकृति, अपस्मार, उन्माद आदि रोगोंके होनेकी संभावना बढ़ जाती है। स्वस्थ शरीरमें ही स्वस्थ मस्तिष्क रह सकता है। अगर लोग अपने शरीरकी देखभालपर ध्यान दें, विशेषकर आहारके संबंधमें संयम बरतें तो पागलखानोंकी जरूरत ही नहीं रहेगी।

बच्चोंको अधिक खिलानेसे एक बड़ी खराबी यह होती है कि उनमें उत्तेजक पदार्थ खानेकी चाट पैदा हो जाती है जो आगे चलकर कई तरहसे शांत की जाती है—कुछ लोग तो तंबाकू, मदिरा आदिकी सहायता लेते हैं जिनके वे आदी हो जाते हैं और कुछ लोग अति भोजनद्वारा उसे शांत करनेकी कोशिश करते हैं। उसकी शांति चाहे जैसे करनेका प्रयत्न किया जाय, पर वह कभी शांत होती नहीं; क्योंकि इसके लिए जो कुछ उसे खिलाया जाता है उसीके सहारे वह पुष्ट होती और बढ़ती है। जिस तरह अफीम ज्यादा अफीमकी मांग करती है और मदिरा अधिक मदिराकी, उसी तरह बार-बार खाते रहनेसे और अधिक खानेकी प्रवृत्ति होती है और इस प्रकार अप्रकृत भूखकी परिणति मृत्युमें ही हुआ करती है।

शिशुओंकी देखभाल

स्थूलकाय बच्चोंको लोग स्वस्थ समझते हैं जो बहुत बड़ी भूल है। बच्चा जितना अधिक मोटा होगा उतनी ही कम आयुमें वह श्मशान-यात्राकी तैयारी करेगा। जन्मके समय आठ पौंड या इससे अधिक वजन होना इस बातका सूचक है कि मातृत्वके नियमोंका उल्लंघन किया गया है। शीघ्र या कुछ विलंबसे इसका फल बच्चे और माताको भी भुगतना पड़ता है। अधिक वजन स्वास्थ्यके लिए घातक होता है; क्योंकि इसके कारण अंदरकी सफाई और आहारका पाचन ठीक तरहसे नहीं हो पाता और इनके न होनेपर स्वास्थ्यका रहना असंभव ही है।

माताका रहन-सहन

जीवन-यापनका ढंग सादा रखना बच्चेके प्रति माताका पवित्र कर्त्तव्य है। हमेशा आदर्श जीवन व्यतीत करना तो संभव नहीं है, पर हर एक माता सादा भोजन और मनोभावोंपर नियंत्रण रख सकती है। उपयुक्त आहार और मानसिक संतुलन बच्चेको स्वास्थ्यवर्द्धक पोषण प्रदान करनेमें बड़े सहायक होते हैं। मांसादिसे भरसक परहेज करते हुए तरकारियां अधिक खायी जायं, रोटी चोकरदार आटेकी हो और अगर चावल खाया जाय तो वह पालिशदार न हो। सफेद चीनी, अचार, मुरब्बों और मिर्च-मसालोंका यथासंभव बहिष्कार किया जाय। शुद्ध दूध बच्चे और माताके लिए समान रूपसे लाभदायक होता है। गुरुपाक भोजन और उत्तेजक पेयोंसे भी परहेज किया जाय। सारांश यह कि जहांतक संभव हो माताको अपना खान-पान प्राकृतिक रखना चाहिए। मनकी प्रसन्नताका भी बहुत अधिक महत्त्व है। जो माता परेशान रहा करती है या किसी ध्वंसात्मक भावसे अभिभूत होती है वह

अपने बच्चेको अपने दूधकी प्रत्येक बूंदके साथ कुछ-न-कुछ विषपान कराती जाती है।

कुछ माताएं पोषण प्रदान करनेमें समर्थ नहीं होतीं। इसका विशेष कारण ज्ञानका अभाव ही होता है; क्योंकि सावधानीके साथ जीवन व्यतीत करनेवाली स्त्रियां बच्चोंको पोषण प्रदान करनेमें प्रायः समर्थ होती हैं। अगर बोतलसे दूध पिलानेकी चाल बढ़ती गयी और तरह-तरहका टीका लगाना बंद नहीं हुआ तो माताओंका दूध पिलाना बंद ही हो जा सकता है। कुछ माताओंको स्तनपान कराने में बड़े आनंदकी अनुभूति होती है, पर कुछ अपनी शकलमें खराबी आनेके डरसे स्तनपान कराना स्वीकार नहीं करतीं। बच्चेको प्राकृतिक आहारसे वंचित रखनेका चाहे जो भी कारण हो, मां-बापको यह समझ लेना चाहिए कि इससे बच्चेके स्वास्थ्य और जीवनमें बहुत कमी आ जायगी।

त्वचा आदिकी देख-भाल

आरंभमें साधारण बच्चा लगभग हमेशा—बीस, बाइस घंटे—सोता है। उसके साथ किसी तरहकी छेड़-छाड़ नहीं होनी चाहिए। सिर्फ तीन बार दूध और तीन-चार बार बोतलसे पानी पिला दीजिए और उसे साफ, सूखा और उष्ण—तप्त नहीं—रखनेका प्रयत्न कीजिए। बहुतसे बच्चे रोज नहलाये जाते हैं। यह ठीक है, पर नहलानेका काम तेजीसे होना चाहिए। सफाईके लिए स्नानके पहले उबटनका प्रयोग या नहाते समय बेसनका प्रयोग अच्छा है। अगर साबुन इस्तेमाल किया जाय तो वह बहुत मुलायम हो और बदन खूब साफ कर दिया जाय, नहीं तो साबुनके कण छिद्रोंमें रह जाकर उपदाह उत्पन्न करेंगे। जख्म, चर्मस्फोट और शोथ ऐसी ही असावधानीके कारण होते हैं। कोई धातुवाली बुकनी या पाउडरका इस्तेमाल न किया जाय। अगर बच्चा सूखा और साफ रखा जाय और उचित पोषण पाता रहे तो उसकी त्वचा भी अच्छी हालतमें रहेगी। अच्छी हवाके अभावमें बच्चोंकी बाढ़ अच्छी नहीं होती, इसलिए

कमरेमें हवा काफी आती रहे, पर वह ऐसे रास्तेसे आये कि उसका झोंका न लगे। बच्चेके अंग मुक्त रखे जायं जिसमें वह स्वच्छंदतापूर्वक उनका संचालन कर सके।

फेफड़ोंका व्यायाम

साधारणतः लोग समझते हैं कि फेफड़ोंके व्यायामके लिए बच्चेका रोना आवश्यक है। स्वस्थ और आरामसे रहनेवाला बच्चा कभी नहीं रोयेगा और यह आवश्यक भी नहीं है। फेफड़ोंकी क्रियाके लिए उससे व्यायाम कराना कठिन नहीं है। बच्चे दृढ़तापूर्वक उंगली या छड़ पकड़कर लटक सकते हैं। इससे न रोनेवाले बच्चेको इस प्रकार ऊपर उठा लीजिए और हर बार कुछ मिनट लटकने दीजिए। इससे सीना ऊपर उठेगा और फेफड़ोंका व्यायाम हो जायगा। इस व्यायामसे बच्चोंको आनंद तो मिलता ही है, उनकी शक्ति-वृद्धिके साथ स्वभावमें सुधार भी होता है। रोनेसे बच्चोंका स्वभाव क्रोधी और चिड़चिड़ा हो जाता है। कभी-कभी थोड़ा रोये तो बुरा नहीं है, पर अधिक रोना कष्ट, रोग या खराबीका ही सूचक है।

दवा न दी जाय

बच्चेको किसी तरहकी दवा मत दीजिए। इससे नुकसानके सिवा कभी कोई फायदा नहीं होता। अगर कभी इसकी जरूरत पड़ ही जाय तो अपवादके रूप में अंडीका तेल या खनिज लवण—जैसा कोई रेचक पदार्थ दिया जा सकता है। धातुनिर्मित कोई चीज देनेका तो कोई औचित्य हो ही नहीं सकता। अगर बच्चेको शुद्ध और संयत आहार मिलता रहे तो उसे कभी कब्ज नहीं होगा और अगर कभी हो ही जाय तो एनिमाका प्रयोग बेखटके किया जा सकता है। हां, इतना अवश्य स्मरण रहे कि इन उपचारोंसे आरोग्यलाभ नहीं होता, केवल उपशमन होता है; आरोग्यलाभ तो भूलोंका सुधार और शरीरके अबाध रूपसे कार्य करने योग्य हो जानेपर ही हो सकता है।

प्रदर्शनसे हानि

बच्चेको अकारण तंग करते रहना ठीक नहीं। नयी अवस्थाके मां-बाप उसे सबको दिखलाते रहनेकी गलती करते हैं और लोग शिष्टाचारके खयालसे उसे 'सर्वश्रेष्ठ' भी कह दिया करते हैं, हालांकि वैसे बच्चे संसारमें लाखों होते हैं। बच्चेको चुपचाप रहने देकर उसे सचमुच अच्छा बननेका अवसर दीजिए। प्रदर्शनके कारण बच्चेकी उत्तेजना बढ़ती है जिससे चिड़चिड़ापन आदि विकारोंकी नींव पड़ जाती है। शांत वातावरणमें बाढ़ अच्छी होती है। बच्चा जगा रहे तो उससे शांतिपूर्वक बात कीजिए। वह इसी तरह मातृभाषा सीखना आरंभ करता है। अच्छी भाषाका प्रयोग कीजिए। जो लोग बच्चोंकी बोलीमें उससे बात करते हैं वे उनके मार्गमें बाधक होते हैं; क्योंकि उसे उस बोलीको भूलकर पुनः टकशाली भाषा सीखनी पड़ेगी।

बुरी आदतोंका सिलसिला

जो अपने रहन-सहनकी खराबी महसूस करते हैं उनमें भी कुछ ही लोग व्यसनोंकी शृङ्खलाको तोड़ फेकनेमें समर्थ हो पाते हैं। बहुत कम लोग स्पष्ट रूपसे यह समझ पाते हैं कि रोग या अकाल मृत्यु बच्चेमें माता-पिताद्वारा डाली गयी बुरी आदतके ही कारण होती हैं और ये माता-पिता भी यह आदत विसारतमें ही पाये होते हैं। इस तरह यह सिलसिला बराबर जारी रहता है और बच्चे मां-बापके पापका फल भोगते हैं। कुशल यही है कि इसमें सुधारकी बहुत कुछ गुंजाइश है और अगर माता-पिता अपना रहन-सहन ठीक कर बच्चोंके पालन-पोषणमें समझदारीसे काम लें तो यह सिलसिला आगे बढ़नेसे आसानीसे रोका जा सकता है। दृढ़ इच्छा और संकल्पके साथ कभी भी परिवर्तन किया जा सकता है, जिसका परिणाम अच्छा ही होगा। विलंब करनेका कोई बहाना नहीं हो सकता। गलतियां जितनी अधिक देरतक बनी रहेंगी उनपर विजय पाना उतना ही कठिन होगा।

तगड़े और नाज़ुक बच्चे

मोटे तौरपर बच्चे दो भागोंमें बांटे जा सकते हैं—तगड़े और नाज़ुक। तगड़े बच्चे तरह-तरहके अतिचारोंको सहन कर लेते हैं और कोई बुरा फल प्रत्यक्ष रूपमें नहीं देख पड़ता; पर यह विकारक्षमता भी बाहरी ही होती है। वर्धनशील बच्चे रोग उत्पन्न करनेवाले प्रभावोंको जल्द ही और आसानीसे निकाल बाहर करते हैं, पर अगर इस कार्यमें पड़नेवाली बाधा बहुत बड़ी हो तो वे दौड़में परास्त हो जाते हैं।

दूसरी श्रेणीके बच्चे इस तरहके अतिचारको सहन नहीं कर सकते; क्योंकि उनका शरीर इतना कोमल होता है कि थोड़ी-सी अव्यवस्थासे ही उसका संतुलन नष्ट हो जाता है, ऐसे बच्चोंकी देख-भालमें तगड़े बच्चों-की अपेक्षा अधिक सावधानी बरतनेकी जरूरत पड़ती है, नहीं तो उनका शरीर कमजोर हो जाता है, नाड़ी-संस्थान दृढ़ नहीं हो पाता और वे मृत्युके भी शिकार हो जाते हैं।

अच्छा कौन ?

कुछ लोग अपने बच्चोंमें और बच्चोंकी-सी विशेषता न पाकर बहुत चिंतित रहते हैं। इस तरहकी तुलना करनेमें समय नष्ट करना बड़ी भूल है। जैसे दो पत्तियां या अनाजके दो दाने एक-से नहीं होते उसी तरह दो बच्चे भी एक-से नहीं हो सकते, इसलिए देख-भालमें भी कुछ अंतर होना आवश्यक है। अगर देख-भाल सावधानीके साथ हो तो ये बच्चे भी स्वस्थ हो जायेंगे। ये बच्चे तगड़े बच्चोंकी तरह न तो अधिक सर्दी-गर्मी बर्दाश्त कर सकते हैं और न अधिक भोजन ही, इसलिए इनके संबंधमें यह देखते रहना आवश्यक है कि इन्हें क्या और कितना आवश्यक है। अगर किसी चीजकी अतिशयता न हो तो इनकी शारीरिक और मानसिक

शक्ति बढ़ती जायगी। अगर सच पूछिए तो ऐसे ही बच्चे भाग्यशाली होते हैं; क्योंकि इन्हें अपनी परिमित शक्तिका शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है। इनके लिए अतिका फल इतना बुरा होता है कि ये शीघ्र ही मिताचारका पाठ सीख लेते हैं और यह ज्ञान जीवनपर्यंत इनकी रक्षा करता रहता है।

तगड़े बच्चोंको भी अपनी शक्तिका पता फौरन चल जाता है और वे अपने माता-पिताको भी इसपर इतराते देखते हैं। इसके परिणामस्वरूप उनमें यह भ्रांत धारणा जड़ पकड़ लेती है कि हम बराबर ऐसे ही बने रहेंगे और किसी बातसे हमारी अधिक बुराई नहीं होगी। इस भ्रममें जीवन-यापन करनेके कारण उनके स्वास्थ्यकी जड़ हिल जाती है, इसलिए माता-पिताको अपने बच्चोंके कार्योंके फलाफलका ज्ञान कराकर यह तथ्य हृदयंगम करा देना चाहिए कि जो लोग स्वास्थ्यके पात्र हैं उनका ही स्वास्थ्य स्थायी रूपसे बना रह सकता है। यह सत्य है कि बच्चे इस प्रकारकी शिक्षापर अधिक दिनोंतक ध्यान नहीं देते, पर माता पिताके कर्तव्यका पालन तो हो जायगा।

तगड़े बच्चोंको मसूरिका, ज्वर, गलसुआ आदि रोग होते भी हैं तो वे इतनी शीघ्रतासे दूर हो जाते हैं और इतने कम कष्टकर होते हैं कि वे शीघ्र ही भुला दिए जाते हैं। माता-पिता प्रायः यह नहीं जानते कि पोषण-संबंधी दोष—विशेषतः अतिभोजनके कारण ही ये रोग होते हैं। प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि बच्चोंको ये सब रोग होने ही चाहिए। कुछ माताएं तो ऐसे रोगोंके लिए अवसर भी प्रदान करती हैं। जिसमें बच्चे इनसे जल्द पार पा जायं।

माता-पिताका अज्ञान

बच्चोंका अस्वस्थ होना माता-पिताके अज्ञान और कर्तव्यकी उपेक्षाका ही सूचक है। बच्चोंके लिए ठीक रहना स्वाभाविक है और उचित अवसर मिले तो वे ठीक रहेंगे भी। अगर उनके खान-पानमें कोई

खरावी न हो तो संपर्क होनेपर भी छूत आदिके कारण उन्हें वालरोग नहीं होंगे। किसी भी कीटाणुमें इतनी शक्ति नहीं जो विकाररहित और स्वस्थ शरीरमें पहुंचकर उसे किसी तरहकी क्षति पहुंचा सके। देख-भालमें लापरवाहीके कारण वच्चोंका स्वास्थ्य खराव होनेपर ही ये तथाकथित कीटाणु शरीरमें अड्डा जमाते हैं। अगर वच्चोंको संयत मात्रामें प्राकृतिक आहार दिया जाता रहे तो रोग उनके पास फटकनेका नाम भी नहीं लेगा।

कुछ माता-पिता भ्रमवश यह विश्वास कर लेते हैं कि वे चाहे जो कुछ खिलाते रहकर रोगग्रस्त जानवरोंकी लसीकासे वना हुआ टीका या वैक्सीन लगवाकर रोगका आसानीसे निवारण कर लेंगे। यह वात तर्क, व्यवहार-वुद्धि और प्रकृतिके विरुद्ध ही नहीं, असंभव भी है। वच्चा हो या सयाना, अगर वह लगातार ज्यादती करता जाय तो कभी-न-कभी उसका स्वास्थ्य गिर ही जायगा। जिस रोगकी आशंका है वह रोग भले ही न हो, दूसरा तो हो ही जायगा।

अकाल मृत्यु क्यों ?

तगड़े वच्चे ही वढ़कर सयाने होनेपर लापरवाह होते हैं और यही कारण है कि सौ वर्षोंसे ऊपर चलने योग्य शरीर पाकर भी अधिकांश लोग पचासके पहले ही इस दुनियासे कूच कर जाते हैं। ऐसे ही लोग मीयादी बुखार, गठिया तथा वृक्क, हृदय और यकृतसंवंधी रोगोंके, जो सव-के-सव अति भोजनके परिणाम हैं, शिकार हुआ करते हैं। वे तो अपनेको स्वस्थ समझते रहते हैं, पर ये रोग विना कोई खुली चेतावनी दिये ही पहुंच जाते हैं। दरअसल उन्हें सच्चे स्वास्थ्यका ज्ञान ही नहीं होता। उनका स्वास्थ्य कामचलाऊ होता है; कोई भयंकर पीड़ा नहीं होती, पर शरीरकी अवस्था भी साधारण नहीं होती जो स्वच्छ और तीव्र वुद्धिका कारण है। अग्निमांद्य वरावर वना रहता है जिससे आंतोंमें गैस वनती रहती है और जीभपर मैल जमा रहता है। अति-भोजनके कारण रक्तचाप भी वहुत

बढ़ जाता है। जब ये तगड़े लोग अस्वस्थ होते हैं तो उनके लिए कुछ कर सकना कठिन ही नहीं, असंभव भी हो जाता है; क्योंकि उनकी आदतें इस कदर मजबूत और उनपर हावी हो गयी होती हैं कि वे अपने तरीकोंमें जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकते। दुबले-पतले लोगोंके दीर्घायु होनेकी अधिक संभावना रहती है; क्योंकि जीवन-यात्राके आरंभमें ही वे सावधानीका पाठ पढ़ लेते हैं। जो प्रसिद्ध व्यक्ति बहुत दिनोंतक जीवित रहे हैं वे प्रायः दुबले-पतले ही रहे हैं।

दंत-प्रस्फुटन और उनकी रक्षा

दंत-प्रस्फुटन एक स्वाभाविक क्रिया है; [उसमें कष्ट उन्हीं बच्चोंको होता है जिनका लालन-पालन अप्राकृतिक ढंगसे होता है। जिन बच्चोंकी] माताका स्वास्थ्य खराब रहता है, जो अप्राकृतिक जीवन व्यतीत करती एवं अप्राकृतिक भोजन करती हैं उन्हींके दांत देरसे और देरतक निकलते हैं।

दांत काटना प्यारका प्रदर्शन नहीं

दांत निकलनेपर मसूड़ोंमें एक प्रकारकी स्वाभाविक खाज-सी चलती है और माताएं दूध पिलानेके बाद जिन बच्चोंका मुंह और अपना दूध साफ नहीं करतीं उनमें यह खाज ज्यादा बढ़ जाती है। इसे दूर करनेका सरल उपाय है बच्चेका मुंह साफ करना और उन्हें सेब, नाशपाती, अमरूद-सी कोई कड़ी चीज कुतरनेके लिए देना। चार-पांच महीनेका होनेपर बच्चेके मसूड़ोंको कभी-कभी उंगलीपर शहद लगाकर यदि धीरे-धीरे मल दिया जाय तो उसके दांतोंको निकलनेमें सरलता तो होती ही है खाज भी नहीं आती। इस खाजको मिटानेके लिए बच्चेके काटनेको प्यारका प्रदर्शन समझना अपनेको धोखा देना है।

बच्चे अकसर बड़े होनेपर भी काटनेकी आदत नहीं छोड़ पाते—अपने नाड़ी-दौर्बल्यके कारण। दुबली, शिथिल और चिड़चिड़ी मांके बच्चे इस रोगके आसानीसे शिकार हो जाते हैं। भरे बदनके, मोटे-चिकने बच्चोंको यह रोग बहुत कम होता है, उनकी नाड़ियोंपर आवश्यक चर्बी रहती है जिससे साधारण-साधारण-सी बातोंसे उनमें उत्तेजना पैदा नहीं होती और न उन्हें उस मुक्त-शक्तिके व्ययके लिए काटने, बकोटने या हाथ-पांव पटकने और रोने-चिल्लानेकी जरूरत होती है। रोगके ये सब लक्षण दुबले, दोषपूर्ण अथवा अपूर्ण भोजनपर पले बच्चोंमें ही पाये जाते हैं।

स्तन-विरतिकी समस्या

स्तन-विरति कोई कठिन समस्या नहीं है। प्रकृतिके प्रांगणमें चरनेवाली किस हिरनीको यह सोचना पड़ता है कि वह कब और किस प्रकार अपने बच्चेकी स्तन-विरति कराये? कौन-सा पक्षी यह सोचता है कि उसे बच्चेको कब चुगाना बंद करना चाहिए? फिर मनुष्यकी ही इस समस्यासे टक्कर क्यों? मनुष्य स्वयं समस्याएं उत्पन्न करता है और उनमें स्वयं उलझकर सुलझनेके लिए छटपटाता है। दंत-प्रस्फुटन आरंभ हुआ नहीं कि स्तन-विरतिकी समस्या सवार! दांत निकलना आरंभ होनेका कदापि यह तात्पर्य नहीं है कि बच्चोंको माताके दूधकी अब जरूरत नहीं रही। दो या चार दांत उसे खाने या चबाने लायक नहीं बना देते।। दांत निकलना दो वर्षोंतक चलता रहता है और पूरे दांत आ जानेपर ही वह पूर्णतया माताका दूध छोड़ सकता है। बच्चेके आठ-दस महीनेके हो जानेपर अर्थात् जब वह कुछ दूसरी चीज खाने लगता है, कुछ फल-तरकारी चबाने लायक उसके दांत हो जाते हैं तब माताके स्तनोंमें दूध कम होने लगता है। इस वक्त प्रकृति उसके पूर्ण भोजनका नहीं, आंशिक भोजनका ही इंतजाम करती है और धीरे-धीरे जब बच्चा पूर्णतया बाहरी भोजनपर रहने लगता है, माताके स्तनोंका दूध सूख जाता है। फिर स्तन-विरतिकी समस्या कैसी? बच्चा आसानीसे समझ जाता है, अंतमें वह अकसर दूध पीना भूलने लगता है और धीरे-धीरे अपने-आप मांको तंग करना बंद कर देता है।

दांतोंकी रक्षा

बच्चेके दांतोंकी सुरक्षाका प्रयत्न उनके निकलनेके बहुत पहले—कम-से-कम बारह महीने पहले—आरंभ हो जाना चाहिए। सुंदर मजबूत दांत निकलें इसके लिए स्त्रीकी अस्थियोंको भरपूर पोषण मिलना

चाहिए और यह पोषण उन्हें उस आहारसे मिलता है जो वच्चेकी माता ग्रहण करती है ।

वच्चेके मसूड़ोंमें दांतोंकी नींव गर्भावस्थाके सातवें सप्ताहमें ही पड़ जाती है । इसी समयसे माताको करीव सेरभर दूध नित्य पीना आरंभ करना चाहिए और उसे फल-तरकारियोंका, विशेषतया कुछ नींवूजातीय फलोंका व्यवहार रोज जरूर करना चाहिए जिसमें उसके शरीरमें उन तत्त्वोंकी प्रचुरता रहे जिनसे वच्चेके शरीरकी अस्थियां मजवूत एवं दांत सुदृढ़ और सुंदर वनते हैं ।

दांतोंका निर्माण

बढ़िया अस्थि वनानेवाले तत्त्वोंके अलावा माताके आहारमें विटामिन डी० भी प्रचुर मात्रामें होना चाहिए । यह विटामिन शरीरमें अस्थियोंका ढाँचा वनानेमें राजगीरका काम करता है । जिस प्रकार सुंदर घर वनानेके लिए इंटोंको सजाकर—एक दूसरेपर तरतीवसे—रखना पड़ता है उसी प्रकार विटामिन डी०अस्थिके कोषाणुओंको उचित तादादमें और आवश्यक अवस्थामें रखता है। विटामिन डी० के अभावमें अस्थि वनानेवाले तत्त्व शरीरमें वेतरतीव इकट्ठे हो जाते हैं जिससे अस्थियोंका ढांचा भद्दा—मोटा, पतला एवं सूखा-सा— तैयार होता है जिससे उसपर वननेवाला शरीर सुडौल नहीं हो पाता । गर्भावस्थामें इस विटामिनकी निश्चित रूपसे अधिक मात्रामें जरूरत होती है । वह स्त्रीको सीधे धूपसे अथवा और किसी रीतिसे मिलना ही चाहिए । यदि गर्भिणीको यह विटामिन उचित मात्रामें मिला तो उसके वच्चेके दांत जरूर मजवूत किस्मके निकलेंगे और उसका चेहरा भी सुंदर होगा; क्योंकि चेहरेमें दांतों और मसूड़ोंके अंदरकी अस्थियों-के अलावा दो ही अस्थियां होती हैं जो चेहरेको वनाती हैं—गालोंकी अस्थि और नाककी अस्थि । इन दोनों अस्थियोंमें चूना (कैल्सियम) गर्भके आठवें सप्ताहमें इकट्ठा होने लगता है और इनका सुघड़पन एवं स्थिरता

नीचे और ऊपरके जबड़ोंपर निर्भर है जिनसे ये संबद्ध रहते हैं। अंतमें जब बच्चा पैदा होता है तबतक उसकी मां उसके सारे दांत बना चुकी होती है जो बच्चेके मसूड़ोंमें छिपे रहते हैं।

इस प्रकार बच्चेको मजबूत एवं सुंदर दांत देना पूरी तरह माताका काम है; पर इसके लिए माताकी दांतसंबंधी पैतृक संपत्ति भी अच्छी होनी चाहिए। एक प्रसिद्ध वैज्ञानिकका कहना है कि यदि आप बच्चेकी अस्थियां मजबूत बनाना चाहते हैं तो यह काम जब बच्चेके दादा बच्चे रहे तभी शुरू होना चाहिए इसलिए बच्चेके दांतोंकी हालत बहुत कुछ बच्चेके दादा एवं परदादाके दांतोंकी हालतपर निर्भर है।

बच्चेका जन्म हो जानेके बाद भोजन एवं अन्य नियमोंद्वारा बच्चेके दांतोंको मजबूत बनानेका माताका काम तो पूरा हो जाता है, पर यह काम अब बच्चेके भोजन एवं देख-भालके रूपमें फिर शुरू होता है; क्योंकि अब बच्चेको अपने दांतोंको अपने जबड़ोंमेंसे मसूड़ोंको काटते हुए निकालना एवं बाहर लाना होता है।

दांतोंकी सफाई

बच्चेके दांत जब निकलने लगें तब माताको उनकी देखभाल एवं सफाई करते रहना चाहिए। उसे एक पतला-सा कपड़ा नित्य जरा-सा नमक मिले पानीमें उबालना चाहिए और उसे अपनी अंगुलीपर लपेटकर बच्चेके दांतोंको साफ कर देना चाहिए। इससे बच्चेके दांत तो साफ हो ही जाते हैं मुंहसे पाचक लार भी उचित मात्रामें स्रवित होने लगती है। अंतमें जब सारे दांत निकल जायं तब बच्चेको उसके तीसरे वर्षमें उन्हें किसी मुलायम दातुन या ब्रशसे स्वयं साफ करना सिखाया जा सकता है।

दांतोंके स्वस्थ रहनेके लिए मसूड़ोंका स्वस्थ रहना जरूरी है। मसूड़े जब सूज जाते हैं तो उनमें खाद्यांश फंसने लगता है और सड़कर दांतोंको

हानि पहुंचाता है। मसूड़ोंके अस्वस्थ होनेका कारण स्कर्वी रोग है जो भोजनमें विटामिन 'सी०' के अभावके कारण पैदा होता है; पर जिन बच्चोंको दूधके साथ फलोंका रस भी दिया जाता है उनको यह रोग नहीं होता। रोगके कारण भी बच्चोंके मसूड़े सूज जाते हैं, पर यह रोग उन्हीं बच्चोंको होता है जिन्हें कनसमेत चावलके बदले छंटे सफेद चावल एवं चोकरसमेत आटेकी रोटियों और दलियेकी जगह मैदेकी मिठाइयां या बिस्कुट खिलाये जाते हैं। कभी-कभी बच्चोंके दांतोंमें पायरियासे पीड़ित व्यक्तिके चूमनेसे भी कष्ट हो जाता है। ऐसी अवस्थामें बच्चेकी उचित देख-भाल एवं चिकित्सा होनी चाहिए।

चबानेकी कसरत

चबाना भी बच्चेके दांतोंको स्वास्थ्य प्रदान करता है। छोटे बच्चोंको या तो तरल अथवा अर्धतरल भोजन दिया जाता है जिससे उन्हें चबानेका मौका नहीं मिलता। इसकी पूर्तिके लिए बच्चे कई चीजें चबाते हैं और कई तो हाथमें आनेवाली प्रत्येक चीजको काटना चाहते हैं। इसका एक वैज्ञानिक कारण है। स्वाभाविक जबड़े, जिनका समुचित विकास चबानेसे ही हुआ रहता है, कड़ी-से-कड़ी चीजोंको बिना हानिके चबा सकते हैं एवं कड़ा खिंचाव तथा दबाव बर्दाश्त कर सकते हैं। वे मजबूत दंत-पेशियोंसे संबद्ध रहते हैं एवं उनपर चमकीला एनामेलकी तरहका एक द्रव्य, जो अच्छी-से-अच्छी धातुसे भी कड़ा और मजबूत होता है, लगा रहता है इसलिए जबड़ोंके स्वाभाविक विकास और उनसे संबद्ध अस्थियोंको मजबूत बनानेके लिए चबानेकी कसरत करना आवश्यक है, तभी मुख भी सुंदर बनेगा। चबानेसे बढ़ते हुए दांत अपनी जड़ोंमें ठीक तरहसे बैठ जाते हैं और वहां रक्त-संचालन भी ठीक तरहसे होता है जिससे मसूड़े भी मजबूत बनते हैं।

हर बच्चेको कोई उपयुक्त चीज चबानेको देनी चाहिए। बच्चेके गलेमें कोई रबड़की कड़ी चुसनी सुंदर-से फीतेमें बांधकर लटका दीजिए

जिसमें बच्चा जब चाहे उसे चबा सके अन्यथा वह अपने हाथ-पैरका अंगूठा मुंहमें डालेगा। कभी-कभी उसे रोटीका कड़ा-सा टुकड़ा दिया जा सकता है ताकि वह उसे चूसता-चबाता रहे, पर इसमें पूरी निगरानी रखनी चाहिए।

एक सालका पूरा होनेपर, जब बच्चेका मुख मोतियोंसे भर जाय, बच्चेको, विशेषकर भोजनके अंतमें, सेब, अमरूद या गाजर आदि फल-तरकारी चबानेको दी जानी चाहिए। इससे चबानेका काम पूरा होनेके साथ-साथ मुख और दांत भी साफ रहते हैं।

अमेरिका, इंग्लंड आदि सभी समुन्नत कहे जानेवाले देशोंके चिकित्सक नयी पीढ़ीके लोगोंके दांत देखकर चिंतित हैं। उनका कहना है कि अबके नब्बे प्रतिशत लोगोंके दांत खराब हैं और छानवे प्रतिशत बच्चोंके दांत स्वाभाविक स्थितिमें नहीं हैं। यह अस्वाभाविक अवस्था बच्चोंके ठीक तरह चबाने और उन्हें चबाने योग्य चीज खानेको देनेसे ही बदली जा सकती है। इस बातका प्रत्येक माताके और माता बननेवाली महिलाके गले उतर जाना जरूरी है।

अल्पवयस्क बच्चोंका आहार

अगर बच्चेमें माता-पितासे प्राप्त कोई दोष न हो तो उसके स्वास्थ्यका अच्छा या बुरा होना बहुत कुछ उसके आहारपर निर्भर है।

आहारके प्रकार

जिस प्रयोजनकी सिद्धिके लिए बच्चोंको आहार दिया जाता है उसके तीन विभाग किये जा सकते हैं—(१) उनकी शक्ति बनी रहे, (२) क्षतिकी पूर्ति होनेके साथ ही बाढ़ होती रहे और (३) कार्यक्षमताके साथ रोग-निरोधकी शक्ति पर्याप्त मात्रामें रहे।

जो खाद्य पदार्थ दिये जाते हैं वे सभी उक्त सभी कार्योंको नहीं करते; विशेष प्रकारके खाद्य उक्त कार्योंमेंसे कोई एक कार्य विशेष रूपसे करते हैं। पहले कार्यकी पूर्ति कार्बोहाइड्रेट वर्गवाले खाद्यसे होती है जिसमें रोटी, आलू, शर्करा, सूखे फल, मक्खन आदि परिगणित होते हैं; दूसरा अर्थात् वृद्धि और क्षति-पूर्तिवाला कार्य प्रोटीन-वर्गके खाद्यसे होता है जिसमें पनीर, दूध, दही, छेना, अंडा, गिरी, दाल, मछली और मांस हैं।

तीसरा कार्य—कार्यक्षमता और रोग-निरोधकी शक्ति—पहले दोनों-की अपेक्षा कुछ जटिल है। जितने भी खाद्य पदार्थ ग्रहण किये जाते हैं उन सबको इस उद्देश्यकी पूर्तिमें सहायक होना चाहिए; पर अगर छिलका निकालकर उन्हें बारीक किया गया है, मसाले आदि डालकर उन्हें जायके-दार बनाया गया है या काफी भूनकर या अधिक पकाकर तैयार किया गया है तो इस उद्देश्यकी पूर्तिमें वे सहायक नहीं हो सकते; क्योंकि इस प्रकार तैयार करनेमें उनका रक्षात्मक तत्त्व नष्ट हो जाया करता है। फलों और तरकारियोंमें, यदि उन्हें कच्चा खाया जाय तो, खनिज लवण और विटामिन अधिक मात्रामें मिलते हैं, फिर भी केवल

तरकारियों और फलोंसे काम नहीं चलता। जब चोकरदार आटे और मधुकी जगह मैदेकी रोटी और दानेदार चीनी खायी जायगी तो अधिक मात्रामें फल-तरकारियां खानेपर भी कार्यक्षमता और रोग-निरोधकी शक्तिका कायम रहना मुश्किल होगा।

संतुलनका अभाव

अगर बच्चोंके आहारमें उपर्युक्त संतुलन न बरता जाय, एक वर्गका भोज्य पदार्थ आवश्यकतासे अधिक और दूसरे वर्गका आवश्यकतासे कम दिया जाय तो उक्त तीनों प्रकारके कार्य समुचित रूपमें संपन्न नहीं होंगे और उनके अस्वस्थ हो जानेकी बहुत अधिक संभावना रहेगी। आवश्यकतासे अधिक खिलाइए या कम, दोनों ही अवस्थाएं अस्वस्थताका कारण हुआ करती हैं और इनमेंसे प्रत्येक दूसरीके बुरे असरको और बढ़ा देती है। आजकल साधारणतः जो खाद्य पदार्थ दिये जाते हैं उनमें ये दोनों बातें मौजूद रहती हैं, इसलिए कम या अधिक मात्रामें बच्चोंमें अस्वस्थताका रहना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है।

आजकल बच्चोंको श्वेतसार और शर्करावाले पदार्थ अधिक दिये जाते हैं। अन्य आवश्यक तत्त्वोंके न होनेसे एक तो यों ही वे हानिकारक हो जाते हैं, दूसरे उन्हें जिस ढंगसे तैयार किया जाता है उसमें उनका सारा खनिज लवण और विटामिन नष्ट हो जाता है। उदाहरणके तौरपर रोटी ही ले लीजिए। चोकरदार आटेकी रोटीमें बी० श्रेणीके विटामिन काफी मात्रामें रहते हैं जो इसे पचानेमें सहायक होते हैं, अगर अधिक मात्रामें खा लीजिए तो भी इसे पचानेके लिए शरीरसे बी० विटामिनका अपहरण नहीं करना पड़ता; पर मैदेकी रोटीमें पचानेवाला बी० विटामिन नाममात्रको होता है, इसलिए इसे खानेपर, विशेषकर अधिक मात्रामें खानेपर, पचानेके लिए शरीरका बी० विटामिन लेना पड़ता है जिससे शरीरमें इस विटामिनका अभाव हो जाता है जो कब्ज या नाड़ी-संस्थानके रोगोंका कारण होता है।

जब बच्चेके शरीरमें खनिज लवणों और विटामिनोंकी कमी हो जाती है तो काफी मात्रामें कार्बोहाइड्रेट और प्रोटीन खिलानेपर भी वह सम्यक् रूपमें अपना काम नहीं कर सकता। कार्यक्षमतामें कमी आनेके कारण शरीरमें मल एकत्र होने लग जाता है—ठीक उसी तरह जिस तरह प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रामें खिलानेपर होता है। शक्तिकी इस कमीके कारण जुकाम, कब्ज, खांसी, टौंसिलकी वृद्धि, पायरिया आदि रोग हो सकते हैं। बच्चोंके आहारके संबंधमें विचार करते समय इस कमीपर ध्यान देना बहुत आवश्यक है।

उपवासका उद्देश्य

अगर बच्चेमें अस्वस्थता स्पष्ट रूपमें प्रकट हो जाय तो उसके सारे शरीरकी सफाई आवश्यक हो जाती है और इसी स्थलपर उसके उपवास-का प्रश्न उपस्थित होता है। शरीरको पुनः सम्यक् रूपमें कार्य करने योग्य बनानेका सबसे अच्छा और सरल उपाय उपवास ही है; फिर भी यह अच्छी तरह समझ लेनेकी बात है कि केवल उपवास सब कुछ नहीं कर लेगा।

जो कमी होती है वह कई प्रकारकी हो सकती है और वह अधिक मात्रामें भी हो सकती है, इसलिए साधारण स्थितिमें उससे लंबा उपवास कभी न कराया जाय और उपवासके बाद इस प्रकारका भोजन दिया जाय जिसमें कमी बहुत कुछ पूरी हो जाय। इस भोजनमें तरकारियां, फल, चक्कीके चोकरदार आटेकी रोटी और शुद्ध दूध हो। ऐसा भोजन न होनेपर उपवासका सारा प्रभाव नष्ट हो जायगा।

कुछ लोगोंकी शिकायत है कि बार-बार उपवास करानेपर भी सर्दी, खांसी आदिसे बच्चेका पिंड नहीं छूटता; किंतु बार-बार उपवास कराना भी ठीक नहीं है; क्योंकि उपवासका मतलब यह नहीं है कि एक बार करानेपर जितना लाभ हुआ तीन बार करानेपर उसका तिगुना लाभ होगा।

प्रायः इसका परिणाम उलटा भी हो जाता है; क्योंकि बच्चेको अपना स्वास्थ्य बनाये रखकर बढ़ना भी है। एक उपवास करनेके बाद दूसरा उपवास कमीकी मात्रा और बढ़ा दे सकता है जिससे स्थिति ऐसी खराब हो जा सकती है कि विकार जितना हानिकारक होता उससे कहीं अधिक हानिकारक उपवास हो जाता है।

तीव्र रोगमें तापमान बढ़ा हुआ होनेपर उपवास अनिवार्य हो जाता है; जीर्ण रोगोंमें उपवास और उसके अनंतर युक्त-आहार स्वास्थ्य-लाभमें विशेष रूपसे सहायक होता है। बच्चोंको बार-बार उपवास न कराया जाय; अगर उनका खान-पान ठीक रहे तो उपवासकी जरूरत भी महसूस न होगी।

आहारमें क्या और क्या नहीं ?

एक वर्षकी अवस्था हो जानेपर प्रायः बच्चेका स्तन-पान बंद होने लगता है। साधारण बच्चोंको इसकी उतनी जरूरत भी नहीं रहती; क्योंकि इस अवस्थामें उन्हें गायका दूध और श्वेतसार पचाने योग्य शक्ति प्राप्त हो जाती है। इस समय सबसे बड़ी समस्या यह होती है कि बच्चेको कैसे खिलाया जाय, क्योंकि बड़ी-बड़ी भूलें होती रहनेपर रोगका होना निश्चित होता है। दो वर्षकी अवस्था होनेतक बच्चेका सर्वोत्तम आहार गायका दूध और पूर्ण गेहूँ है और कोई चीज खिलानेकी जरूरत नहीं है। बच्चेका भोजन जितना सादा और प्राकृतिक होगा उतना ही उसके स्वास्थ्यके लिए अच्छा होगा।

उन्हें कुछ-न-कुछ खाते रहनेके लिए न देकर अधिक-से-अधिक तीन बार खिलाया जाय। पकवान-मिठाई कभी न दी जाय और फल दिनभर खाते रहने और जायका लेनेकी चीज न मानकर आहार माना जाय। अगर उन्हें नाश्तेका आदी न बनाया जाय तो उन्हें इसकी चाह भी न होगी।

बच्चोंको भरसक दानेदार चीनी न दी जाय; क्योंकि इससे उनकी रुचि विकृत हो जाती है और बादमें तरह-तरहकी परेशानियां होती हैं। खाद्य पदार्थकी दृष्टिसे भी यह अच्छी नहीं होती। मिर्च-मसाले आदि खानेपर तो यह विकृति और बढ़ जाती है। वे इनके इस कदर आदी हो जाते हैं कि न तो उन्हें सादे खाद्य पदार्थोंके स्वादका ज्ञान होता है और न वे उन्हें खाना ही स्वीकार करते हैं। फलों आदिकी ओर भी उनकी प्रवृत्ति नहीं होती। परिणामस्वरूप वे प्राकृतिक लवणसे वंचित हो जाते हैं और यही स्वास्थ्य खराब होनेका मुख्य कारण होता है। साधारण व्यक्तियोंको ऐसे बच्चे स्वस्थ जान पड़ते हैं, पर दरअसल उनका स्वास्थ्य जैसा होना चाहिए उसका आधा भी नहीं होता।

मादक द्रव्योंसे हानि

बच्चोंको कहवा या चाय कभी न दी जाय। बड़ोंको भी इनसे नुकसान पहुंचता हैं। इनसे बच्चोंकी बाढ़ मंद पड़ जाती है और इनसे प्राप्त होनेवाली क्षणिक उत्तेजना नाड़ी-संस्थानके लिए बहुत हानिकारक होती है। बढ़ते हुए बच्चेके लिए तो कहवा तंबाकूकी ही तरह हानिकारक होता है।

मद्य पिलानेके संबंधमें चेतावनी देना कुछ लोगोंको अजीब-सा मालूम होगा, पर बहुतसे लोग दर्द होनेकी हालतमें तथा इस तरहके अन्य अवसरों-पर मद्य पिला दिया करते हैं। ऐसे बच्चे जल्द ही मृत्युके शिकार हो जाते हैं। कुछ लोग निश्चित होकर काम करने तथा उनके कारण होनेवाली परेशानियोंसे बचनेके लिए अफीम आदि खिलाकर उन्हें सुला देते हैं, पर बच्चे इस प्रकारके द्रव्योंको सहन नहीं कर सकते और इसके परिणाम-स्वरूप बहुतसे बच्चे ऐसी नींदमें सोते हैं कि फिर कभी जागनेका नाम ही नहीं लेते। बच्चोंको ऐसी चीज न खिलानेका नियम ही बना लीजिए और हमेशा याद रखिए कि बच्चोंको शांत करनेवाली चीज विषैली ही होती

हैं। जिन बच्चोंकी देख-भाल अच्छी होती है उन्हें ऐसी चीजोंके सहारे शांत रखनेकी आवश्यकता भी नहीं प्रतीत होती।

नमक-मसाले-चीनी देनेकी जरूरत नहीं

बच्चोंको नमक देनेकी भी आवश्यकता नहीं है, हालां कि अत्यल्प मात्रामें वह हानिकारक भी नहीं होगा। नमक खाना भी एक आदत है और जब इसमें अति होती है तो इससे बहुत-सी बुराइयां पैदा होती हैं।

चीनी-मिसरीके बदले बच्चोंको शहद, अंजीर, खजूर, किशमिश आदि मीठे फल या इनको भिगो या उबालकर निकाला हुआ रस दिया जा सकता है। जिन बच्चोंको ये फल मिलते हैं उन्हें चीनीकी चाह भी नहीं होती। इन्हें वे कृत्रिम चीनीसे अधिक पसंद करते और ये फल श्वेतसारीय खाद्य पदार्थोंका स्थान भी ग्रहण कर लेते हैं।

खाद्य पदार्थ

खाद्य पदार्थोंके पोषक तत्त्वोंके संबंधमें बहुत कम लोगोंको जानकारी होती है। बच्चोंको लवण, प्रोटीन, शर्करा, चिकनाई और शर्कराके अभावमें श्वेतसारकी आवश्यकता होती है। दूधमें श्वेतसारके अतिरिक्त और सब पदार्थ होते हैं। एक बारके भोजनमें सिर्फ फल रहें और दो बार श्वेतसारवाले पदार्थ दिये जायं। दूध इन सबके साथ या एक या दो बार दिया जा सकता है, पर मात्रा अधिक न हो; क्योंकि वह स्वयं पूरा आहार है।

दो वर्षकी अवस्था होनेतक श्वेतसार केवल पूर्ण गेहूंके रूपमें दिया जाय। मैदेकी रोटी न दी जाय; क्योंकि इससे न तो पोषण प्राप्त होता है और न संतुष्टि ही। यह इतने स्वादहीन, नीरस और गेहूंके प्राकृतिक लवणसे वंचित होता है कि संतुष्टिके लिए इसे अधिक मात्रामें खाना आवश्यक हो जाता है। चोकरदार आटेकी बनी चीजोंकी थोड़ी मात्रासे ही बच्चे संतुष्ट हो जायंगे, पर मैदेकी चीज अधिक मात्रामें खानेसे भी संतुष्ट

न होंगे। चावलके संबंधमें भी यही बात है। लाल चावल पालिशदार चावलसे इतना अच्छा होता है कि दोनोंमें कोई तुलना ही नहीं हो सकती। दूसरा वर्ष पूरा हो जानेपर श्वेतसारकी और चीजें दी जा सकती हैं, पर वे ऐसे रूपमें दी जायं कि बच्चोंको उन्हें खूब चबानेके लिए बाध्य होना पड़े। दूध ऐसे पदार्थोंके साथ न देकर पहले या पीछे दिया जाय। श्वेतसारवाले पदार्थोंके साथ अम्लवाले फल कभी न दिये जायं। केवल मजबूत और खुली हवामें रहनेवाले बच्चे ऐसा योग बर्दाश्त कर सकते हैं, कमजोर बच्चोंके लिए यह योग हानिकर होता है; पर इसका मतलब यह भी नहीं है कि पुष्ट बच्चोंको यह योग बराबर या बार-बार दिया जाता रहे। फल खाकर दूध पीना अच्छा भोजन है। फलके साथ चीनी न दी जाय। अगर बच्चे शर्करा पसंद करते हों तो भी मीठे फल दीजिए।

डेढ़ सालकी अवस्था होनेतक बच्चोंको चबाना सीख जाना चाहिए। मीठे फलोंको चबाना आवश्यक है इसलिए उनके चबाने योग्य न होनेतक उन्हें सिर्फ उनका रस दिया जाय। केला भी चबाने योग्य होनेपर ही देना चाहिए। कच्चे केलेमें श्वेतसार ही होता है, पर पकनेपर श्वेतसार नामका ही रह जाता है।

अगर बच्चोंको मांस खानेका चस्का न पड़े तो यह उनके लिए कल्याणकर ही होगा। चार सालकी अवस्था होनेके पहले तो मांस देनेका ख्याल भी नहीं करना चाहिए। बच्चोंके लिए अंडा, मांससे अच्छा होता है, पर उन्हें देना आवश्यक नहीं है। दूधसे उन्हें काफी प्रोटीन मिल जायगा। पहले बहुत थोड़ी मात्रासे ही अंडा दिया जाय, दूधके साथ अंडा कभी न दिया जाय; हां, फलों और तरकारियोंके साथ दिया जा सकता है। दूधके साथ अंडा देनेपर प्रोटीनकी मात्रा बहुत बढ़ जाती है जिससे रोग उत्पन्न हो सकता है।

गिरी भी खूब चबानेकी आदत होनेपर ही दी जानी चाहिए। इसका योग भी अंडे—जैसा ही हो। छह सालसे कमके बच्चेको एक-सवा तोलेतक

गिरी दी जा सकती है। बच्चे गिरी बहुत कम चबाते हैं इसलिए अधिक मात्रामें कभी न दी जाय। दो सालकी अवस्था होनेके पहले मक्खन या घी भी न दिया जाय। मक्खन आसानीसे पच तो जाता है, पर घनीभूत होता है। दूधसे ही काफी चिकनाई मिल जायगी।

मात्रा क्या हो ?

यह प्रश्न पुनः उपस्थित होता है कि बच्चोंको कितना खिलाया जाय ! इसका उत्तर हम नहीं दे सकते, केवल इतना कह सकते हैं कि तीन बारके भोजनमें उन्हें पूरा पोषण मिल जायगा। कुछ लोगोंको विष भी सह्य हो जाता है और कुछ दिनोंतक इसका कोई बुरा फल प्रत्यक्ष नहीं होता, पर अगर उसका सेवन जारी रहे तो वह बरबाद करके ही छोड़ता है। अतिभोजनका भी यही हाल है।

अस्वस्थताके चिह्न

मां-बाप अपने बच्चेकी हालत खूब समझते हैं और माताको तो आगंतुक खतरेको समझने योग्य होना ही चाहिए। अगर बच्चेके स्वभावमें कोई अंतर देख पड़े तो वह रोगका ही सूचक होगा। कुछ बच्चोंका स्वभाव रोग होनेके पूर्व बहुत मधुर हो जाता है, पर अधिकांश इतने चिड़चिड़े हो जाते हैं कि सारे परिवारकी जिंदगी हराम कर देते हैं। रोगका हमला होनेके पहले सांस गंदी और गरम निकलने लगती है, जीभका रंग बदल जाता है और चेहरा तमतमा जाता है। चिह्न चाहे जैसे भी प्रकट हों खिलाना फौरन बंद कर दीजिए। इससे रोगकी प्रगति रुक जायगी। ये चिह्न खराब पाचनके ही सूचक होते हैं। अग्निमांद्यकी अवस्थामें खिलाना बहुत बड़ी गलती है और निर्दयताका काम है; क्योंकि इससे कष्ट बहुत बढ़ जाता है। अनुचित भोजनसे ही चिह्न प्रकट होते हैं और अतिभोजन ही मुख्य कारण होता है। इसका उपाय भी बहुत साधारण है—कम खिलाना।

जीभपर मैल जमना अतिभोजनका ही परिणाम है। अगर जीभ साफ है तो समझिए कि पाचनक्रिया ठीक तरहसे हो रही है; अगर साफ न हो और रंग गुलाबी लाल हो तो यह अतिभोजनका सूचक होगा, अतः जीभ साफ न होनेतक मात्रा घटाये रखिए। अगर जीभके पार्श्व और अग्र भागमें दाने निकले हों तो यह महास्रोतके क्षोभका कारण होगा और इसके लिए भी आहारकी मात्रा कम करना आवश्यक है।

अगर मां-बाप इन संकेतोंपर ध्यान दें तो उन्हें बच्चेके आहारकी उचित मात्राका शीघ्र ही ज्ञान हो जायगा। बच्चेका स्वास्थ्य खराब होना उनके अज्ञान और असफलताका ही परिचायक होगा।

तीन वर्षकी अवस्था हो जानेपर बच्चोंको सलाद अर्थात् कच्ची तरकारियां जैसे गाजर, टमाटर, पालक, खीरा, ककड़ी आदि भी दिया जा सकता है, क्योंकि इस अवस्थामें वे खूब चबाकर खाने योग्य हो जाते हैं। सात-आठकी अवस्था हो जानेपर वे मां-बापका आहार मजेमें अपना सकते हैं, बशर्ते कि उनका आहार सादा हो। उत्तेजक आहार मिलनेपर या भोजनकी मात्रा अधिक होनेपर उनमें यौन-प्रवृत्ति समयसे पहले ही उत्पन्न हो जाती है और वे लुक-छिपकर और कभी-कभी प्रकट रूपमें भी बुरे काम करने लगते हैं। अगर मां-बापका खान-पान सादा न हो तो बच्चोंका संयत और सादा आहार कुछ दिन और चलाया जाय जिसमें वे उसके अच्छी तरह आदी हो जायं। हमेशा याद रखिए कि सादगी और संयम ही बच्चोंकी संतोषजनक प्रगतिका मूलमंत्र है।

बच्चोंकी सुरक्षा

शिशुओंके स्वास्थ्यकी देख-भालका यह अभिप्राय है कि उनके आहार, स्वच्छता तथा उनके निमित्त किये जानेवाले प्रत्येक कार्यमें उनकी स्वास्थ्य-रक्षाका पूरा-पूरा ध्यान रखा जाय। पाश्चात्त्य देशोंमें, राष्ट्रके भावी नागरिक होनेके विचारसे बच्चोंके लालन-पालनपर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है, पर अज्ञान और निर्धनताके कारण भारतमें माताएं बच्चोंकी ओर समुचित ध्यान नहीं दे पातीं जिसका परिणाम यह होता है कि संसारके अन्य देशोंकी अपेक्षा अधिक बच्चे यहां रोग और मृत्युके शिकार हुआ करते हैं।

गिरना और ठोकर लगना

घरमें रोज छोटी-मोटी कितनी ही घटनाओंके घटित होनेका खतरा बना रहता है। शुरू-शुरूमें खड़ा होकर चलनेका प्रयत्न करते समय या घरमें रखी किसी चीजसे ठोकर खाकर बच्चे प्रायः गिरते हैं। आमतौरसे लोगोंकी यह धारणा है कि अगर बच्चा चलते समय किसी चीजसे उलझकर या ठोकर खाकर गिरता है तो, यह उसके चलना सीखनेकी प्रक्रियाका एक अंगमात्र है। यह ठीक है, पर उसी हालतमें जब उसे ऐसी घटनाओंका बार-बार शिकार न होना पड़े, क्योंकि बार-बार ऐसा होनेपर उसका नाड़ीसंस्थान कमजोर पड़ जायगा और उसके मनमें अनिश्चयकी भावना बद्धमूल हो जायगी।

यों तो ऐसे बहुत कम लोग होंगे जिनके कमरोंमें संगमरमरका फर्श हो या पालिशदार गच हो; पर जिनके कमरे ऐसे हों उनको फिसलकर गिरते रहनेसे बच्चेको बचानेके लिए कमरोंमें साफ दरी या जाजिम बिछवा

देनी चाहिए। अगर जमीन कच्ची है तो वह साफ और सूखी रहनी चाहिए वरना बच्चेके स्वास्थ्यपर इसका बहुत बुरा असर होगा। कुछ लोग चलना आरंभ करनेके पहलेसे ही बच्चेको जूते-मोजे पहनाने लगते हैं। अच्छा तो यह है कि उन्हें ये चीजें पहनायी ही न जायं, अगर पहनायी भी जायं तो दो बातोंपर विशेष रूपसे ध्यान दिया जाय—एक तो यह कि जूतेकी बनावट ऐसी हो कि वह बच्चेके सीधा खड़ा होकर चलनेमें सहायक हो और दूसरी यह कि वह ऐसा कसा न हो कि पैरके विकासमें बाधक हो। पैंट या पाजामा पहनानेपर वह कमरकी पट्टीसे न बांधा जाय; क्योंकि ढीला पड़ जानेपर वह बच्चेके गिरनेका कारण होगा, इसलिए पट्टी गलेवाली ही लगायी जाय।

बच्चोंकी इस अवस्थामें गाड़ीनुमा खिलौना उन्हें गिरनेसे बचाने और चलनेमें भी सहायक हो सकता है, पर यह भी उन्हें बहुत दिनोंतक मदद नहीं दे सकता। आरंभमें तो वे इसकी ओर बहुत आकृष्ट होते हैं, पर पांच-सात दिनोंमें ही इसकी ओरसे उन्हें विरक्ति हो जाती है और स्वतंत्र रूपसे चलने-फिरनेका प्रयास करने लगते हैं। इस हालतमें घरके सामानके संबंधमें काफी सावधान रहनेकी जरूरत है। घरमें ऐसी कोई नोकदार चौकी या मेज न हो जिसकी ऊँचाई बच्चेके बराबर हो। चलने-फिरनेकी धुनमें बच्चे ऐसी चीजोंकी ओर ध्यान नहीं देते और टकराकर सिर घायल कर लेते हैं। साहसिक कार्योंकी ओर बच्चोंकी बहुत अधिक प्रवृत्ति हुआ करती है इसलिए कमरेकी सजावटकी खयाल छोड़कर खतरेकी सभी चीजोंको अन्यत्र रख देना चाहिए या इस प्रकार रखना चाहिए कि चोट या ठोकर लगनेकी संभावना न रहे।

बिजली और सीढ़ियां

शहरके बच्चोंके लिए बिजली और सीढ़ियां कम खतरनाक नहीं हुआ करतीं। सीढ़ियों और छतसे गिरकर आहत हुए बच्चे प्रायः अस्पताल पहुंचते देखे जाते हैं जिनमेंसे अधिकांशकी चोट घातक ही हुआ करती है।

अचानक घटना हो जानेके बाद कहीं लोगोंको खतरेका ज्ञान हो पाता है। बिजलीका प्लग इतनी कम ऊंचाईपर न हो कि बच्चेका हाथ आसानीसे पहुंच जाय; क्योंकि चमकीली और आकर्षक वस्तु देखनेपर अपनेको रोक सकना उसके लिए संभव नहीं होता। प्रथम संतान घटनाओंका शिकार अधिक होती है; क्योंकि माताको बच्चेकी प्रकृति और उसकी प्रगतिका विशेष अनुभव नहीं रहता। बच्चा अभी भोजनालयमें शांतिपूर्वक बैठा दिखाई देगा और दूसरे ही क्षण, माताका ध्यान हटते ही सीढ़ियां चढ़ता हुआ या उनसे लुढ़कता दिखाई देगा। बच्चेके पास ऐसा कोई साधन तो होता नहीं कि, वह आपको पहले ही बतला दे कि अब वह क्या करना चाहता है; इसलिए सीढ़ियोंका मार्ग बंदकर या और कोई ऐसा उपाय कर खतरा दूर कर देना चाहिए।

आग और जल

आग और जल भी प्रातः खतरे का कारण हुआ करते हैं। प्रकाशकी चमकसे आकृष्ट होकर बच्चे उसकी तरफ बड़ी तेजीसे बढ़ते हैं। गरम दूध और जल भी खतरा उत्पन्न कर बैठते हैं। इन सब चीजोंसे उन्हें दूर ही रखना अच्छा है। उनको शांत बैठे देखकर इस भ्रममें न रहिए कि वे उनमें हाथ न डालेंगे। हौज, कुएं और तालाबके पास भी वे न रखे जायं। वे कुतूहल-वश उनकी ओर आकृष्ट हो अपनेको घोर संकटमें डाल दे सकते हैं। बागमें भी बच्चेको अकेला छोड़ना ठीक नहीं। अगर घासपर शांत बैठा हो तो वह इससे ही संतुष्ट न होकर मौका मिलते ही कोई अनिष्टकर पदार्थ चटपट मुंहमें डाल ले सकता है।

जबतक बच्चा पांच-सात महीनेका न हो जाय, उसके सिरके नीचे तकियेका सहारा भूलकर भी न दें। तकियेसे उसे सांस लेनेमें कठिनाई होती है और कभी-कभी दम घुट जानेकी भी आशंका रहती है। बिस्तर-पर सपाट लिटा देना ही उसके लिए स्वास्थ्यकर होता है। हां, उसके सोते

समय चारपाईपर अगल-बगल कुछ रोक अवश्य हो जिसमें उसके लुढ़ककर गिरनेकी संभावना न रहे। कपड़ेमें सेफ्टिपिन न लगायी जाय; क्योंकि वह आसानीसे निकालकर मुंहमें पहुंचायी जा सकती है। सर्दीसे बचानेके खयालसे गुलूबंद देना भी ठीक नहीं; क्योंकि वह बारबार जमीनपर गिरकर गंदा होता रहता है और बच्चे उसे मुंहमें डालकर जमीनकी गंदगी अंदर पहुंचाया करते हैं। अगर आहार, निद्रा आदिकी आवश्यकता पर समुचित ध्यान दिया जाय तो सर्दीसे बचानेके लिए गुलूबंदकी कोई आवश्यकता भी नहीं रहेगी।

छोटे खिलौने, छुरी आदि

बच्चोंके जीवनमें एक ऐसी अवस्था भी आती है जब वे प्रत्येक वस्तु मुंहमें डाल लिया करते हैं; इसलिए मुद्रा, मनका या इस आकारका कोई खिलौना उन्हें नहीं देना चाहिए जिसे वे मुंहमें डालकर गलेमें फंसा लें। बच्चे प्रायः चने या मटरका दाना नाकमें घुसाकर ऊपर चढ़ा लिया करते हैं जिसे निकालनेके लिए डाक्टरकी सहायता लेनी पड़ती है। अगर मिठाई दी जाय तो टुकड़े या चूर करके दी जाय जिसमें वे एक ही बारमें गलेके नीचे उतारनेको कोशिशमें गला न रूंध लें। सूजा, छुरी, कैंची आदि उनकी दृष्टि और पहुंचसे बिलकुल परे रहनी चाहिए; क्योंकि मौका मिलते ही वे उनका उलटे-सीधे, जगह-बे-जगह प्रयोग करने लग जाते हैं। इस स्थलपर एक पड़ोसी सज्जनकी बात याद आ रही है। उनके शैशव-कालमें एक बार उनके पिता सूजेसे किसी अखबारकी फाइल लगा रहे थे और वे बैठे-बैठे अपने पिताका यह कार्य देख रहे थे। किसी जरूरी कामसे पिताके हटनेपर उन्हें सूजेका प्रयोग करनेकी सूझी और अखबार या और किसी चीजपर प्रयोग न कर अपनी एक आंखपर ही कर लिया जिसके फलस्वरूप वे जीवनभरके लिए एकाक्ष हो गये हैं।

स्थान और परिस्थितिके अनुसार ऐसे और भी कई खतरेके कारण हो

सकते हैं। संभव है, ये दुर्घटनाएं घटित न हों, पर घटित नहीं होंगी, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है, इसलिए माताको बच्चेके संबंधमें सर्वदा सतर्क रहना चाहिए। कहा जा सकता है कि वह अपने सिरमें पीछेकी ओर दो आंखें नहीं बढ़ा ले सकती हैं कि हमेशा बच्चेको देखती रह सके। हम मानते हैं कि गृहिणीके लिए गृहकार्योंको करते हुए बच्चेकी हर एक हरकतपर नजर रखना संभव नहीं हो सकता, पर यह तो हो ही सकता है कि घरको और बच्चेको भी बहुत कुछ ऐसी स्थितिमें रखा जाय कि खतरेकी बहुत कम संभावना रहे। बच्चेकी सुरक्षासे बढ़कर किसी पारिवारिक या घरेलू कार्यका महत्त्व नहीं हो सकता।

बच्चेके प्रथम दो वर्ष

नवजात शिशु कितना असहाय होता है और अपने तथा संसारके बारेमें कितना अनभिज्ञ, उसके बारेमें आपने कभी सोचा है ? अपने अंगों-पर उसका करीब-करीब कोई अधिकार नहीं होता, अपनी आंखोंको वह चीजोंपर जमा नहीं पाता, उसके कानमें जो आवाज पड़ती है उसका वह अर्थ नहीं समझता, न वह दुर्गंध-सुगंधमें ही कोई अंतर कर पाता है। उसकी रसनद्रियको स्वादका पता नहीं होता और स्पर्शेंद्रिय भी सर्वथा अविकसित होती है। ऐसे अविकसित ज्ञानेंद्रियवाले बच्चेको तो मनुष्य ही न कहना चाहिए। मनुष्य शब्द पूर्णताका बोधक है। बच्चा मनुष्य बननेके रास्तेपर होता है। यह सही है कि मनुष्यको मनुष्यकी संज्ञा दिलानेवाली ज्ञानेंद्रियोंका नवजात शिशु स्वामी नहीं होता, पर आप लौकी या कुम्हड़ेसे उसकी तुलना नहीं कर सकते। बच्चेमें चेतना होती है, नैसर्गिकबुद्धि उसका पथ-प्रदर्शन करती है, जिसकी प्रेरणाके अनुसार वह अपने सारे कार्य करता है। नैसर्गिकबुद्धि निम्नलिखित बातोंसे प्रकट होती है:—

भूख—जब भूख लगती है तो वह रोने लगता है, वह रोते-रोते अपने को थका डाल सकता है।

भय—बच्चोंको तीन प्रकारका भय होता है—जोरकी आवाजका, गिरनेका और और दर्दका।

क्रोध—हिलने-डुलने, हाथ-पैर फेंकनेकी कठिनाई होनेपर बच्चेको बड़ा क्रोध आता है। जबरदस्ती पकड़े रहनेपर वह क्रोधके मारे कांपने-सा लगता है।

प्रेम—हलराने-दुलरानेपर प्रेमकी किरण बच्चोंके मुखपर प्रस्फुटित होने लगती हैं।

भयका आरंभ

नये पैदा हुए बच्चेका यह सही चित्र है। इतनी-सी पूंजी लेकर बच्चा पैदा होता है और उसकी उस पूंजीको बढ़ाकर हमें उसे भविष्यका मनुष्य बनाना होता है और उसकी इस पूंजीका हम कैसा उपयोग करते हैं इसीपर उसका भविष्य निर्भर है। बच्चेके बनने-बिगड़नेका बहुत कुछ काम उसके जीवनके प्रथम दो वर्षोंमें ही समाप्त हो जाता है। बच्चेकी इस प्राथमिक शिक्षाके संबंधमें हमारे समाजमें अनेक गलत धारणाएं घर कर गयी हैं। जिनकी वजहसे बच्चेको बहुत नुकसान होता है, यहांतक कि उसकी नाड़ियां दुर्बल हो जाती हैं। उदाहरणके लिए—हम सभी जानते हैं कि, बच्चेको तेज, कड़ी आवाजसे भय मालूम होता है और कोई माता, जो नियमकी लकीरकी फकीर है, इसलिए कि बच्चेको रातभर चुपचाप सोनेकी आदत पड़े, रातको एक निश्चित वक्तपर रोशनी बुझा देती है। दूसरी ही रातको बत्ती बुझानेके थोड़ी देर बाद बिजली कड़कने लगती है और बादल गरजने लगते हैं। बच्चा अंधेरेमें अपनी मांको देख नहीं पाता, वह समझता है कि क़मरेमें या अपने बिछावनपर वह अकेला ही है। फिर बादल गरजते हैं, बच्चा भयसे सहम जाता है, वह आंख फाड़-फाड़कर देखता है, पर उसे चारों ओर अंधेरा-ही-अंधेरा नजर आता है। उसे अंधकारसे भय लगने लगता है, वह अंधकारको ही उस भयंकर शब्दका कारण समझता है और रोने-चिल्लाने लगता है। माता इसे समझ नहीं पाती; इस विशेष रुदनपर ध्यान नही देती और वह सोचती है कि बच्चा यों ही रो रहा है, चिल्ला-चिल्लाकर; अपने आप चुप हो जायगा; पर भय एक शक्तिशाली राक्षसके समान है—बच्चा उसके डरके मारे जोर-जोरसे चिल्लाता ही रहता है और जब कभी अंधेरेमें वह जागता है अंधेरेके डरसे रोने लगता है। इस प्रकार दो-चार बार रोनेपर मां समझ लेती है कि बच्चेका ऐसा स्वभाव ही पड़ गया है। दिन-रात गोदमें रहनेके लिए जिद करने लग गया है और बच्चा जिद्दी न हो जाय इसलिए मां उसके रोनेपर ध्यान नहीं देना

चाहती। बच्चा रोते-रोते थक जाता है, उसकी नाड़ियां विच्छिन्न हो जाती हैं। ऊपरसे उसे अपनी मांका क्रोध भी सहना पड़ता है। कभी-कभी उसकी मां उसके चिल्लानेपर क्रुद्ध होकर उसे उठा लेती है और क्रोधमें प्यार तो होता ही नहीं, यों ही हिलाती-डुलाती है। भला इससे बच्चा चुप हो सकता है? मांको अधिक क्रोध आता है और वह उसे बिछावनपर पटक देती है जिससे बच्चेका रहा-सहा नाडीबल भी नष्ट हो जाता है।

देखा आपने, बच्चा तो घड़-घड़, तड़तड़ की आवाजसे घबराकर उठा, उसे अंधेरा-ही-अंधेरा दिखाई दिया, वह डरा और सहायताके लिए चिल्लाया; पर 'मांगी रोटी, मिली लाठी' के अनुसार जब उसे रक्षा और प्यारके बदले झकझोर और क्रोध मिला और वह भी उससे जो बच्चेका मात्र आधार है तो उसे एक और बड़े भयने घेर लिया। यह नया डर मृत्युसे भी अधिक भयावना होता है। वह अपनी मांसे ही डरने लगता है, और संभवतः वह जन्मभर अंधकारसे डरता रहेगा और साथ-साथ अपनी मांसे भी। ये ही बच्चे बढ़कर कायर, डरपोक, निराश, स्वाभिमानरहित व्यक्तियोंके रूपमें हमारे समाने आते हैं। उनमें किसी प्रकारका आत्म-विश्वास नहीं होता और बिना आत्म-विश्वासके भला जीवनकी किसी दिशामें भी कोई सफलता मिलती है? सबसे बुरी बात यह होती है कि उनमें उस प्यारका माद्दा नहीं रह जाता जिसपर कोई विश्वास कर सके; अतः वे भावुकोंका-सा जीवन व्यतीत करते हैं और फलस्वरूप दुःख और असफलताएं उनके पल्ले पड़ती हैं।

स्वार्थपरता क्यों?

क्या आपने उस माताके भी दर्शन किये हैं जिसने अपने बच्चेपर अपने जीवनको न्यौछावर कर दिया है और ऐसा करना उसके लिए उतना ही स्वाभाविक है जितना सांस लेना? वह अपने बच्चेके लिए हर तरहका

इंतजाम रखती है, वह अपने लाड़लेको खिलाती है, हंसाती है, कसरत कराती है। उसका बच्चा, जिससे जो चाहे, कह सकता है। घरका हर एक आदमी उसकी सेवामें हाजिर रहता है। बच्चा अधिकारीकी तरह रहता है और सब लोग उसके मातहत बनकर।

ऐसा बच्चा आगे चलकर घमंडी निकलता है। उसे किसी प्रकारका भय नहीं होता, आत्म-विश्वास और बढ़ना उसके व्यक्तित्वकी विशेषता होती है। वह बेहद खुदगर्ज होता है। उसे तो यही सिखाया गया है न, कि दुनिया उसकी सेवा करनेके लिए ही बनी है। आजके सफल जीवन व्यतीत करते दिखाई देनेवाले बहुतसे लोग ऐसी ही शिशु-शिक्षाकी गलीसे गुजरते हैं। वे दुनियामें जो मिले उसे हड़पते रहते हैं, उन्हें दूसरोंके अधिकारोंसे कोई मतलब नहीं, कोई वास्ता नहीं।

अच्छे गुणोंका अभ्यास

सभी बच्चे भौचक राहीकी तरह इस दुनियामें आते हैं। हमें सहृदयता एवं शांतिपूर्वक उनकी सहायता करनी चाहिए। तभी वे सुंदर शक्तिशाली व्यक्तित्ववाले मनुष्य बन सकेंगे। ऐसे व्यक्तित्वके निर्माणका रहस्य बच्चोंकी मांको समझ लेना चाहिए और इसका समझना तभी संभव है जब माताएं बच्चोंके अंतःकरणको समझनेकी कला जान लें।

तीन महीनेका बच्चा दुनियाकी चीजें पहचानना शुरू कर देता है। उसकी मां जब उसे प्यार करती है तो वह बदलेमें मुस्कराने लगता है। चार महीनेका होनेपर वह भी एक बच्चेको रोते देखकर उसका साथ देने लगता है।

जब बच्चा छोटा होता है तब उसके हाथकी चीज ले लीजिए वह जरा भी एतराज न करेगा, पर सात महीनेका होनेपर अपनी पसंदकी चीज वह कभी देना न चाहेगा; पर जैसे तीन महीनेका बच्चा अपनी मांके प्यारका बदला मुस्कराहटसे देने लगता है उसी तरह वह अपना घुनघुना

या गेंद अपनी मांको उसके मांगनेपर देना सीख सकता है। बदलेमें धन्य-वाद पानेका सम्मान पानेकी आशा उसे उदार बनाती है, उसे ऊंचा उठाती है। सुखमय संसार बनानेका स्वर्णसूत्र—लो और दो—उसे इस प्रकार हृदयंगम करा दिया जाता है जिसके कारण आगे चलकर उसके चरित्रमें उदारताका प्रवेश होता है और उसमें अपनेको काबूमें रखनेकी शक्ति जाग्रत होती है।

उस दिन मैंने बीस महीनेका एक बड़ा होनहार बच्चा देखा। लोगोंने उसे मुट्ठीभर फूल दिये और दूसरे बच्चोंसे कहा उससे फूल मांगें। उसने हर मांगनेवाले बच्चेको एक-एक फूल दिया और अपनी मांकी गोदमें चढ़कर उसने मुस्कराते हुए अपना अंतिम फूल उसे दे दिया। उसकी मुस्कराहटमें मुझे स्वर्गकी-सी झांकी मिली।

जिस प्रकार कोई चीज देते समय बच्चा अपनेको गौरवशाली समझता है उसी प्रकार उसे कार्योंके संपादनमें भी गौरवका अनुभव करना सिखाया जा सकता है। यदि कोई अठारह महीनेका बच्चा अपने हाथसे खाने लगे और उसके इस कार्यकी समुचित प्रशंसा की जाय तो वह कार्योंको पूर्णता-के साथ करनेकी ओर अग्रसर होता है और इसमें उसे आनंद आने लगता है। बच्चेका काम दिनभर खेलना ही है। यदि उसे खेलनेके प्रत्येक नये प्रयासके लिए उत्साहित किया जाय, उसकी सूझकी दाद दी जाय तो इसका अर्थ यह होता है कि उसके भावी जीवनमें उसके द्वारा बड़े-बड़े कार्य होनेकी हम नींव डाल रहे हैं। हमारे बढ़नेमें हमारे मित्रोंकी शाबाशीका कितना हाथ रहता है।

बच्चेको किसी कामसे रोकते समय बड़ी समझदारीसे काम लेना चाहिए। उस वक्त हमे भलीभांति समझ लेना चाहिए कि बच्चा जो कुछ कर रहा है उसमें हम बाधा पहुंचाने जा रहे हैं। ध्यान रहे, कड़ी रोक-थामसे और ऐसी रोक-थामसे जिसका कारण बच्चा समझ नहीं पाता, बच्चेमें बगावतका भाव पैदा होता है। रोक-थाम अगर और कस दी जाय,

जिसके माने अत्याचारसे कम नहीं होते, तो आगे चलकर वही बच्चा अपने कुटुंबसे, समाजसे शत्रुता करने लगता है और मौका मिलनेपर देश-के साथ भी विश्वासघात कर सकता है।

हर एक माताको याद रखना चाहिए कि बच्चेको पूरी तरह समझना ही उसे प्यार करना है।

नेत्रोंकी रक्षा

जन्मके समय प्रायः शत-प्रतिशत बच्चोंकी आंखें बिल्कुल ठीक रहती हैं, पर यह क्या तमाशा है कि संसार छोड़नेके समयतक हम सबकी आंखें किसी-न-किसी तरह खराब हो ही जाती हैं।

आंखकी बनावट

बहुतसे अच्छी आंखोंवालोंके अंधे होकर मरनेका एक खास कारण आंखोंकी नाजुक बनावट भी है, इस वजहसे इसमें बड़ी आसानीसे नुकसान पहुंच जाता है। बचपनमें यह खतरा और भी ज्यादा रहता है।

आंखोंकी जिस खिड़कीसे हम दुनियाको देखते हैं उसके बाहरी भागको बहिष्पटल कहते हैं। इससे ठीक पीछे एक प्रकारकी गाढ़ी तरल, स्वच्छ, अत्यंत पारदर्शक वस्तु रहती है। इसके ठीक पीछे मध्यपटल होता है जो पारभासक तो होता है, पर पारदर्शक नहीं। मध्यपटलके भीतरकी ओर अन्तःपटल होता है। इसके और मध्यपटलके बीचका अंतर भी एक स्वच्छ गाढ़ी चीजसे भरा रहता है। जिन चीजोंको हम देखते हैं उनपरका प्रकाश पारदर्शक और पारभासक पटलोंद्वारा अंतःपटलपर पहुंचना है। अंतः-पटल एक पतली झिल्लीकी तरह होता है जो नेत्रके गोलेपर चिपका रहता है। इससे दृष्टिसंबंधी नाड़ियां भी जुड़ी रहती हैं। अंतःपटलपर पड़ी प्रकाश-किरणोंद्वारा जो चित्र बनता है उसकी छाप मस्तिष्कपर पड़ती है।

पोषणकी प्राप्ति

आंखोंकी तुलना फोटोके कैमरेसे की जा सकती है, फर्क इतना ही है कि कमरा निर्जीव और आंख सजीव होती है। आंखोंके स्वस्थ रहनेके लिए यह आवश्यक है कि उनकी बनावटमें कोई फर्क न पड़े। उन्हें ठीक

भोजन मिले और आंखोंके कार्य करनेमें जो कचरा पैदा हो वह साफ होता रहे। शरीरके अन्य अंगोंके लिए ये दोनों काम रक्त-वाहिनी नलिकाएं करती हैं, पर यदि रक्त आंखोंमें पहुंच जाय तो उनकी पारदर्शकता ही नष्ट हो जायगी और देखनेमें दिक्कत होगी।

तब आंखोंको भोजन कैसे मिलता है ? यह भी एक मजेदार किस्सा है। रक्त लाल और सफेद कणों तथा एक पारदर्शक तरल पदार्थका बना हुआ होता है। कण उसी तरल पदार्थमें तैरते रहते हैं। रक्त स्वयम् लाल नहीं होता। उसमें तैरते हुए कण उसे लाली प्रदान करते हैं। रक्तका यह स्वच्छ भाग आंखोंके चारों ओरकी नलिकाओंसे निकलकर चक्षु-यंत्रके प्रत्येक भागको भोजन पहुंचाता जाता है और कचरा इकट्ठा करता चला जाता है।

आंखोंको भोजन पहुंचनेकी यह रीति बड़ी नाजुक है और मजा यह है कि उन्हें भोजन नहीं मिलता तो और अंगोंकी अपेक्षा उन्हें अधिक हानि पहुंचती है। आंखोंको पूर्ण भोजन प्राप्त हो इसके लिए यह आवश्यक है कि उन्हें सिर्फ रक्तका पारदर्शक भाग न मिले वरन् उन्हें पूर्ण भोजन-युक्त रक्त मिले। जब यह नहीं होता और जो चीज मिलती है उसमें उसकी खूराकका पूरा सामान नहीं होता तब उनका लचीलापन नष्ट हो जाता है, वे ढीली और कोमल हो जाती हैं। उस वक्त उनमें आसानीसे नुकसान पहुंच सकता है और नुकसान पहुंचनेका मतलब है, कम दिखाई देना।

बच्चेका भोजन

अब देखिए कि जब रक्तमें शरीरके आवश्यक तत्त्वोंमेंसे कोई या कई तत्त्व नहीं होते तो आंखोंपर इसका क्या असर पड़ता है। विटामिन 'ए' को ही लीजिए। इसकी कमीसे चक्षु-यंत्रके तालोंकी पारदर्शकता नष्ट होने लगती है। बच्चोंको रतौंधी हो जाती है। उसका दिनमें भी देखना कठिन हो जाता है। उसे कम रोशनीमें साफ दिखाई नहीं देता,

तो चीजें स्पष्ट दिख इसके लिए बच्चा आंखकी मांसपेशियोंको सिकोड़ता है, उनपर जोर डालता है। इससे बाहरकी तरफ वे कुछ उभर-सी आती हैं। यदि इसी तरह आंखोंपर जोर पड़ना जारी रहा और विटामिन 'ए' की कमी भी बनी रही तो आंखोंके गोले प्रकृत्या मुलायम होनेके कारण लंबानमें कुछ बढ़ जाते हैं और बच्चेको दूरकी चीज कम दिखाई देने लगती हैं। उसकी आंखोंका बहिष्पटल सूख जाता है। उसमें एक तरहकी चमक पैदा हो जाती है और अंतमें उसमें सिकुड़न-सी पड़ जाती है। इसके बाद उसपर कुछ धुंधले दाग पड़ जाते हैं और बहिष्पटल पतला पड़ जाता है। इसे अंग्रेजीमें 'एरोपथल्मिया' रोग कहते हैं। आंखोंके रोगोंकी रोकथामके लिए अपने बच्चोंमें सादी चीज खानेकी आदत डालिए। आप उन्हें जो कुछ प्यारसे खिलायेंगी वे खुश होकर खायेंगे। यह तो आप जानती ही हैं कि विटामिन 'ए' दूध, दही, मक्खन, मलाई, सभी हरी तरकारियों, पीले रंगके फलों और टमाटरमें खूब मिलता है।

कुछ और भी ऐसे भोजनतत्त्व हैं जिनके अभावसे बच्चोंकी आंखोंपर बुरा असर पड़ता है। हालमें पता चला है कि भोजनमें विटामिन 'बी' की कमीके कारण बरौनी झड़ने लगती है और आंखोंमें खाज चलती है। यदि इस विटामिनकी बहुत अधिक कमी हो जाय जो बच्चोंको मोतिया-बिंदतक हो सकता है। विटामिन 'बी' शरीरकी समस्त नाड़ियोंको सशक्त बनाता है। इसके अभावके कारण आंखोंसे संबद्ध नाड़ियां कमजोर हो जाती हैं। विटामिन 'बी' चोकरसमेत आटेकी रोटी, संतरेके रस, पालक, करमकल्ला, दूध, गाजर, केले और चोकर में बहुत होता है।

भोजनमें विटामिन 'सी' की कमीके कारण कभी-कभी आंखोंके चारों ओरकी रक्त-नलिकाएं फट जाती हैं और आंख अपने स्थानसे च्युत होकर बाहरकी ओर निकल आती है। विटामिन 'सी' वाले प्रधान खाद्य हैं सेब, करमकल्ला, हरे मटर, संतरेका रस, प्याज, केला, चकोतरा, टमाटर, हरी मिर्च और आंवला।

विटामिन 'डी'का सूर्यसे संबंध है। इसकी भी बच्चेके स्वास्थ्यके लिए बड़ी जरूरत होती है। भोजनमें इस विटामिनकी कमीसे अनेक रोग होते हैं और खास तौरसे दूरकी चीज कम दिखाई देनेका रोग हो जाता है। ईश्वरकी कृपासे हमारे हिंदुस्तानमें सालभर सूर्य भगवान्‌के दर्शन होते हैं। बच्चेको दस मिनटतक सवेरेकी धूपमें खुले बदन रखनेसे उसके शरीरमें विटामिन 'डी'की कमी न होगी।

रक्त-चाप आदिसे हानि

बच्चोंको ठीक भोजन न मिलनेसे उन्हें अक्सर रक्त-चापका रोग हो जाता है। यह रोग जिस बच्चेको होता है उसकी आंखोंको भी उचित भोजन नहीं मिलता और आंख उठने आदिका रोग होनेका हमेशा डर बना रहता है।

निमोनिया—जैसे भयंकर रोग जब बच्चोंको हो जाते हैं तो उनकी आंखोंको भी बहुत नुकसान पहुँचता है। यह तो दिखाई देता है कि बच्चा दुबला होता जा रहा है, पर उसकी आंखोंको जो नुकसान पहुँचता है वह जबतक आंख बिल्कुल गड्ढेमें न पहुँच जायं, उनके चारों ओर काले छल्ले न पड़ जायं, तबतक सामने नहीं आता। इस वक्त उचित भोजन न मिलनेसे आंखोंके सौत्रिक तंतु मुलायम हो जाते हैं, जिससे बहुधा पुतली एक कोनेकी ओर खिसक जाती है और नजर तिरछी हो जाती है। आंखोंमें रोहे पड़ जाते हैं जो बड़ी मुश्किलसे जाते हैं।

बच्चा जब बीमारीसे उठे तो उसे स्वास्थ्यकर भोजन देनेका बहुत खयाल रखना चाहिए ताकि उसका स्वास्थ्य ठीक एवं शरीर पुष्ट हो जाय। स्वास्थ्य ठीक हो जानेपर बहुत बार रोगमें बिगड़ी आंख भी ठीक हो जाती है।

बच्चा जब दो वर्षका हो जाय तब उसकी आंखकी जांच करा ली जाय तो अच्छा है। अब ऐसा उपाय निकल आया है जिससे पढ़नेकी उम्रके

बहुत पहले ही उसकी आंख अच्छी तरहसे जांची जा सकती हैं। अक्सर, बच्चोंकी खराब आंखें उचित भोजन देने और आंखोंकी कुछ कसरत करा देनेसे ठीक हो जाती हैं।

उपचार

आंखोंके रोग दूर करनेके लिए जिसने जो कहा, आंखोंमें डाल लिया, जो अंजन बताया लगा दिया—ठीक नहीं है। सुकुमार आंखोंके साथ यह खेल करना बुरा है। किसी प्रकारकी तकलीफ होनेपर आंखोंको किसी अच्छे जानकारको ही दिखाना चाहिए और यदि आपके बच्चेको ठीक भोजन मिले तो उसकी आंख स्वयं स्वस्थ रहेंगी।

तिरछी आंखोंमें एक तरफकी मांसपेशियां कमजोर हो जाती हैं जिससे दूसरी ओरकी मांसपेशियां पुतलीको अंदरकी ओर खींचती हैं। अच्छी आंखपर घंटे-आध-घंटेके लिए रोज पट्टी बांध देनेसे आंखकी गड़बड़ी अक्सर दूर हो जाया करती है। आंख बांधकर बच्चेको दूसरे बच्चोंके साथ खेलने देना चाहिए। बच्चेके भोजन करते वक्त आंख बांधना ज्यादा लाभदायक है।

आत्मविकासका अवसर

मनुष्यका मस्तिष्क दुनियाकी सभी शक्तियोंसे अधिक शक्तिशाली है। अनिष्ट करने और कष्ट देनेवाली शक्तियोंको मस्तिष्क ही मिटा सकता है, यह युद्धको समाप्त कर मनुष्यका जन्म-सिद्ध अधिकार स्वतंत्रता और शांति दिला सकता है; पर मस्तिष्क है बहुत नाजुक चीज। शरीरसे तो बहुत ही अधिक नाजुक। आंकड़े बताते हैं कि सभी शारीरिक रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियोंकी संख्यासे मानसिक रोगियोंकी संख्या अधिक है।

मनोवैज्ञानिकोंका कहना है कि मानसिक विकासकी अवधिमें हमारे जीवनके प्रथम दो वर्षोंका बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है। यहीं माताकी कठिनाई उत्पन्न होती है। उसके लिए बच्चेको शारीरिकसे अधिक मानसिक स्वास्थ्य प्रदान करना कठिन होता है।

अनुभवका महत्त्व

नवजात शिशु टटोलकर अपना मुखद्वार पा सकता है और अपना अंगूठा चूसने लग सकता है। बच्चा अपने जीवनके पहले कुछ सप्ताहोंतक अपनी आंखें किसी वस्तुपर गड़ा नहीं पाता। उसे अपना हाथ नहीं दिखाई देता, उसके मुंहतक अंगूठेके पहुंचनेका कार्य स्वाभाविक रीतिसे हो जाता है। वह अपने हाथको इधर-उधर तेजीसे फेंकता है और अंतमें उसे उसका हाथ दिख जाता है जिसे वह मुंहमें डालनेकी कोशिश करता है। इसके बाद वह चूसनेमें होनेवाली गतिका अनुभव करता है। उसके लिए इस अनुभवका महत्त्व किसी अन्वेषणसे कम नहीं होता। उसकी बढ़ती हुई चेतनापर यह प्रकट होने लगता है कि वह ऐसी चीजको चूस रहा है जिसे उसने देखा है और वह कोई चीज, उसीका अंग है। वह अपने इस प्रयोगकी पुनरावृत्ति बार-बार करता है।

प्रायः बच्चेकी मां अपने बच्चेका अंगूठा चूसना देखती है, उसे चिंता हो जाती है कि कहीं बच्चेको यह बुरी आदत लग न जाय। वह जबतब बच्चेका हाथ पकड़कर उसके मुंहसे अंगूठा निकाल देती है। अपनी माताकी इस सेवाके उपहारस्वरूप बच्चा उसे अपनी चिल्लाहट और क्रोधका उपहार प्रदान करता है। बच्चेके मानसिक उद्योगका यह प्रयास, एक कार्य करनेका उसका साहस, कुचल दिया जाता है। इस तरह माता अपने बच्चेके साथ एक युद्धका आरंभ कर देती है और यह विनाशक युद्ध बच्चेके बाल्य-जीवनपर्यंत चलता रह सकता है।

मस्तिष्कका विकास

आरंभमें बच्चेके मस्तिष्कका कार्य उसके पास रहनेवालों एवं उनके संबंधपर निर्भर रहता है। उसके मस्तिष्कका विकास और उसका स्वास्थ्य लोगोंके इस संबंधद्वारा उत्पन्न मनोवैज्ञानिक, वायुमंडल, उसकी समझ, सहायता और प्रेमपूर्ण पथप्रदर्शनपर निर्भर है।

बच्चा अपने हाथसे कोई काम ले सके, उसकी पेशियां और नाड़ियां इस कदर विकसित हो जायं कि वह अपने हाथसे अथवा चम्मचसे ग्रास उठाने जैसा कठिन और दुस्तर कार्य कर उसे मुंहमें सफलतापूर्वक ले जाय, इसके पहले उसे अपने छोटे-छोटे हाथोंसे महीनों उद्योग और अभ्यास करनेकी जरूरत होती है। अपने इस प्रयासमें उसे जितनी वार सफलता मिलती है उसे उतनी वार एक काम पूरा कर लेनेका सात्त्विक आनंद प्राप्त होता है। चित्रकारको उसके चित्रके वोल उठनेपर जो आनंद प्राप्त होता है अथवा सितारियेको अपने हृदयके भाव तारोंपर तरंगित हो उठनेपर जो आनंद मिलता है ठीक वही आनंद इस समय बच्चेको मिलता है।

कार्यकी पूर्णताका आनंद जितना मस्तिष्कको विकसित करता है उतना ही वह मस्तिष्कके लिए स्वास्थ्यकर भी है। बच्चेके कार्य और उसकी सफलताका संसार उसकी अपनी निजी सहायतातक परिमित है

और अपने संसारमें आनंद प्राप्त होना उसके लिए अतीव आवश्यक है। उसकी माता उसके इस संसारकी शिक्षिका है; उसे बच्चेको अपने कार्यसे मिलनेवाली सफलताके आनंदमें हिस्सा बटाना चाहिए और उसे बच्चेको अपना कार्य करते रहनेके लिए उत्साहित करना चाहिए। बच्चा सफलता प्राप्त करे इसके लिए उसे इस खुराकका मिलते रहना आवश्यक है; पर यह कार्य माताके लिए बड़ा कठिन और उबा देनेवाला है, फिर भी बच्चेके प्रति उसका स्वाभाविक प्यार उसमें अखंड उत्साह भरे रहता है।

बच्चेको अपने उद्योगमें बड़े धैर्यसे काम लेना पड़ता है, क्योंकि उसकी उन्नतिकी गति बड़ी धीमी होती है। उदाहरणार्थ बच्चेको चम्मच-से काम लेनेमें क्या-क्या कठिनाइयां होती हैं; इसे एक बाल-विज्ञान-विशारदने संक्षेपमें इस प्रकार गिनाया है—

"मनुष्यके सांस्कृतिक विकासके जीवनमें चम्मचका प्रवेश अभी हाल-की चीज है। बच्चेको हाथ और मुंह तथा चम्मचको औंधा और सीधा, खाली और भरा होनेके अंतरको समझना होता है। संस्कृतिकी इस नवीन उपजके भारको अपने मुख-विवरतक सफलतापूर्वक पहुंचानेके लिए बच्चेको आंख और मुखकी मांस-पेशियोंको साधकर अपने हाथ, सिर, गले और कमरके अंग-विन्याससे समन्वय करना पड़ता है।"

बच्चा तीन महीनेका हो जानेपर चम्मच पहचानने लगता है और उससे भोजन ग्रहण करनेके लिए मुंह खोलने लगता है। छह महीनेका होनेपर चम्मच अपने मुंहमें लेनेके लिए वह जरा झुकने लगता है और हाथमें देनेपर चम्मच पकड़ने लगता है। नौ महीनेका होनेपर वह चम्मच उलटने-पलटने लगता है और एक हाथसे दूसरे हाथमें लेने लगता है।

सीखनेका स्वाभाविक ढंग

अपने दूसरे वर्षमें वह चम्मचसे खाना सीखने लगता है, पर यह सीखनेमें उसे सफलताओंके कितने गोरखधंधे तोड़ने पड़ते हैं। कभी वह

उसे बीचमें पकड़ लेता है, कभी सिरा मुंहमें डालता है, औंधे चम्मचसे भोजन उठानेकी कोशिश करता है, भोजन चम्मचसे गिरकर उसके पैरोंपर पड़ जाता है। कुछ ऐसी ही बातें उसके हाथसे खानेपर भी होती हैं। बच्चेको बार-बार घबराहट और तकलीफ़ होती है, पर यदि मां अपने हाथसे बच्चेको खिलाने लगे तो भला कहीं बच्चेको चम्मच-पर आधिपत्य प्राप्त हो सकता है? अतः बच्चेको हमेशा अपने हाथसे खाना सीखने देना चाहिए।

यदि बच्चा दस महीनेका होनेतक मांका दूध पीये और इसके बाद दिनमें चार बार खाये-पीये तो उसे दो वर्षका होनेतक स्वयं खाना सिखानेके लिए माताको करीब सत्रह सौ कठिन मौके मिलते हैं। बच्चा भोजन और भोजनके बर्तनोंसे खेलनेकी कोशिश करता है—और यह सीखनेका स्वाभाविक रास्ता है; पर यदि बच्चा मनुष्यका हो या पशुका, उत्तेजित हो जाय, क्रुद्ध हो जाय या वह डर जाय अथवा उसका ध्यान भोजनके प्रधान कार्य क्षुधाकी शांतिकी ओरसे हट जाय तो वह कभी अच्छी तरह नहीं खायगा।

बच्चोंको खाना सिखानेकी श्रेष्ठ विधि, जो अबतक जानी जा सकी है, यह है कि पहले बच्चोंको अपने हाथोंसे इतना खिला-पिला देना चाहिए कि उसकी क्षुधा शांत हो जाय और फिर उसे अपने हाथ चम्मच कटोरी, प्याले, थाली, भोजन आदिके साथ अपने प्रयोग खुलकर करने देने चाहिए और माताको चाहिए कि जब बच्चा अपने डगमगाते हाथों और अपने अविकसित शरीरको वशमें करनेकी कोशिश करे तो वह उसे यह सब खुशी-खुशी करने दे और उसे इसके लिए उत्साहित करती रहे।

माताको जानना चाहिए कि नाड़ियों और पेशियोंका विकास और उनपर अधिकार बहुत धीरे-धीरे ही प्राप्त होता है और उसे उसी धैर्यसे अपने बच्चेकी सहायता करनी चाहिए जिससे गायन और विभिन्न वाद्योंके आचार्य अपने शिष्योंको सिखाते समय काम लेते हैं। उनके जल्दी करनेसे कुछ नहीं हो सकता। सीखनेका काम अकेले शिष्योंको ही करना होता है।

स्वावलंबनका अभ्यास

जितना समय बच्चेको खाने और अपना कपड़ा पहननेमें लगता है उससे बहुत थोड़े समयमें मां अपने बच्चेको खिला-पहना दे सकती है, पर उसके बच्चेको इससे न तो कार्य-संपादनसे मिलनेवाला आनंद प्राप्त होगा और न वह आगे चलकर अपनी शक्तियोंका भलीभांति उपयोग कर सकेगा। इस विधिके उपयोगसे बच्चेकी कुछ करनेकी नैसर्गिक इच्छा मंद पड़ जाती है और उसे काम करनेमें न मजा आता है और न उसमें उसे आनंद मिलता है। ऐसे बच्चे आलसी, निराश, अंतर्निर्दिष्ट चित्त और मिलनसारीसे दूर होते हैं—फल यह होता है कि उनका मानसिक स्वास्थ्य विनष्ट हो जाता है। ऐसे बच्चेको जिंदगीभर अपने कार्यों, अपने बड़ों और अंतमें अपने सारे संसारसे युद्ध करते रहना पड़ता है।

बच्चेका अपने प्रत्येक कार्यसे वही संबंध होता है जो संबंध उसका चम्मचसे बताया गया है। चम्मचका उदाहरण यहां केवल एक संकेतकी भांति समझना चाहिए।

मूर्ख माता सबेरे बच्चेको उठाती है, कपड़े पहनाती है, खिलाती-पिलाती है और बच्चेको जो वह चाहे, करनेको छोड़ देती है। फिर जब खानेका समय होता है तब बलपूर्वक वह बच्चेको उनसे छुड़ा ले जाती है और अंतमें रातको सुला देती है। उसके ये कार्य बच्चेको मानसिक रोगी बनाते हैं।

बुद्धिमती माता बच्चेके इन्हीं सब कार्योंको स्वयं करनेमें सहायक होती है, उसे सिखाती है और बढ़ावा देती है। वह उसके सभी कार्योंमें खुशी-खुशी सहयोग करती है, उसके अपने संसारपर पूर्ण प्रभुत्व पानेमें सहायक होती है, जब उसका बच्चा किसी कार्यको पूरा करता है तो उससे आनंदित होती है और इस प्रकार वह अपने बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यकी पुष्ट नींव बचपनमें ही डाल देती है और यह अस्त्र उसको जिंदगीभर संसार-युद्धमें मदद देता है।

शिशुओंका शिक्षण

दंड भयकी भित्तिपर प्रस्थापित है। जिस दंडसे भय न लगे वह दंड नहीं है।

नवजात शिशु केवल दो चीजोंसे डरता है: गिरनेसे और जोरकी आवाजसे। केवल ये दोनों डर जन्मजात होते हैं, आगे चलकर बच्चा जिन और चीजोंसे डरने लगता है उनसे डरना वह यहां सीखता है।

भयका आरंभ

बच्चा आरामसे अंधेरे कमरेमें सो रहा है, बिजली कड़कती है और वह चौंक उठता है। बिजलीकी बड़कड़ाइट उसे ड़रा देती है और वह चिल्ला उठता है। अब अंधेरेको वह दूसरी ही दृष्टिसे देखने लगता है; क्योंकि अब वह अंधेरेका संबंध बिजलीकी कड़कड़ाहटसे जोड़ता है। अब वह अंधेरेसे डरने लगता है। इस प्रकारके डरको मनोविज्ञानवेत्ता गुण-भयके नामसे पुकाड़ते हैं। बचपनमें सीखा हुआ यह अंधेरेसे डरना मनुष्यकी जिंदगीभर चलता रह सकता है।

बच्चेके लिए और उसके आसपास रहने वालोंके लिए जो कार्य हानि-प्रद हो उससे बच्चेको दंडके आधारपर डरना सिखानेकी जरूरत होती है, पर यह कार्य बड़ा कठिन है; क्योंकि उसे हमारी इच्छित वस्तुसे डरना सिखाना लगभग असंभव है। गलत और सही वस्तुको समझनेमें यह हमेशा गड़बड़ी करता है; अतः जिस चीजसे न डरना चाहिए, उससे ही वह डरने लगता है। इस प्रकार यदि वह बहुत-सी चीजोंसे डरने लगे, तो फल यह होगा कि उसका जीवन दुःखद हो जायगा, नाड़ियां दुर्बल हो जायंगी और वह रोगी हो जायगा। सुरक्षाकी दृढ़ आशाके साथ-साथ खतरेकी पूरी समझदारीकी नींवपर ही स्वस्थ मस्तिष्कका निर्माण होता है।

अनेक चीजोंसे डरते रहने एवं अपनेको अरक्षित दशामें समझनेसे बच्चेका दिमाग कमजोर हो जाता है।

शिक्षणका ढंग

छोटा बच्चा पथसे डरता, आगे बढ़ता न जाने किस अज्ञात स्थान-से हम लोगोंके पास आता है। वह न तो हमें जानता-पहचानता है और न हमारी रीति-रिवाजको ही समझता है और हम लोगोंकी आज्ञाका पालन करना भी बहुत धीरे-धीरे सीखता है। वह पूर्णतया हमारी दया-पर निर्भर रहता है, उसे सभ्य बनानेके लिए हमें उसके साथ कम-से-कम वैसा व्यवहार तो करना चाहिए जो हम अपने एक ऐसे अतिथिके साथ करेंगे जो हमारी भाषामें न बोल सकता है न समझ ही सकता है। बुद्धिमती माता बच्चेको सिखानेका काम बहुत नम्रतापूर्वक 'करती है। उसे याद रखना चाहिए कि 'दुनियाका न कोई आदमी इतना बुद्धिमान् है और न भला ही जो किसी दूसरेपर शासन करनेका अधिकारी समझा जाय।'

जिस बच्चेका पालन-पोषण उचित ढंगसे किया जाता है वह नियम-प्रिय होता है। मेरे इस कथनमें लोगोंको कुछ विरोधाभास-सा प्रतीत होगा ; पर असलियत यही है और इसीमें बच्चोंके पालनका सारा रहस्य छिपा हुआ है। बच्चा नियमप्रिय हो, इसके लिए उसे पहले सिखाना और समझाना होगा, उसका संस्कार करना होगा। इसके बाद नियम भंग करनेका फल दंडकी जरूरत हो नहीं रह जायगी।

आज्ञा-पालन

बच्चा कुछ सीख सके इसके लिए यह जरूरी है कि वह आज्ञाओंका पालन करे और उसमें दूसरी अच्छी आदतोंकी तरह आज्ञापालनकी आदत भी डाली जानी चाहिए; पर यह आदत हुक्मके बलपर नहीं

डाली जा सकती। बच्चेकी जरूरतें उससे फुसलाकर ही जानी जा सकती हैं, डांटकर नहीं पूछी जा सकतीं। "बाबू आओ खा लो!" "चलो, घूमने चलें।" "बच्चा, अपने खिलौनेसे खेलो!"—कहा, जरा कंधेपर थपथपाया, थोड़ा मुस्कराये और बच्चेने हामी भरी और इसके साथ ही लोगोंके साथ उचित व्यवहार करनेके बीज उसमें पड़ गये, उसके बाल-संसारमें आनंद-का उद्भव हुआ और वह दूसरी अच्छी आदतोंसे ग्रहण करनेके पथपर लग गया। आदत ग्रहण करनेका स्वभाव बच्चा अपनी रगोंमें लेकर पैदा होता है।

केवल दंडके बल बच्चोंसे बुरी आदतें नहीं छुड़वायी जा सकतीं। एक बुरी आदतके बदले बच्चेमें कोई दूसरी अच्छी आदत डालनेसे बुरी आदत स्वयं चली जाती है। उदाहरणके लिए यदि बच्चा भोजनके लिए बुलानेपर अपने खिलौने छोड़कर आनेसे इन्कार करता है, तो उसकी यह आदत याद रखने योग्य है। अब चाहिए यह कि भोजनके समयसे थोड़ा पहले बच्चेसे भोजन करनेके लिए चलनेको नहीं वरन् रस्सी कूदनेका खेल खेलनेके लिए चलनेको कहा जाय। खिलौनोंसे खेलनेके बजाय रस्सी कूदनेमें थकान जल्दी आती है और इस खेलसे संतोष भी जल्दी हो जाता है। अब बच्चेको भोजन करनेके लिए चलनेको कहिए वह तुरंत आपके साथ हो लेगा।

कभी-कभी ऐसा होता है कि बच्चा यकायक सोनेके लिए बिछावन-पर जानेसे ही इन्कार करने लगता है। ऐसी नाहींका कारण जान सकना जरा कठिन होता है। मूर्ख माता-पिता कभी-कभी रोते बच्चेको उसके रोनेका कारण न ढूंढकर अधीरावस्थामें उसे खाटपर पटक देते हैं और रो-चिल्लाकर स्वयं चुप हो जानेके लिए छोड़ देते हैं। इस प्रकारका केवल एक अनुभव उस बच्चेको, जो खुशी-खुशी अपने बिछावनपर जाकर सोता था, बिछावनसे डरा देता है। बच्चेके पेटमें दर्द था, उसके इस दर्द-को दूर करनेका कोई उपाय न कर उसे बिछावनपर पटक दिया जाता है, बच्चा बिछावनको ही पेटके दर्दका कारण समझने लगता है, वह पेट

के दर्दका संबंध बिछावनसे जोड़ने लगता है और वह बिछावनके विरुद्ध हो जाता है।

बचपनके अनुभव

यह समझना तो कठिन है कि बच्चा इन चीजोंका अनुभव कितनी स्पष्टतासे करता है, पर अधिकतर लोग जानते हैं कि बचपनके कुछ अनुभव बड़े महत्त्वके होते हैं और उनका असर जीवनभर रहता है। प्रायः सभीने देखा है कि बच्चा लालटेनके पास लड़खड़ाता हुआ पहुंचता है और वह लौको पकड़नेके प्रयासमें चिमनीको छू देता है— वह रोने लगता है और फिर वह लालटेनके पास नहीं जाता। अनुभवने लालटेनसे उसे डरना सिखा दिया और जिस तरह आप खतरेकी चीज बच्चेकी आंखोंसे दूर रखकर बच्चेको उनसे बचाते हैं, उसी तरह आप अपने बच्चेको बुरी आदतोंके खतरोंसे, उन्हें बुरी बातोंसे दूर रखकर बचा सकते हैं। उसे इतना थकने मत दीजिए कि थकानके मारे रोने लगे, ऐसी परिस्थिति ही उत्पन्न न होने दीजिए कि उसे क्रोध आये। उसे संतुलित भोजन दीजिए, कसरत कराइए, शुद्ध वायुमें रखिए, उसके शरीरको नित्य सूर्यकिरणोंको चूमने दीजिए, उसमें चिड़चिड़ापन उत्पन्न न होगा। पूर्ण स्वस्थ बालकका जैसा सुंदर स्वभाव होता है, वैसा बढ़िया स्वभाव इस पृथ्वीपर किसी दूसरेका मिलना असंभव है। बच्चेको ठाला न रहने दीजिए कि 'शैतान, उसे शरारत सिखाये। उसे कुछ करते रहने दीजिए।' किसी खिलौनेसे खेले या कोई खेल खेले। छोटे बच्चोंको तो खास तौरसे किसी काममें लगाये रहिए।

स्वास्थ्यसंबंधी नियमोंका ज्ञान

दांतोंकी सफाई

कारण न मालूम होनेपर बच्चे नियमोंको भंग करते रहते हैं और जल्द ही उन्हें भूल भी जाते हैं, पर अगर कारण मालूम रहे तो इसकी संभावना कम रहती है। 'मैं चाहती हूं कि तुम रोज प्रातःकाल दातून किया करो'—इस तरहके आदेश बच्चोंके लिए निरर्थक प्रमाणित होते हैं, पर अगर उनको यह समझा दीजिए कि अच्छी तरह चबानेसे खाना जल्द पचता है और इस चबानेकी क्रियाके लिए दांतोंका मजबूत और बढ़िया रहना जरूरी है, तो वे आसानीसे यह शिक्षा ग्रहण कर लेंगे और अगर आप यह भी हृदयंगम करा दें कि चमकते हुए दांत मोती—जैसे सुंदर और आकर्षक होते हैं, तो वे इस उद्देश्यको ध्यानमें रखते हुए रोज दातून करने भी लगेंगे।

भोजनसंबंधी स्वच्छता

अब खानेके पहले हाथ धोनेकी बात लीजिए। बच्चोंको विशेषकर लड़कोंको—दैनिक कृत्यसंबंधी यह बात हृदयंगम करानेमें बहुत अधिक समय लगेगा। आप भोजनके समय उन्हें बतलाएं कि गंदगी और उसमें रहनेवाले कीटाणुओंके खाद्य पदार्थमें प्रविष्ट हो जानेपर वह बहुत हानि-कारक हो जायगा और अगर खानेके पहले हाथ न धोया जाय तो इस तरहकी खराबी होनेकी बहुत अधिक संभावना रहेगी। अगर माता गंदे हाथोंसे खाना परसती है या खाना बनानेमें सफाईका ध्यान नहीं रखती तो इस तरहके उपदेशसे कोई लाभ नहीं होगा। इसलिए बच्चोंके सामने कोरा उपदेश न रखकर उदाहरण भी रखा जाना चाहिए। इस तरीकेसे दुराग्रही-से- दुराग्रही लड़का भी तथ्य ग्रहणकर अच्छे नियमोंके पालन-पर ध्यान देने लगेगा।

अंदरकी सफाई

अंदरकी सफाई भी बड़े महत्त्वकी चीज है। खराबीका भय दिखलाने या डांट-फटकारसे इस उद्देश्यकी पूर्तिमें कोई सहायता नहीं मिलती। 'शौचादि नित्य क्रियाओंको नियमित रूपसे किया करो, नहीं तो रोग हो जायगा'—इस तरहकी बात बच्चोंके मनमें भय उत्पन्न कर देती है और भय प्रायः कब्जका कारण हुआ करता है। उन्हें समझाइए कि नित्य क्रियाओंको नियमित रूपसे करनेसे अंदरकी सफाई ठीक उसी तरह होती है जिस तरह नहाने-धोनेसे बाहरकी सफाई होती है। उन्हें यह भी समझाइए कि किस प्रकार उपयुक्त आहार—ताजा फल, तरकारियां, चोकरदार आटा, सलाद—पेटकी सफाईमें मदद करता है और ठंडा जल कैसे कब्ज दूर करनेका सर्वोत्तम साधन है।

व्यायामकी प्रवृत्ति

आजकलके बच्चोंको व्यायाम—विशेषकर टहलना—बहुत खलता है। 'मैं बस या और किसी सवारीका उपयोग क्यों न करूं? मैं पैदल चलना पसंद नहीं करता। बेकार ही पैरोंको क्यों थकाने जाऊं?'—इस तरहके भाव उनके मनमें उठा करते हैं। उन्हें समझाइए ताजी हवामें टहलना—इससे होनेवाला पेशियोंका व्यायाम और इसके कारण फेफड़ोंमें भरनेवाली ताजी हवा किस प्रकार स्वास्थ्यदायक होनेके साथ-साथ शक्तिवर्द्धक भी होती है।

ताजी हवाकी प्राप्ति

अब ताजी हवाकी आवश्यकतापर आइए। जिन बच्चोंका पालन-पोषण शैशवकालसे ही हवादार जगहमें हुआ है वे तो इसके आदी हो जाते हैं और इसका महत्त्व भी कुछ-कुछ समझते हैं, पर बहुत-से लड़के ऐसे भी मिलेंगे जिनको इसके महत्त्वका जरा भी ज्ञान नहीं होगा। वे पूछ बैठेंगे

'कमरेकी खिड़कियां क्यों खुली रखी जायं ? मैं बाहर न निकलकर अंदर ही क्यों न बैठा रहूं ?' अगर कोइ बाधा न हो तो उन्हें रोज मैदानमें ले जानेका प्रयत्न कीजिए जिनमें वे कुछ बड़े होनेतक इसके अभ्यस्त हो जायं।

निद्राकी आवश्यकता

अधिकांश बच्चे तो जल्द ही सो जाते हैं, पर कुछ ऐसे भी होते हैं जो अनाप-शनापमें लगे रहकर जल्द सोनेका नाम ही नहीं लेते। बिना कारण बतलाये जल्द सोनेके लिए हठ करने या न सोनेपर झिड़कनेसे काम नहीं चलेगा। मनोरंजक ढंगसे उन्हें समझाइए कि बाढ़के लिए निद्रा क्यों आवश्यक है और शरीरके विभिन्न अंग निद्रामें कैसे अपने क्षयकी पूर्ति और नवजीवन प्राप्त करते हैं और अगर वे पूरा न सोय तो शरीर और मस्तिष्कका विकास जैसा होना चाहिए वैसा क्यों नहीं होगा।

स्वास्थ्य और भविष्य

अब सब प्रश्नोंका एक प्रश्न उपस्थित होगा कि 'अच्छा स्वास्थ्य ही इतना क्यों आवश्यक है ?' इस प्रश्नके समाधानके लिए माताको भविष्यसे इसका संबंध जोड़ते हुए चतुरताके साथ बतलाना चाहिए कि जीवनके किसी भी क्षेत्रमें सफलता प्राप्त करनेके लिए स्वास्थ्य ही सबसे अच्छा साधन होता है और चूंकि यह बड़ी देन है इसलिए इसकी उपेक्षा न कर सावधानीके साथ इसकी रक्षा करनी चाहिए। इस प्रकार स्वास्थ्य-संबंधी दैनिक नियमोंकी शिक्षा देने और शरीरको रुग्ण तथा अयोग्य बनानेवाले कार्योंसे विरत करनेका कार्य बचपनमें घरमें ही सबसे अच्छे ढंग और सरलतासे हो सकता है।

असंगत व्यवहार

यदि हम चाहते हैं कि हमारे बालक अच्छे हों तो हमें इसके लिए बहुत कोशिश करनी होगी। जब कोई हमसे मिलने आये तब उसके सामने हम एक तरहकी बात करें और उसके चले जानेपर दूसरी तरहकी बात करें तो, हमारे इस व्यवहारसे बालकमें असंगति पैदा होगी। कोई हमारे घर कुछ मांगने आये और हम उससे तो कह दें कि घरमें वह चीज है ही नहीं और फिर उसके चले जानेके बाद माता या पितामेंसे कोई वही चीज बालकको निकालकर दे, तो फिर बालकमें भी यही दोष पैदा होगा।

तात्पर्य यह कि यदि हम अपनी बातचीतमें या व्यवहारमें संगतिका, मन, वचन और कर्मकी एकताका खयाल न रखगे और कभी कुछ और कभी कुछ कहते या करते रहेंगे, जो कुछ कहेंगे उसके खिलाफ कुछ भी कहने या करनेको तैयार रहेंगे, तो विश्वास रखिए कि हमारा बालक भी वैसा ही बनेगा और इसमें उसका कोई दोष न होगा। उस हालतमें हमारा यह कहना कि यह लड़का या लड़की ऐसी क्यों है, व्यर्थ होगा और इस सवालका जवाब हमें अपने अंदर ही ढूंढ़ना होगा ।

जबतक बच्चोंको दुनियाकी हवा नहीं लगती तबतक वे बिल्कुल सरल होते हैं। यह तो हम हैं जो निर्मल पानीके सरोवरको मथकर गंदा कर डालते हैं और उसे मिट्टी और कचरेसे भर देते हैं। इसी कारण जो बालक आरंभमें सब प्रकारसे सुंदर रहता है वहीं ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है—बालक मिटकर आदमी बनता जाता है त्यों-त्यों अपनी अंतर और बाह्य सुंदरता भी खोता जाता है। उसके अंदर भी हम कलियुगका प्रवेश करा देते हैं। इस तरह जब वह ठीक हमारे समान बनकर हममें घुल-मिल जाता है तभी हमें संतोष होता है ।

अगर कोई बालक अपने माता-पिताकी किसी असंगतिकी ओर

इशारा करता है तो माता-पिता उसपर नाराज होते हैं। मां-बापकी भूल दिखानेवाला बालक उनके क्रोधका शिकार बनता है। वे उसे आड़े हाथों लेते हैं और कहते हैं—'बहुत सयाना बनता जा रहा है—क्यों ?' दुनिया-भरके लौंडोंके साथ खेल-खेलकर मुंहफट बन गया है; जो मनमें आता है सो बक जाता है, मगर खबरदार,हमसे यह सब बर्दाश्त न होगा।"

बालक मनमें सोचता है कि उसने जो बात कही या विचार प्रकट किये वे किसीकी देखा-देखी या मांग-भूंगकर नहीं किये थे। माता-पिताके असंगत व्यवहारको देखकर ही मनमें ये बात पैदा हुई थीं। मुंहजोरी करनेकी या हेकड़ी दिखानेकी तो उसमें कोई बात ही नहीं थी। शायद मां-बाप अपनी जिम्मेदारीको छिपाने और अपना बड़प्पन जतानेके लिए ही ऐसा व्यवहार करते हैं। वे इससे नावाकिफ हैं या इसे समझते नहीं हैं, ऐसी भी कोई बात नहीं। उनके दिलमें यह खयाल होता रहता है कि इस तरह हम बालकको धोखेमें रख सकेंगे अथवा डरा-धमकाकर झूठा ठहरा सकेंगे, लेकिन उनका यह खयाल गलत है, भ्रमपूर्ण है।

बालक श्रद्धालु होता है और इसी कारण वह श्रद्धा या विश्वास रखता है। जब श्रद्धा नहीं रह जाती तब सब खत्म हो जाता है। माता-पिताका असंगत व्यवहार बालकोंके और उनके बीचके श्रद्धाके बांधको तोड़ डालता है अतएव आवश्यक है कि माता-पिता चेत और सजग रहें।

बच्चोंकी समस्याओंका हल

बच्चे परिवारमें विशेष प्रकारकी समस्याएं प्रस्तुत करते हैं। अग्नि तथा दुर्घटनाओं आदिसे रक्षा, भोजन, वस्त्र, खिलाने आदिकी व्यवस्था, अनुशासनकी शिक्षा आदि इसी प्रकारकी समस्याएं हैं।

अगर हम इन समस्याओंपर एक दूसरे ही दृष्टिकोणसे विचार करें तो इनका रूप कुछ सरल हो जा सकता है। बच्चे जवानोंसे बिलकुल भिन्न होते हैं और उनके लिए भिन्न प्रकारके आहार, रहने और बढ़नेके लिए भिन्न प्रकारके स्थान, भिन्न प्रकारके व्यायाम और भिन्न प्रकारके ही विश्राम-की भी आवश्यकता होती है। अगर हम यह बात अच्छी तरह समझ लें तो उनके लिए स्वास्थ्यकर स्थिति प्रस्तुत करनेमें आसानी होगी। आज बच्चोंसे संबंध रखनेवाली आधी परेशानियां केवल इस कारण हैं कि हमने जवानों और बच्चोंके बीच जो बहुत बड़ा अंतर है उसे दृष्टिसे ओझल कर दिया है। उदाहरणार्थ, बढ़ते हुए बच्चोंके लिए एक आवश्यकता यह है कि उनके दौड़ने, कूदने, शोर-गुल करने, तरह-तरहके खेल खेलनेके लिए स्थानकी व्यवस्था हो। उनकी इस आवश्यकताको समझें और जब वे काफी बड़े हो जायं तो उन्हें किसी सुरक्षित स्थान या खेलके मैदानमें भेज दें जिसमें वे वहां अपनी इच्छाभर चिल्ला और उछल-कूदकर अपना व्यायाम कर लें। इसके अनंतर वे अगर खिलौनोंसे खेलने, पुस्तक देखने, चित्र बनाने आदिमें लगा दिये जायं तो काफी देरतक शांत बने रहनेकी आशा की जा सकती है। बच्चोंको चिल्लाने देकर सारे घरको सिरपर उठा नहीं लेने देना चाहिए, पर साथ ही शोर-गुल मचाने लिए उन्हें स्थान और अवसर देना भी आवश्यक है। जो शहरोंकी तंग गलियों या घनी आबादीमें रहते हैं उनके लिए बच्चोंके जीवनयापनके निमित्त उचित प्रबंध करना कठिन होता है, पर थोड़ा प्रयत्न करनेपर कुछ-न-कुछ

व्यवस्था हो ही जाती है। चाहे जैसे भी हो, इसका प्रबंध तो होना ही चाहिए नहीं तो बच्चे बिलकुल दब्बू स्वभावके हो जायेंगे।

बच्चोंके लिए निजी स्थान

बच्चेंके लिए बुद्धिमत्तापूर्ण और दृढ़नियमोंवाले व्यवस्थित जीवनकी आवश्यकता होती है। उनके लिए एक खास जगह—चाहे छोटी ही क्यों न हो—अवश्य होनी चाहिए जहां वे अपनी निधियां रख सकें और बड़े लोगोंकी चीजोंको नुकसान पहुंचाये बिना आजादीसे खेल सकें। अच्छा तो यह हो कि उनके लिए एक कमरा ही अलग कर दिया जाय। अगर इस तरहका कोई प्रबंध न हो तो उनके लिए गृहोद्यान या मकानसे लगी हुई जमीनमें झोंपड़ी-जैसी कोई चीज बना दी जाय जिसमें वे मौसिम अच्छा होनेपर खेल सकें। सयाने लोगोंका उन्हें साथ-साथ दुकान-दुकान या जहां-तहां घुमाते फिरना या बराबर उनका मनोरंजन करते रहना बहुत बुरा होता है।

मनोरंजनके साधन

बच्चोंका खिलौना भी उनकी अवस्थाके अनुरूप और उपयुक्त होना चाहिए। यह कोई जरूरी नहीं कि खर्चीली चीज ही खरीदी जायं, छिटपुट चीजें प्रस्तुत कर दी जायं जिनसे वे अपनी बुद्धिसे तरह-तरहके खिलौने बनाकर खेलते रहें। उन्हें स्वयं अपना मन-बहलाव कर लेनेका तरीका सिखला देना चाहिए। वे किसीको साथमें रखना चाहते हैं और अगर बहुत छोटे हों तो अपनी माताको बराबर देखते रहना चाहेंगे। अगर वे दूसरे बच्चोंके साथ न खेल रहे हों तो अपने साथ बहुत देरतक खेलनेका अवसर उन्हें नहीं देना चाहिए। सयाने लोगोंका काम सिर्फ यह है कि वे बच्चोंके पास ही बने रहें जिसमें वे अपनेको निरापद समझते रहें।

परिवर्तनकी व्यवस्था

संतानवालोंका यह कर्तव्य है कि वे अपने काम करनेके ढंगपर विचार करें, यह स्मरण करनेकी कोशिश करें कि उनका अपना बचपन कैसा जान पड़ता था और इस अनुभवके आधारपर अपने बच्चोंके लिए स्वस्थ और प्रसन्न घर प्रस्तुत करें। सभी अवस्थाओंके बच्चोंके संबंधकी अधिकांश कठिनाइयां इस कारण प्रस्तुत होती हैं कि हम यह ठीक-ठीक नहीं जान पाते कि बच्चा कितना समझ सकता है और कितना कर सकनेकी उसमें क्षमता है। वह जितना छोटा होगा उसमें अपनी इच्छाओंपर नियंत्रण करने और कुछ देरतक किसी काममें लगे रहनेकी शक्ति उतनी ही कम होगी। कम अवस्थाका बच्चा किसी खेलसे जल्द ही ऊब जाता है, उसका ध्यान इधर-उधर बंट जाता है और परिवर्तन चाहता है इसलिए हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम उसके लिए तरह-तरहके काम प्रस्तुत रखें जिसमें उसके परिवर्तन चाहनेपर इसकी व्यवस्था जल्द ही हो जाय। अगर बच्चा किसी एक काममें देरतक नहीं लगा रहता है तो इससे यह न समझ लेना चाहिए कि वह नटखट है। दरअसल उस समय वह उसी अवस्थामें होता है और बुद्धिमानीका काम यह हो कि उसके लिए एक छोटी-सी आलमारीका प्रबंध कर दिया जाय जिसमें वह अपने खिलौने रख सके और उसे यह सिखला दिया जाय कि उसमेंसे एक समय एक खिलौना कैसे निकाला और उपयोगमें लाया जाय। उदाहरणार्थ, आप उसमेंसे घोड़ा या और कोई खिलौना निकाल लीजिए, उसका उपयोग या उसके संबंधकी कुछ बातें बतलाइए और तब उसे रखकर कोई दूसरा खिलौना निकालिए। शिशुशालाओंमें यही किया जाता है और बच्चे अपनी अवस्थाके अनुरूप खिलौनों या कामोंमें खुशीके साथ लगे रहते हैं।

गृहकार्यमें सहायता

कुछ अधिक अवस्थाके बच्चोंको आप यह बतला सकते हैं कि घरके

कामोंमें कैसे सहायता दी जा सकती है। इससे वे स्वावलंबी और उपयोगी बननेकी शिक्षा प्राप्त करते हुए माताको श्रमसे बहुत कुछ बचा सकते हैं। यह समझना मूर्खता है कि हम बच्चोंको काम न करने देकर उनके साथ बड़ी मेहरबानी कर रहे हैं। घरमें काम करना स्वाभाविक है; इससे बच्चोंमें परिवारका सदस्य होनेकी भावना उत्पन्न होती है और वे धीरे-धीरे अपने कपड़े साफ कर लेना, थोड़ी लकड़ी काट देना, कोयला लाकर देना (इस तरहके कामोंमें उन्हें बड़ा आनंद आता है), कुर्सी आदि ठीक तरहसे रखना तथा इस तरहके अन्य छोटे-मोटे काम करना बहुत जल्द सीख जाते हैं।

यह अच्छी तरह समझ रखना चाहिए कि शारीरिक श्रम मानव-जातिके लिए और विशेषतः बच्चोंके लिए जो विकासकी दृष्टिसे अभी आदिम अवस्थामें होते हैं, सर्वथा स्वाभाविक है। जो बच्चे घर-परिवारके लिए लाभदायक कामोंमें प्रवृत्त किये जाते हैं उनमें जल्द ही आत्म-विश्वासकी भावना उत्पन्न हो जाती है और वे सुखी भी होते हैं। इसके अलावा एक लाभ यह भी होता है कि उनकी पेशियों और शरीरके विभिन्न अंगोंके पारस्परिक संबंधका विकास होता है और उनका स्वास्थ्य सुधरनेके साथ-साथ उनका मानसिक क्षितिज भी विस्तृत होता जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य

बच्चेके शारीरिक अस्वस्थताका ज्ञान उसके मां-बापको आसानीसे हो जाता है।

अगर बच्चेका जीवन सुखमय और उपयोगी बनाना अभीष्ट है तो शारीरिक स्वास्थ्य-जैसा ही इसपर भी ध्यान देना आवश्यक होगा। मां-बाप सिर्फ यह कहते हैं कि बच्चा नटखट, बरबादी, ढीठ, चिड़चिड़ा या काबूके बाहर है और इन दोषोंका सुधार करनेके लिए भिन्न-भिन्न उपायोंका सहारा भी लेते हैं—दंड देते, उसकी खुशामद करते, लानत-मलामत करते या आधुनिक दृष्टिकोण अपनाकर उसे स्वतंत्र रूपमें आचरण करनेके लिए बिलकुल छोड़ देते हैं; पर जिस तरह बढ़ी हुई उपजिह्विका (टॉंसिल) शारीरिक अवस्था बहुत खराब होनेकी सूचक है। उसी तरह उक्त बुरी प्रवृत्ति भी बहुत बढ़ी हुई मानसिक अस्वस्थताका लक्षण है।

मानसिक दोष और अस्वस्थता

मानसिक अस्वस्थता, मानसिक दोष अर्थात् दिमागकी कमजोरीसे बिलकुल भिन्न चीज है। मानसिक दोष तो लंगड़ापन आदि शारीरिक दोषके समान है जो बच्चेके शरीरमें बराबर बना रहता है, पर मानसिक अस्वस्थता साधारणतः स्वस्थ रहनेवाले, पर कुछ कालके लिए रोगके चंगुलमें फँस जानेवाले बच्चेकी शारीरिक अस्वस्थताके समान है।

किसी भी बच्चेके संबंधमें यह आशा नहीं की जा सकती कि वह बिलकुल पूर्ण होगा और उसमें कभी खीझ या चिड़चिड़ापन नहीं देख पड़ेगा। प्रायः बच्चे ऐसी अवस्थासे भी गुजरते हैं जिसमें वे बहुत कम सह-योग करते और नियंत्रणके बाहर भी हो जाते हैं हालांकि वे साधारणतः ऐसे नहीं होते। इससे मां-बापको घबड़ाना या यह न समझ बैठना चाहिए

कि बच्चा मानसिक रोगसे ग्रस्त है, उन्हें नये सिरेसे विचारकर यह देखना चाहिए कि व्यवस्था या व्यवहार आदिमें ऐसी कोई बात तो नहीं आ गयी है जो बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यकी उन्नतिमें बाधक हो रही है।

मानसिक स्वास्थ्यकी आवश्यक शर्तें

बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए सबसे अधिक आवश्यक सुरक्षित और निश्चित होनेकी भावना है। ऐसा वातावरण, जिसमें मां-बाप बच्चेको ही नहीं बल्कि एक-दूसरेको भी प्यार करते हों, अन्य बहुत-सी कमियोंकी पूर्ति कर दिया करता है। हां, जहां निवाससंबंधी कठिनाइयां हैं, एक ही मकानमें कई परिवार निवास करते हैं वहां इस प्रकारकी भावनाका आधार प्रस्तुत कर सकना कुछ कठिन होगा। जो लोग बच्चेमें खामियां होनेकी शिकायत करते हैं वे छोटे बच्चेमें अरक्षित होनेकी भावना उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोंका सुधार करनेकी ओर समुचित ध्यान देनेमें उतने सतर्क नहीं रहा करते और यह बच्चेमें मानसिक अस्वस्थता बढ़ाकर उसकी भावी असफलताकी नींव डाल दिया करता है। अगर बाल-अपराधोंके कारणोंकी तहतक पहुंचनेका प्रयत्न किया जाय तो उसमें असंतोषजनक पारिवारिक जीवन ही प्रधान रूपमें देख पड़ेगा।

सुरक्षाके साथ-साथ बच्चेको प्यार भी प्राप्त होना चाहिए। सुरक्षा चाहे जितनी हो, पर अगर बच्चेकी भावना यह हो कि उसे प्यार नहीं प्राप्त है, परिवारमें उसे चाहनेवाला या अपना समझनेवाला कोई नहीं है तो उसे भावनात्मक पोषण उचित रूपमें प्राप्त नहीं होगा जिसका उसके मानसिक स्वास्थ्यपर बहुत बुरा असर होगा। किसीका अपना समझे जानेकी आवश्यकता ही शायद वह कारण है जिससे माता न रहनेकी अपेक्षा बुरी समझी जानेवाली माता भी बच्चेके मानसिक स्वस्थ्यके लिए लाभदायक होती है। बुरी माता बच्चेको कभी चांटे लगा और उसके प्रति अन्याय कर सकती है, यहांतक कि उसकी शारीरिक आवश्यकताओंकी उपेक्षा भी कर सकती है, पर साथ ही वह उसका आलिंगन और

चुंबन भी करती रहेगी और बच्चा यह समझेगा कि वह उसका अपना है और संसारमें उसका भी कोई स्थान है भले ही वह स्थान उसके लिए उतना आनंददायक न हो।

तीसरी आवश्यकता बाढ़का उपयुक्त अवसर है जिसे प्रायः बच्चेको प्यार करनेवाले खुशहाल माता-पिता भी नहीं प्रस्तुत कर पाते। कभी-कभी उनका वात्सल्य प्रेम ही इस सीमातक पहुंच जाता है कि उसका प्रभाव बच्चेको पंगु बना देनेवाला हो जाता है और उनका रक्षणात्मक और निर्देशात्मक प्रयत्न बच्चेकी शक्तिका विकास नहीं होने देता। वे बहुत कड़ाई रखते या बात-बातमें 'हां'-'ना' कहकर आदेश देते रहते हैं जिससे बच्चा अपनेसे कुछ भी नहीं कर पाता। पहले तो यह प्रवृत्ति माता-पितामें बहुत देखनेमें आती थी, पर अब इस प्रवृत्तिकी प्रतिक्रिया यह देखनेमें आती है कि बहुत-से लोग किसी प्रकारका निर्देश नहीं देते और न बच्चेके आचार-व्यवहारपर किसी तरहका नियंत्रण रखते हैं।

अनुशासन

अनुसासनका साधारण-सा ढांचा और बंधा हुआ कार्यक्रम बच्चेके मानसिक स्वास्थ्यके लिए बहुत लाभदायक सिद्ध होता है। इस ढांचेके अंदर उसे आजमाइशके लिए काफी गुंजाइश रहनी चाहिए। अगर तीन वर्षका कोई बच्चा अपनी मां या पिताके साथ किसी दोस्तके घर जानेपर गुलदस्तेके फूल नोच ले, छोटी मेजपर रखी हुई कोई चीज सहनपर लुढ़का दे या दावातमें उंगली डाल दे तो समझना चाहिए कि वह मानसिक अस्वस्थता से ग्रस्त है। उसमें अरक्षित होने या द्वेषकी भावना हो सकती है या संभव है, वह दुर्भाग्यवश उस सिद्धांतका शिकार हो जो यह मानता है कि बच्चेको 'ना' कहकर उसके मनका दमन नहीं करना चाहिए।

व्यावहारिक नियम

बच्चेका पारिवारिक जीवन सुखमय बनानेके लिए उसे सामाजिक

व्यवहारसंबंधी कुछ नियमों तथा माता-पिता, भाइयों और बहनोंके कुछ अधिकारोंका सम्मान करनेकी शिक्षा देना आवश्यक है। बच्चा एक-डेढ़ वर्षका होते-होते 'हां' और 'ना'का अभिप्राय प्रायः समझने लगता है। अगर माता-पिता इन शब्दोंका उचित प्रयोग करें और बात-बातमें 'ना' न कहा करें तो बच्चेको भले-बुरेका ज्ञान जल्द हो जायगा और यह उसके मानसिक स्वास्थ्यमें बहुत सहायक होगा। अच्छा व्यवहार करना सीखनेके लिए ये शब्द पथप्रदर्शकका काम करते हैं और बच्चेमें अच्छी आदत डालनेमें सहायक होते हैं। व्यवहारके इस ढंगका अभ्यास हो जानेपर बच्चेमें स्वाभिमान और आत्मसम्मानका भाव दृढ़ हो जायगा और उसे मां-बापकी प्रशंसा प्राप्त होगी जो उसके सुख और आनंदके लिए बहुत आवश्यक है।

जिस बच्चेको आरंभसे ही कर्तव्याकर्तव्य—अच्छे-बुरे व्यवहारकी शिक्षा मिलती है वह स्वयं तो अधिकप्रसन्न रहता ही है, अपने परिवारमें भी आनंद फैलाता है। जिस बच्चेके पालनमें इस तरहका कोई नियंत्रण नहीं होता उसमें औचित्यके ज्ञानका अभाव होता है। वह स्वयं तो दुःखी रहता ही है, जिनके साथ रहता है उनके लिए भी सरदर्द बन जाता है और प्रायः अपनी ओर ध्यान आकृष्ट करनेके लिए मूर्खतापूर्ण कार्य कर बैठता है जिससे दूसरोंका प्यार और अनुमोदन प्राप्त करनेका संतोष उसे नहीं मिल पाता। यह सत्य है कि कुछ औचित्यके ज्ञानसे हीन बच्चोंको शरारत करने—खिड़कीका शीशा तोड़ देने, दूसरोंकी किताबें फाड़ डालने, मेजपरकी चीजें लुढ़काकर तोड़ देने आदि—की आजादी दे दी जाय तो वे ये सब तथा और भी बहुतसे अनिष्ट कर बैठते हैं, फिर भी आगे चलकर अपने ढंगमें सुधारकर अपना जीवन सुखमय बना लेते हैं, पर इसके आधारपर यह दलील पेश करना कि किसी बच्चेको ऐसा कार्य करनेसे रोकना नहीं चाहिए, ठीक वैसा ही होगा जैसा एक लड़केको कब्ज होनेपर क्लासके सारे लड़कोंको जुलाब देना।

अच्छे स्वास्थ्यकी पहचान

मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होनेपर भी किसी बच्चेके संबंधमें यह आशा नहीं करनी चाहिए कि वह हमेशा नेक ही रहेगा, पर उसे ऐसा भी नहीं होना चाहिए कि लोगोंके लिए कष्टका कारण हो जाय। मोटे तौरपर यही समझना चाहिए कि जिस बच्चेका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होगा वह विश्वसनीय होगा, सहयोग करेगा, मित्रतापूर्ण व्यवहार करेगा, प्रसन्न रहेगा, आज्ञाकारी होगा और प्रायः अपनी अवस्थाके अनुसार समझदारीके साथ व्यवहार करेगा। वह जैसे-जैसे बढ़ता जायगा बड़ोंकी सहायता लिये बिना ही प्रसन्नतापूर्वक अपना कार्यभार ग्रहण करता जायगा और बिना किसी तरहकी कमजोरी या खिन्नता प्रकट किये नैराश्य तथा विफलताका सामना करने लगेगा।

प्रेमका पाठ

बच्चोंमें ईर्ष्याका जन्म प्रेम, भय और क्रोध—तीन स्वाभाविक वृत्तियोंद्वारा होता है। उनमें ये जन्मजात होती हैं। अनेक विद्वानोंका कहना है कि जवतक बच्चा नौ महीनेका नहीं हो जाता उसमें ईर्ष्याकी भावना नहीं आती। इस उम्रमें अपनी माताके प्रति उसका प्यार पूर्णतया विकसित हो जाता है वह अपनी प्रत्येक आवश्यकताके लिए अपनी मातापर ही सर्वथा निर्भर रहता है। इस समयतक उसमें अधिकार-भावनाका भी जन्म हो जाता है। जव उसे कोई चीज मिलती है और उसे वह पसंद आती है तो वह उसे छोड़ना नहीं चाहता, उसे पकड़े रहना ही उसे प्रिय लगता है। इसके पहले उसके हाथकी चीजें कोई भी ले सकता था, उसे कोई एतराज न होता, पर नौ महीनेका होनेके बाद बच्चा अपनी मांके समझावन-बुझावनके बाद बड़ी मुश्किलसे अपने हाथकी चीज छोड़ता है। आगे चलकर वह अपनी मांको पूरी-पूरी अपनी बनाना चाहता है; क्योंकि उसे उसकी मां दुनियाकी प्रत्येक वस्तुसे अधिक प्यारी होती है। अगर बच्चेका पिता उसकी मांको प्यार करता है, उसे साथ टहलानेके लिए ले जाता है तो बच्चेका अपनी मांको खोनेका भय जाग्रत हो उठता है और अपना विरोध प्रकट करनेके लिए वह चिल्ला उठ सकता है। बच्चेके इस भावका तमाशा देखनेके लिए यदि पिता अपनी पत्नीपर अपने आधिपत्य तथा प्रेमका और अधिक प्रदर्शन करता है तो बच्चा भयके अलावा क्रोधसे भर जाता है। उसकी सर्वाधिक प्रिय वस्तु—उसकी माताका अपहरण करता हुआ उसका पिता उसे शत्रुके समान प्रतीत होता है। बच्चा मारे क्रोधके हाथ-पांव पटकने लगता है और यदि उसका पिता उसके निकट आ जाय तो वह उसे मारने और काटनेकी कोशिश करता है। लोगोंको बच्चेकी यह

बेबसी देखनेमें मजा आता है, वे यह नहीं जानते कि बच्चेकी जन्मजात वृत्तियां—प्रेम, क्रोध और भय—पूरी तरह जगा दी जानेपर बच्चेके मस्तिष्कपर ऐसी रेखाएं छोड़ जा सकती हैं जिनका असर जन्मभर रह सकता है। वे यह नहीं समझते कि अनजाने वे अपने बच्चोंको ऐसी शिक्षा दे रहे हैं जिससे वे बढ़नेपर समाजके कामके न हो सकेंगे, उनका जीवन भय और क्रोधसे भरा होगा और वे भाव आसानीसे घृणामें परिवर्तित होकर नीचता और बदला लेनेकी इच्छाको जन्म देते हैं।

ईर्ष्याका आरंभ

जब नया बच्चा पैदा होता है तो उसके प्रति उसके बड़े भाईमें अक्सर ईर्ष्याका भाव पैदा हो जाता है। दो वर्षका बच्चा जब देखता है कि उसकी मां एक नये बच्चेको प्यार कर रही है और दूध पिला रही है तो उसके मनमें भय और क्रोधकी उत्पत्ति होती है जो धीरे-धीरे नवजात शिशुके प्रति ईर्ष्या और घृणामें परिवर्तित हो सकती है।

अक्सर ये बड़े बच्चे अपने छोटे भाइयोंको सताते देखे गये हैं। वे क्रोधमें आकर उनपर हमला कर बैठते हैं, उसके ऊपर बैठ जाते हैं, मुक्केसे मारते हैं और कभी-कभी लोहे-लक्कड़से सांघातिक चोट भी पहुँचा देते हैं। एक बच्चेने हमारे देखते-देखते दूध पीनेकी बोतलसे मारकर अपने छोटे भाईका सिर फोड़ दिया था। काममें फंसी हुई मां अनजाने सदाके लिए अपने दो वर्षके बच्चेके मनमें लड़ाई और घृणाके भाव भर देती है। यह बच्चा ज्यों-ज्यों बड़ा होता जाता है अपनेसे सभी छोटे बच्चोंसे घृणा करने लगता है और मौका पानेपर उन्हें सतानेसे नहीं चूकता। वह आपेमें नहीं रहता, उसके सभी कार्य ईर्ष्याद्वारा संचालित होते हैं।

पारस्परिक सहायता

बच्चेको इस स्थितिसे निकालनेका, उसे ईर्ष्यालु होनेसे बचानेका उपाय क्या है?

जीवनके लिए एक दूसरेकी सहायता करनेका भाव समाजका प्राण है। इसीके कारण हमारा परस्पर वर्ताव सभ्यतापूर्ण होता है। सहज सहानुभूति सहायताकी जननी है। एक बच्चेको रोते सुनकर दूसरा बच्चा सहानुभूतिके कारण ही रो उठता है। इस वैज्ञानिक तथ्यका अनुसरण कर माताएं अपने बच्चोंको जंगलीकी भांति व्यवहार करनेसे बचा सकती हैं। मुट्ठी और आंखें बंद, रंग लाल, पिंडकी तरह पड़े हुए नवजात शिशुके दर्शन दो वर्ष पहले इस दुनियामें आये उसके बड़े भाई साहबको करा देने चाहिए। बड़े भाई साहब उसका रोना भी सुनें और जानें कि उनका छोटा भाई भूखा है। तब वे दूध पीनेमें उसकी सहायता करेंगे और उसकी देखभाल भी रखेंगे। बड़े बच्चेको यह अनुभूति करा दी जाय कि छोटा बच्चा उसकी चीज है—उसका भाई है। इस रीतिसे वह अपने भाईको प्यार करना सीखेगा और प्यार करने लगनेपर वह उसे अपनी सर्वोत्तम निधियोंमें भी हिस्सा देगा।

कई भयभीत माताएं अक्सर पूछती हैं कि यदि बड़े बच्चेको छोटे बच्चेको छूने दिया जाय तो ऐसा तो न होगा कि वह उसे मार दें या दबा दे? उन्हें हमारी सिखावन है कि यदि वे अपने द्विवर्षीय बालकको पारस्परिक सहायताकी शिक्षा न देंगी तो निश्चय ही उनका लाड़ला अपने छोटे भाईको नुकसान पहुंचायेगा; यही नहीं, वह स्वयं अपनी हानि भी करेगा। उसके निर्मल चरित्रमें ईर्ष्याके काले धब्बे पड़ जायेंगे।

एक मनोविज्ञानकी पंडिता माताने एक बार अपने कुछ अनुभव एक पत्रिकामें लिखे थे जिनमेंसे कुछ अपने पाठकोंको भेंट करनेका लोभ हम संवरण नहीं कर पा रहे हैं।

'मैं अपने बच्चेको यह सिखानेका हमेशा ध्यान रखती थी कि जब मैं किसी दूसरे बच्चेको या उसके किसी खिलौनेको प्यार करूं तो वह खुश हो। इसके लिए मैं दूसरोंको प्यार करते वक्त अपने बच्चेकी ओर मित्रतापूर्ण आंखोंसे देखती और हँसती रहती थी। इसी तरह मैंने उसे

गुड़िया और काठके कुत्तेको प्यार करना सिखाया। ये चीजें जब पहले-पहल उसे दी गयी तो वह उन्हें लेता ही न था और उसकी ओर तिरछी नजरसे देखता था। मैं अपने बच्चेको देख-देखकर इन खिलौनोंसे खेलती और प्यारसे हँसती रही और उसे इन्हें प्यार करनेको कहती रही। थोड़ी ही देरमें वह मेरे साथ खेलनेमें शरीक हो गया और खिलौनोंको प्यार करने लगा।

'अपने मां-बापको आपसमें प्यार करते देखकर बच्चोंको अक्सर बुरा लगता है, पर हमें ऐसा करते देखकर मेरा बच्चा खूब खुश होता था। वह हँसता था और खुशीके मारे चिल्लाने लगता था। कभी-कभी अपनी प्रसन्नताके प्रदर्शनके लिए वह हम लोगोंके चारों ओर लिपट जाता था और हम लोगोंकी ओर मुंह ऊंचा करके हंसते हुए देखता था।'

सफल माता बननेके लिए यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक गृहिणी मनोविज्ञानकी पंडिता ही हो; पर यह आवश्यक है कि वह अपने बच्चेके दिमागमें उलझे विचारोंकी चलती आंधीका प्रेमपूर्वक अध्ययन करे ताकि बच्चेको वह दुनियाका सही-सही ज्ञान दे सके, अन्यथा वह आगे चलकर जीवनमें सुखी नहीं होगा और न उसका चरित्र ही उच्च होगा।

मानसिक शिक्षा

जानकारोंका कहना है कि सात वर्षकी अवस्थातक मनपर जो छाप पड़ी होती है वही सारे जीवनको प्रभावित करती है और चौदह वर्षकी अवस्थाके बाद मनोवृत्तिमें शायद ही कोई परिवर्तन होता है। सबल मस्तिष्कवाले ऐसे भी कुछ लोग हैं जिन्होंने युवावस्थामें अपनी मनोवृत्तिमें परिवर्तन किया है, पर उनकी संख्या नगण्य है और उनपर भी शैशव तथा कौमारका कुछ-न-कुछ प्रभाव है ही। अच्छी-अच्छी आदतें भी बुरी आदतोंकी ही तरह आसानीसे डाली जा सकती हैं। माता-पिता चाहें तो अपनी संतानको स्वस्थ शरीर और स्वस्थ मन प्रदान कर सकते हैं और इस कर्तव्यका पालन आनंददायक भी होता है, पर स्वयं उनका जीवन अव्यवस्थित होनेके कारण अधिकांश बच्चे इस उत्तराधिकारसे वंचित रह जाते है।

मनोवृत्तिकी प्रधानता

जीवनकी सफलता मनोवृत्तिपर ही निर्भर है। मन ही शरीरको योग्य बनाता है। जन-साधारणकी दृष्टिमें किसी व्यक्तिकी सफलता कितनी ही बड़ी क्यों न जान पड़े, पर अगर उसमें सभी वस्तुओंके साथ सामंजस्य स्थापित करनेकी शक्ति नहीं है, दृष्टिकोण और समझ ठीक नहीं है, तो उसकी सफलता बिलकुल निस्सार है। लोग साधारणतः संपत्तिको ही सफलता माना करते हैं, पर हमने तो निर्धनोंकी अपेक्षा श्रीमानोंको ही अधिक दुःखी देखा है। शरीरकी आवश्यकता पूर्ण हो जानेपर उससे संबद्ध कष्टका अंत हो जाता है, पर मानसिक अभावकी पूर्ति बोधसे ही हो सकती है जो आरंभिक अवस्थामें ही प्राप्त होना चाहिए।

हमारी सारी समस्याएं—भ्रष्ट राजनीति, बेईमानी, व्यापारमें लोभ, युद्ध, अराजकता, मद्यादिका व्यसन, अयोग्यता, अपराधकी मनोवृत्ति

आदि—शैशवसे ही संबद्ध हैं। स्वस्थ शरीर और सबल मस्तिष्कवाला प्रत्येक व्यक्ति समाजका उपयोगी अंग होता है। साधारण श्रेणीके आदमीसे इससे अधिककी आशा नहीं की जा सकती। सब लोग प्रख्यात नहीं हो सकते और यह आवश्यक है भी नहीं।

तरुण और प्रौढ़ अवस्थाकी मानसिक क्रियाएं और आदत शैशवमें पड़ी हुई छाप और आदतोंपर ही निर्भर हैं, इसलिए बच्चोंका लालन-पालन अच्छे वातावरणमें होना चाहिए। अगर शैशवमें अच्छी शिक्षा मिली है तो तरुण होनेपर ऐसी कोई बुरी आदत नहीं पड़ेगी जिसपर विजय पाना कठिन हो। आदतोंका बंधन आसानीसे नहीं टूटता। तंबाकू और शराबकी लतपर विजय पाना कठिन है, पर मानसिक दुष्प्रवृत्तियों-पर विजय पाना और भी कठिन है।

पालनेमें ही नींव

यथासंभव बच्चेको एकांतमें रहने दीजिए। कुछ माताओंमें प्यार और अज्ञानकी मात्रा इस कदर ज्यादा होती है कि वे थोड़ी-थोड़ी देरपर बच्चेको गले लगाती, प्यार करती और मित्रों-संबंधियोंको बार-बार दिखलाती रहती हैं। इससे वह चिड़चिड़ा हो जाता है, बराबर ध्यान देते रहनेकी मांग करता है और ध्यान न देनेपर क्रुद्ध होकर रोने लगता है। इस प्रकार बुरे स्वभावकी नींव पालनेमें ही पड़ जाती है। रोनेसे ही मतलब पूरा होते रहनेसे आगे चलकर उसमें मचलने और रूठनेकी आदत पड़ जाती है।

काम निकालनेका तरीका बच्चे बहुत जल्द सीख लेते हैं। अगर वे अप्रिय बनकर यह कर सकते हैं तो यह मानी हुई बात है कि वे अपना स्वभाव बिगाड़ लेंगे। अगर बच्चोंको यह अनुभव करा दिया जाय कि अप्रिय बननेसे कोई लाभ नहीं होता, तो उनकी इस प्रवृत्तिका शीघ्र ही अंत हो जायगा। माता आरंभमें तो अधिक ध्यान दे सकती है, पर दस-

बारह वर्षकी अवस्था हो जानेपर, जब उसे बिगड़े हुए बच्चेकी देखभाल करनी पड़ती है, स्थिति बिलकुल दूसरी हो जाती है।

प्यारके नामपर अपराध

बहुत-से मां-बाप यह समझते हैं कि हम बच्चोंमें लगे रहकर उनके प्रति प्यार प्रकट कर रहे हैं, पर दरअसल वे उनको इस प्रकार शारीरिक और मानसिक ह्रासके मार्गपर ले जाते हैं; सच्चे प्यारमें सहायता, दया और धीरता होती है, पर नकली प्यारमें होहल्ला, दिखावा और अधीरता होती है। उनके लिए जो आवश्यक हो वही कीजिए, अनावश्यक कार्य करना बुरा होता है। सहायक होना तो उन्हें बहुत जल्द सिखाया जा सकता है। सफाईसे रहने, अपनी चीजं करीनेसे रखने, कपड़े पहनने आदि की शिक्षा नौकरोंके रहते हुए भी आरंभिक जीवनमें ही दी जानी चाहिए।

धनी परिवारोंके बच्चे

धनी परिवारोंके बहुतसे बच्चे वस्तुतः भाग्यहीन होते हैं। ग़रीब तो अपनी आर्थिक समस्याओंमें उलझे रहनेपर भी बच्चोंपर कुछ ध्यान दे लेते हैं, पर अमीर लोग धन-संग्रह और सामाजिक स्तर ऊंचा करनेके प्रयत्नमें इस कदर व्यस्त रहते हैं कि बच्चोंके लिए उनको समय ही नहीं मिलता और वे नौकरोंके जिम्मे कर दिये जाते हैं। क्रीतसेवा चाहे कितनी ही अच्छी क्यों न हो, वह वात्सल्य-प्रेमकी समता नहीं कर सकती। सेवा भी अधिक नही होनी चाहिए, इससे बच्चे स्वार्थी हो जाते हैं, दूसरोंका स्वत्व हरण कर अपनी कोई चीज देनेका नाम भी न लगे। यह सर्वथा अनैतिक है। जीवनमें क्षति और पूर्तिका ही सिद्धांत चलता है, आदानके साथ प्रदान भी लगा हुआ है। उन्हें दूसरोंका ख्याल रखनेकी शिक्षा मिलनी चाहिए, हमेशा नौकरोंपर हुकूमत ही नहीं चलाते रहना चाहिए। नौकरोंको तो यह बुरा मालूम होगा ही, उनके लिए भी हानिकर होगा।

परिवार चाहे जितना भी समृद्ध हो, बच्चोंको जीविका प्राप्त करने-की शिक्षा मिलनी ही चाहिए। उनके मनमें सेवाका भाव भी दृढ़ कर देना चाहिए। आलस्यमय जीवनको कभी सफलता नहीं मिलती—कामसे भागनेवालों और समय नष्ट करनेवालोंका जीवन कभी सुखमय नहीं होता। अच्छे कार्योंसे ही जीवनमें सर्वाधिक संतोष प्राप्त होता है। भावावेशयुक्त प्रेम और मौजके दिन ज्यादा नहीं चलते। प्रेम और उत्साहसे काम करना कल्याणकर होता है, पर कामके अभावमें प्रेम और उत्साह पतनकी ओर ले जाते हैं।

आज्ञापालनकी शिक्षा

बच्चोंके विकासका काल बहुत लंबा होता है इसलिए मां-बाप तथा परिवारके अन्य लोगोंके साथ उनका मेल बैठना बहुत जरूरी है। इसके अभावमें मां-बाप, विशेषकर माता बहुत जल्द ऊब जाती है जिसकी बच्चोंपर बहुत गलत छाप पड़ती है। संघर्ष बचाने तथा अच्छा फल प्राप्त करनेके लिए बच्चोंको आरंभसे ही आज्ञापालनकी शिक्षा दी जानी चाहिए। आज्ञापालनसे ही शासन करनेकी योग्यता प्राप्त होती है। जिन परिवारोंमें मां-बापके शब्द कानून जैसे माने जाते हैं उनमें संघर्ष बहुत कम होता है। अगर बच्चे यह जान जांय कि मां-बाप जो कहते हैं वह होकर ही रहेगा, हीला-हवाला करना बेकार है, तो कोई झमेला नहीं उठ खड़ा होगा। आज्ञाका उल्लंघन करनेवाले बच्चोंकी हालत बिलकुल भिन्न होती है। मां-बापको बार-बार आदेश देना पड़ता है और प्रायः आदेशका पालन नहीं होता।

बच्चोंको कुछ समझ हो जाय तभीसे आज्ञापालन और तत्परताकी शिक्षा दी जानी चाहिए। पीछे यह कार्य कठिन हो जाता है और अवस्थाके साथ कठिनाई भी बढ़ती जाती है। बच्चे इतने अबोध होते हैं और उनमें इतनी आत्मप्रवंचना होती है कि वे यह बात समझ ही नहीं

पाते कि अनुभव और विवेकके अभावमें हम अपना मार्ग निर्धारित नहीं कर पायेंगे। अपनी हानि और दूसरोंको परेशानी होनेपर भी वे इस अधिकारका त्याग करनेको तैयार नहीं होते। कड़ा पड़नेका अवसर आनेपर कड़ाई वरतनी ही चाहिए; पर कड़ाईके साथ भी सहयोगकी ही भावना होनी चाहिए।

बच्चोंको सुधारनेका माता-पिताका ढंग भिन्न-भिन्न हुआ करता है, पर यह बात अच्छी तरह समझमें आ जानी चाहिए कि आज्ञापालन आरंभिक योजनाका एक मुख्य अंग है। उदाहरणार्थ, अगर बच्चा खानेके लिए बुलाया जाता है तो उसे फौरन पहुंच जाना चाहिए; अगर उसमें देर करनेकी प्रवृत्ति देख पड़े तो उसे साफ-साफ कह दिया जाय कि बुलानेके साथ ही न आनेपर इस वक्त खाना न मिलकर दूसरे ही वक्त मिलेगा और यही किया भी जाय। यह निर्दयता नहीं है। एक वक्त खाना न खानेसे कोई क्षति भी नहीं होती। इस उपायका अच्छा असर होता है। इसी तरह उनके करनेके जो भी छोटे-मोटे काम हों उन्हें उनसे तत्काल कराना चाहिए। हां, मां-बापको भी समझदारीसे काम लेना चाहिए, अनावश्यक काम करनेके लिए बार-बार आज्ञा न देते रहें।

प्रेमका बंधन

जिस परिवारमें मां-बाप और बच्चे एक-दूसरेको जानते-समझते और प्यार करते हैं वह बहुत सुखी होता है। जिन्हें अपने बच्चोंसे घनिष्ठता प्राप्त करनेका समय नहीं मिलता वे जीवनका एक ऐसा अंग खो देते हैं जो न तो धनसे प्राप्त हो सकता है और न समाजमें प्राप्त ऊंचे स्थानसे। कुछ लोग यह घनिष्ठता प्राप्त करनेमें बहुत विलंब कर देते हैं। जब बच्चे बहुत छोटे रहते हैं तभी वे बहुत प्रिय होते हैं। उस समय जो प्रेमबंधन प्रस्तुत होता है उसे समय या संकट छिन्न-भिन्न नहीं कर सकता। बड़े हो जानेपर इस प्रकारका संबंध स्थापित करना असंभव हो जाता है। इस अवस्थामें वे अपने माता-पिताको भी उसी आलोचक

दृष्टिसे देखते है जिससे वे दूसरोंको देखते हैं। उनसे मैत्रीभाव हो तो भी प्रेमका अभाव ही होता है। दाम्पत्य प्रेम अस्थायी होता है, पर माता-पिताके साथ संतानका जो प्रेम होता है वह बराबर बना रहता है।

शारीरिक दंड

शारीरिक दंडका प्रयोग किया जाय या नहीं, इसका निश्चय मां-बापको ही करना चाहिए। बहुतेरे लोग बच्चोंके कामोंमें दोष ही देखा करते हैं और 'यह मत करो', 'वह मत करो'की रट लगाया करते हैं। बेचारे बच्चे समझ ही नहीं पाते कि क्या किया जाय, क्या न किया जाय। बच्चोंमें आगेकी बात सोचनेकी शक्ति नहीं होती, दो बातें भी एक साथ नहीं सोच सकते। फल यह होता है कि वे भूल जाते हैं कि क्या नहीं करना है, और कर देनेपर मां-बाप उनपर बरस पड़ते हैं। मां-बापको बहुत-सी बातोंकी ओरसे आंख-कान मूंद भी लेना चाहिए। जो माताएं बराबर मना ही करती रहती हैं उनके स्वरमें जल्द ही कर्कशता और चिड़चिड़ापन आ जाता है जो सबको बुरा मालूम होता है। आवश्यकता न होनेपर बच्चोंके संबंधमें हस्तक्षेप न करनेका नियम ही बना लेना चाहिए और एक समय एक ही काम करनेको कहना चाहिए, बहुतसे कामोंकी आज्ञा देनेपर वे भूल जायंगे।

अगर मां-बाप शारीरिक दंड देनेका निर्णय करें तो उन्हें उसके उचित होनेका निश्चय होना चाहिए। अनुचित दंड हमेशा हानिकारक होता है। बहुतसे लोग तो इतने क्रोधाभिभूत हो जाते हैं कि सिर्फ गुस्सा उतारनेके लिए बच्चोंको पीटते हैं। यह बहुत बुरा होता है। अगर ठंडे दिमागसे विचार करनेपर दंड देना आवश्यक जान पड़े तो शांतिपूर्वक ही दंड दिया जाय। अरक्षित बच्चेपर क्रुद्ध पिताका पाशविक आक्रमण कायरपनका सूचक है। पीछे, उत्तेजना शांत हो जानेपर, अपनी गलतीपर अफसोस करना पड़ता है, पर उनमें इतना नैतिक बल नहीं होता या इतना मिथ्या-

भिमान होता है कि इस अन्यायके लिए क्षमा भी नहीं मांग सकते। ऐसे लोग बच्चोंको कष्ट देकर प्रेमका अंत कर देते हैं। बच्चोंमें उचित-अनुचितकी बड़ी तेज परख होती है।

डराने-धमकानेसे हानि

"अमुक बात बुरी है"—इस तरहका वाक्य बच्चोंसे कभी न कहा जाय, केवल अच्छी बातोंपर जोर दिया जाय। बार-बार बुरी चीजोंका नाम लेते रहनेसे वे ही उनके दिमागमें बनी रहेंगी। बच्चोंको डराना भी ठीक नहीं है। उनके रोने या कोई बात न माननेपर लोग हौवेकी बात कहते, अंधेरेमें छोड़ आने या किसी बुरे आदमी या जानवरसे पकड़वानेकी धमकी देते हैं। भय सबके लिए बुरा होता है। शरीर और मन दोनोंको इससे क्षति पहुंचती है। बढ़ते हुए बच्चोंके लिए तो यह खास तौरसे बुरा होता है। बचपनमें मनमें घुसा हुआ डर बहुतोंके जीवनभर बना रहता है। बचपनमें डराये गये बहुतसे जवान होनेपर भी अंधेरेमें बाहर निकलनेसे डरते हैं।

भोजनसंबंधी नियमोंका ज्ञान

बच्चोंको भोजनसंबंधी नियमोंका भी कुछ ज्ञान करा देना चाहिए। भीतर बेचैनी मालूम होनेपर भोजन करना हानिकाकरक होता है। आवश्यकतासे अधिक खानेसे शरीर और मन दोनोंका अपकर्ष होता है—यह समझ गणितका कोई प्रश्न हल करनेकी योग्यतासे अधिक मूल्यवान् है; पर ऐसी बातोंकी शिक्षा इस ढंगसे दी जाय कि उन्हें यह भान भी न हो कि शिक्षा दी जा रही है।

व्यावहारिक शिक्षा

वच्चोंको शिक्षा देनेके दो उद्देश्य होते हैं—एक तो यह कि वे स्वस्थ और सदाचारी वने रहकर अपनेको सुखी और परिस्थितियोंको अनुकूल वनाने योग्य हो जांयें और दूसरा यह कि वे अपनेको पहले अपने परिवार-के छोटेसे समाजके और वादमें स्कूल तथा संसारके वड़े समाजके उपयुक्त वना सकें। कुछ काल पूर्व मां-वाप लड़केसे कड़ाईके साथ अनुशासन आदि-का पालन कराकर उसे परिवारका एक योग्य सदस्य वनानेका प्रयत्न करते थे और इस प्रयत्नमें सफलता प्राप्त करनेका अर्थ वच्चेके व्यक्तिगत सुखका नाश ही होता था, पर आजकलके आजाद वच्चे न तो व्यक्तिगत रूपसे सुखी हो पाते हैं और न परिवार और समाजके योग्य सदस्य ही। ऐसा वच्चा शायद ही कहीं मिलेगा जो अनुशासनहीन वातावरणमें पलकर उन वच्चोंके समान सुखी और परिवारके कल्याणका साधन हो, जो शैशवसे ही सद्व्यवहार, अच्छे रहन-सहन और दूसरोंके प्रति सद्भावना-वाले वातावरणमें पले हैं। सच पूछिए तो माता-पिताके प्यारमें ही वह वातावरण प्रस्तुत हो जाना चाहिए जिसमें वच्चा कुछ साधारण कर्तव्यों और वुद्धिमत्तापूर्वक वनाये हुए कार्यक्रमकी परिधिमें अपनी ही गतिसे सुखपूर्वक आगे वढ़ता जाय।

माताका कर्तव्य

शिक्षा ऐसी ही होनी चाहिए जिसमें वच्चा वड़ा होनेपर मां-वापपर अवलंवित न रहकर अपने पैरोंपर मजेमें खड़ा होने योग्य हो जाय। दरअसल यह कर्तव्य माताका ही है, पर इस कर्तव्यके पालनमें पिताकी अपेक्षा उसे अधिक कठिनता होगी, फिर भी जबतक वह इस कार्यको संपन्न नहीं करती उसका कर्तव्य पूरा नहीं होता। जो माताएं अशिक्षा

और अज्ञानके अंधकारमें पड़ी हुई हैं उन्हें तो इस कर्तव्यका ज्ञान भी होना मुश्किल है। कुछ माताएं आवश्यकतासे अधिक लाड़-प्यारकर बच्चेको इस कदर परावलंबी और आत्मबलसे शून्य बना देती हैं कि वह स्वतंत्र रूपसे आगे नहीं बढ़ सकता जिसका दुःखद परिणाम यह होता है कि वह भविष्यमें कभी अपनेको समाजके योग्य बना ही नहीं पाता। उसका दांपत्य जीवन भी अच्छा नहीं होता; क्योंकि उसमें अज्ञात रूपसे पत्नीके बजाय माताकी आवश्यकता और चाह बनी रहेगी। बच्चोंके बालिग हो जाने और स्वयं कर्ता-धर्ता बन जानेपर उनके और माता-पिताके बीच नये प्रकारका प्रेम और मैत्रीका भाव बढ़ता है और अगर उनका शैशव अच्छे ढंगसे व्यतीत हुआ है तो यह मैत्री और प्रेम दिनों-दिन गाढ़ा ही होता जाता है।

कहानीद्वारा शिक्षा

छोटे बच्चोंको कथा-कहानी बहुत प्रिय होती हैं। ऐसी बहुत-सी कहानियां गढ़कर उन्हें सुनायी जा सकती हैं जिनमें नायक बच्चे हों और कहानी सुननेवाले बच्चे अपनेको उन नायकोंके स्थानपर प्रतिष्ठित कर सकें। चरित्र-निर्माणकी शिक्षा आदर्शसे ही मिलती है, इसलिए आदर्शा-त्मक कहानियां भी इस उद्देश्यकी पूर्तिमें बड़ी सहायक होती हैं। सीधे नसीहत देनेका खयाल भी नहीं होना चाहिए; क्योंकि इसका परिणाम उलटा ही होता है। कहनेका अभिप्राय यह कि बच्चेको जैसा बनाना अभीष्ट हो उसका चित्र उसके मानसमें विद्यमान होना चाहिए जिसमें उसका अंतर्मन उसे वैसा बननेके लिए प्रेरणा प्रदान करता रहे। कल्पनाकी उड़ान इस कार्यमें बाधक नहीं होगी।

बच्चे क्यों खीझते हैं ?

अगर बच्चा चीखता-चिल्लाता और क्रोध करता या खीझता है तो यह माता-पिताका ही दोष समझा जाना चाहिए; क्योंकि वे प्रायः ऐसे

कार्य कर बैठते हैं कि बच्चेकी सहन-शक्तिके परे हो जानेपर उसका धैर्य छूट जाता है। कभी-कभी माता-पिता यह नहीं समझ पाते कि बच्चेकी आवश्यकता या कहनेपर ध्यान न देना उसके लिए कितना कष्टकर होता है। कुछ लोग तो जान-बूझकर बच्चेकी ओर ध्यान न देकर दूसरोंसे बात करते रहते हैं और बच्चेको क्षुब्ध बनाये रहते हैं। उनकी यह धारणा होती है कि बच्चेको आत्मनियंत्रण और प्रतीक्षा करनेका अभ्यास होना चाहिए। कुछ हदतक यह खयाल ठीक हो सकता है; क्योंकि बच्चेको कामोंके क्रमका ज्ञान होना चाहिए और चलते हुए वार्तालापमें बाधक नहीं होना चाहिए, पर माता-पिताको भी यह विवेक होना चाहिए कि कैसे अवसरोंपर बच्चेकी आवश्यकतापर तत्काल ध्यान देना चाहिए और कब उससे प्रतीक्षा करानी चाहिए। स्थितिका रूप चाहे जैसा भी हो, पर बच्चेको इस तरह परेशान करनेसे उसे कोई शिक्षा नहीं मिलती।

बच्चा कभी-कभी खीझ भी जाया करता है जिसे माता-पिता उसकी नटखटी समझ लेते हैं। यह स्थिति प्रायः उस समय प्रस्तुत होती है जब वह अपनी सारी शक्ति लगाकर कोई काम करता होता है और ठीक तरहसे न होते देख माता झटसे काम पूराकर देकर संतोषका अनुभव करती है। यही बात बच्चेको खिझानेवाली हो जाती है; क्योंकि काम पूरा करनेके लिए तन-मनसे लगे होनेपर उसे बीचमें ही अपने प्रयत्नमें विफल होकर कामसे विरत हो जाना पड़ता है। इस हालतमें बच्चा कभी-कभी खीझकर चिल्ला पड़ता है और माताको मार भी बैठता है। उसका यह कार्य नटखटीमें शामिल किया जा सकता है, पर इसका मूल कारण माताका ही हस्तक्षेप होता है। इस प्रकारके बहुतसे कार्य बच्चे तथा माताकी ओरसे होते रहते हैं, पर माताको यह स्मरण रखना चाहिए कि किसी तरह बच्चेको खिझाना—चाहे शब्दसे हो या कार्यसे—शिक्षा नहीं बल्कि बच्चेको तंग करना है और यह माताका बहुत बड़ा दुर्गुण समझा जायगा।

जेब-खर्च

बच्चेको शैशव—लगभग ५ वर्षकी अवस्था—से ही जेबखर्चके लिए कुछ पैसे देना अच्छा सिद्धांत है; क्योंकि इसके व्यय और बचतसे वह इस विषयमें बहुत कुछ सीख ले सकता है। बच्चेकी अवस्था तथा माता-पिताकी आर्थिक स्थितिके अनुसार इस रकममें कुछ अंतर हो सकता है, पर उसकी अवस्था बढ़नेके साथ-साथ यह रकम भी कुछ-कुछ बढ़ाते जाना चाहिए। सस्तीके जमानेमें जो रकम दी जाती थी वह इस महंगीके जमानेमें बहुत कम होगी। यह रकम नियमित रूपसे दी जानी चाहिए और आकस्मिक व्ययसे इस रकमका कोई संबंध नहीं होना चाहिए; क्योंकि समय-समयपर बच्चा कोई खास चीज खरीदनेके लिए आग्रह कर सकता है। उसे अपना पैसा अपने ढंगसे और इच्छानुसार खर्च करने देना चाहिए, पर कुछ लिख-पढ़ लेने योग्य हो जानेपर खर्चका हिसाब रखनेकी शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। इस प्रकार वह रुपये और उसे बचानेका महत्त्व आसानीसे समझ जायगा। अगर वह और कुछ खरीदना चाहे, पर नियमित रूपसे मिलनेवाली रकम खर्च करना न चाहे या पर्याप्त न हो तो उसे उपार्जन करनेके लिए कुछ छोटे-मोटे कार्य करनेके लिए भी प्रोत्साहित करते रहना चाहिए, पर यह काम परिवारकी सहायताके लिए नहीं होना चाहिए और ऐसा भी नहीं होना चाहिए जो समाजके लिए उपयोगी न हो। पारिश्रमिक भी सभी कामोंके लिए न दिया जाय; क्योंकि कुछ काम ऐसे भी होते हैं जिन्हें परिवारके सब लोगोंको मिलकर करना चाहिए। अतिरिक्त कार्यके लिए दिया जानेवाला पारिश्रमिक माकूल होना चाहिए और वह बच्चेका अपना धन होना चाहिए। बच्चेसे अधिक कामकी आशा रखकर उसकी प्रवृत्तिको कुंद भी नहीं करना चाहिए, उसका अधिक समय खेल-कूदमें ही लगना चाहिए।

बच्चोंके प्रति व्यवहार

यह कोई जरूरी नहीं है कि आपका लड़का आपके ही विचारोंका हो। प्राकृतिक नियमोंके आप चाहे जितने भी कायल और समर्थक क्यों न हों, पर अपने बच्चेसे यह आशा करना कि वह भी आपकी ही तरह आपके सिद्धांतोंको, जिन्हें कुछ लोग सनक भी कहते-समझते होंगे, प्रचार करनेका प्रयत्न करेगा, उचित नहीं माना जा सकता। यह आवश्यक भी नहीं है; क्योंकि अगर हम कुछ खास बातोंमें ढीलापन ला दें तो बच्चे और उसके समवयस्कों या मित्रोंका आपसका संबंध उसे दंड देकर खराब करनेकी मूर्खता न कर व्यवहारमें प्राकृतिक नियमोंका मजेमें पालन कर सकते हैं।

सबसे विषम अवस्था

बच्चोंकी किशोरावस्था, जो लगभग ग्यारहवें वर्षसे आरंभ होकर लगभग सोलहवें वर्षतक चलती है, उनके लिए सबसे विषम होती है। शरीरमें होनेवाले परिवर्तनों और विस्तृत होते हुए जीवन-संबंधी दृष्टि-कोणसे उत्पन्न होनेवाली कठिनाइयां घरकी परिस्थितियोंके कारण कम भी हो जा सकती हैं और बहुत बढ़ भी जा सकती हैं। अगर बच्चेमें माता-पिताके प्रति सहानुभूति न हो तो इस अवस्थाका आगमन होनेपर उनके साथ उसका संघर्ष अनुचित रूपमें बढ़ जा सकता है। अगर इस तरहका कोई चिह्न देख पड़े तो अपने सिद्धांतोंका पालन करानेका आग्रह अग्निमें घी डालनेका काम करेगा और आपसकी तनातनी इस कदर बढ़ जायगी कि वह शीघ्र ही विद्रोहका रूप धारण कर लेगी। यह कोई जरूरी नहीं कि इस विद्रोहका कारण आपका सिद्धांत उसे पसंद न आना हो, बल्कि यह होगा कि वह इस समय ऐसी ही अवस्थासे गुजरता होता है जिसमें वह अपने घरको, यहांतक कि मां-बापको भी

नापसंद करने लगता है और घरमें जो भी चीज प्रचलित व्यवहारके अनुरूप नहीं होगी वह उसमें विशेष रूपसे कुढ़न पैदा करनेवाली होगी।

पारिवारिक ऐक्यका भंग होना बहुत बुरा होता हैं। हम लोगोंमें ऐसा कोई नहीं होगा जो वात्सल्यप्रेम खोना पसंद करे, फिर भी बहुतसे माता-पिता और बच्चे इस अवस्थामें आपसका संबंध बहुत कटु बना देते हैं। यह अवस्था प्रस्तुत हो जानेपर आपसमें संतोषजनक रूपमें बरतना बहुत कठिन हो जाता है। इस तरहकी कठिनाइयोंसे बचनेका सबसे अच्छा और सरल उपाय यह है कि पूर्ववर्ती कालमें एक-दूसरेको समझने-की प्रवृत्ति उत्पन्न की जाय।

आरंभिक कालसे ही मां और बच्चेमें परस्पर विश्वास और सम्मान-का भाव होना आवश्यक है। अगर भय—डांट-डपट, भर्त्सना, शारीरिक दंड आदि—के द्वारा शैशव और कुमारावस्थामें अनुशासन कायम रखनेका प्रयत्न किया गया है तो किशोरावस्थामें, जबकि बच्चेके साथ इस तरहका वर्ताव करना संभव नहीं हो सकता, घरके नियंत्रणोंके विरुद्ध उसमें प्रतिक्रिया हो सकती है; पर अगर युक्तिसंगत आधारपर—छोटी उम्रसे ही अच्छी आदत डालकर, अच्छे उदाहरण प्रस्तुतकर, समझा-बुझाकर और अच्छे कामोंके लिए पुरस्कृतकर—अनुशासनका पालन कराया गया है तो इस कालमें विरोधकी स्थिति प्रस्तुत होनेकी संभावना नहीं रहेगी।

कशोरावस्थामें बने रहनेवाले आपसके सम्मान और सहानुभूतिकी नींव भी माता बच्चेकी अल्पावस्थामें ही उसकी बातोंपर ध्यान देकर डाल सकती है। प्रायः माताको इतनी कम फुरसत मिलती है और बच्चोंकी योजनाएं और समस्याएं पारिवारिक कार्योंके मुकाबलेमें इतनी महत्त्वहीन होती हैं कि माताएं प्रायः उनकी बातें ध्यानसे नहीं सुनतीं। अगर नौ-दसकी अवस्थामें भी बच्चेको यह विश्वास हो जाय कि माता उसकी बातोंपर पूरा ध्यान देगी और उसकी समस्याओंके प्रति सहानुभूति दिखलायेगी और कभी-कभी कठिनाईसे निकलनेका मार्ग सुझा भी देगी

तो आगे चलकर भी अपनी कठिन समस्याओंके हलके लिए उसके माताका सहारा ढूंढ़ते रहनेकी बहुत कुछ संभावना रहेगी; इसके विपरीत अगर माता-पिताने शैशवकालकी समस्याओंको समझने और सहानुभूति दिखलानेपर ध्यान नहीं दिया तो बड़ा होनेपर वह अपनी समस्याएं उनके सामने रखनेका शायद ही खयाल करे।

दूसरोंकी समस्याओंको कोई समस्या न मानकर टाल देना, कम महत्त्वकी मानना या उनके पीछे माथापच्ची करना बेकार समझना आसान होता है, पर यह अच्छा नहीं है। अगर बच्चोंकी समस्याओंके प्रति भी ऐसी ही मनोवृत्ति दिखलायी गयी तो उनमें यह विश्वास उत्पन्न नहीं होगा कि आगे चलकर आवश्यकता पड़नेपर माता-पिता उनकी समस्याएं समझने और उनके प्रति सहानुभूति दिखलानेका खयाल रखेंगे।

विरोधका कारण

अगर चौदह या इससे अधिककी अवस्थामें बच्चेमें विद्रोहकी भावना बढ़ती हो, विशेषकर उस हालतमें जब आपसमें मैत्री, सहयोग और सहानुभूतिका भाव नहीं उत्पन्न किया गया है, तो वे माता-पिता जो किसी अच्छी बातमें बहुत विश्वास करते हैं और अपने बच्चेके संबंधमें उसे ही बरतना चाहते हैं, यह देखेंगे कि वही बात विरोधका कारण बन रही है। उदाहरणके लिए प्राकृतिक आहारकी ही बात ले लीजिए। माता-पिता तो यह खयाल करते हैं कि बच्चेके शारीरिक लाभके विचारसे विशेष प्रकारका आहार रखनेका आग्रह सर्वथा न्याय्य है और बच्चेको स्कूलमें दिया जानेवाला नाश्ता न लेने देकर उसके लिए खास तरहका नाश्ता घरसे भेज सकते हैं। अगर बच्चा घरकी चीजोंसे संतुष्ट है तब तो कोई बात ही नहीं, पर अगर वह उन्हें नापसंद करे और अपने साथियोंसे भिन्न पदार्थ खाना बुरा माने तो घरसे नाश्ता भेजना बंद कर देना चाहिए। अगर बच्चा अपने मित्रों या सहपाठियोंसे मिलना

चाहता है या उनके साथ भ्रमणमें बाहर जाना चाहता है तो यह जानते हुए भी कि उसका भोजन भिन्न प्रकारका, औरों—जैसा ही होगा, उसे जानेसे नहीं रोकना चाहिए और विरोधसूचक विचारोंको मुंहपर नहीं लाना चाहिए।

हठी बच्चे

बच्चेकी दुनिया

ज्यों-ज्यों बच्चा बड़ा होता है उसकी आंखें देखने लगती हैं और नाड़ीसंस्थानका बल बढ़नेके साथ-साथ उसका संबंध बच्चेके दिमागके साथ जुड़ने लगता है। इस समय बच्चा कोई चमकीली-सी चीज—जैसे कोई खिलौना—पकड़नेकी हालतमें हो जाता है, धीरे-धीरे वह हाथको हिलाने लगता है और खिलौनेको अपने खटोलेपर पटक देता है। इस वक्त बच्चेकी खुशी बढ़ जाती है, उसकी खुशीमें देखने और कुछ करनेकी खुशी शामिल हो जाती है। यही उसकी दुनिया है और उसे इससे जो खुशी मिलती है उससे प्रतीत होता है कि उसे उसकी दुनिया बहुत मधुर लगती है। जब उसकी बोलनेकी शक्ति बढ़ती है तब अपनी इस प्रसन्नताको प्रकट करनेके लिए वह किलकारियां मारता है।

बच्चा धीरे-धीरे शोर करना सीख जाता है। मान लीजिए ऐसे वक्त किसीके सिरमें दर्द है, बच्चेका शोर करना उससे सहन नहीं होता। वह बच्चेके हाथसे झिड़ककर खिलौना छीन लेता है और उसके हाथोंको दबाकर उसे चादर उढ़ा देता है। बच्चा विवश हो जाता है और आप जानते हैं विवशता उसमें क्रोध उत्पन्न करती है जिसे व्यक्त करनेके लिए वह चिल्लाने और रोने लगता है। उसके आनंद और खुशीकी सारी दुनिया ही उजड़ गयी है और वह चादरके छोरसे बांध दिया गया है। विवशताके इस बंधनसे मुक्त होनेके लिए वह पागलकी तरह प्रयास करता है। यदि उसके जीवनमें इस प्रकार क्रुद्ध होनेके मौके बराबर आते रहते हैं तो उसमें घृणा करनेकी शक्ति उत्पन्न हो जाती है। इस प्रकार हम बच्चेको दुनियासे घृणा करना एवं उससे लड़ना सिखा देते हैं।

भयका तूफान

जब बच्चा जरा बड़ा होता है और घुटनोंके बल चलने लगता है तब वह हर चीजके निकट पहुँचनेकी कोशिश करता है। वह देखिए उसने अपने पिताजीकी सोनेकी घड़ी उठा ली कितना सुंदर खिलौना है वह! अब वह उसे धरतीपर पटकने जा रहा है। पिताजीने देखा। डांटा बच्चेको। दौड़कर उसे दो धौल लगाये और उसके हाथसे घड़ी छीन ली। बच्चेकी सुनहली चिड़िया उड़ गयी। पिताजीके डांटनेकी आवाज और मारसे हुई पीड़ा उसके मनमें क्रोध उत्पन्न कर देती है। बेचारा बच्चा जमीनपर लोट जाता है और जोर-जोरसे रोने लगता है—वह दुनियाके सबसे महान् एवं विनाशक शत्रु भयसे आक्रांत है। बच्चेको घरमें क्या नहीं छूना चाहिए, किस चीजसे उसे नहीं खेलना चाहिए, यह सिखानेका यदि माता-पिताका यही तरीका रहा तो बच्चेको भयके इन तूफानोंका बार-बार सामना करना पड़ता है और अंतमें बच्चेमें दुनियाकी चीजें ढूँढ़ने और उनसे खेलनेकी इच्छा और शक्ति ही मर जाती है। अब हर चीज छूते, हर नया काम करते उसे डर सताने लगता है। इस प्रकार कोई भी माता अपने बच्चेको हीन बना रहनेवाला लड़का बना सकती और उसमें हर चीजसे और हर आदमीसे डरनेकी आदत डाल सकती है।

कुछ करनेका हौसला

बच्चा इस सारी धरतीका राजा है, दुनियाकी सारी चीज उसकी हैं, उसके खेलनेके लिए बनी हैं। जिन चीजोंको मां बच्चेकी निगाहसे बचाना चाहती है, उन्हें उसे अक्लमंदीसे जरा ऊंचेपर या दूर रखना चाहिए, पर अगर बच्चेने कहींसे कैंची खोज ही निकाली तो उसे कोई दूसरी चीज देकर बहला लेना कठिन नहीं है। इस समय बच्चेके लिए जीवनका अर्थ ही नयी-नयी चीज करना है। उसके शरीरका अंग-अंग प्रत्येक मिनट दुनियामें जो चीज हैं उन सबके साथ कुछ कर देखनेकी कोशिश करता है।

इस प्रकार मांका बच्चेको एक चीजके बाद दूसरी चीजसे परिचित कराना, उसे हर चीजको अपनी शक्तिके अनुसार पूरी तरह समझनेका मौका देना ही बच्चेमें कुछ नया करनेका बीज बोना है एवं उसके मस्तिष्क को सही अर्थमें शक्तिशाली बनाना है।

योगधर्म

बच्चेमें न तर्क करनेकी शक्ति होती है, न नैतिक बुद्धि और न उसमें स्मरणशक्तिका विकास हुआ होता है। चीजें उसे योग-धर्मके अनुसार याद रहती हैं जिसका अर्थ है उसके अचेतन मनपर बाहरी प्रभाव पड़ता है और यदि वह प्रभाव काफी गहरा है तो वह हमेशाके लिए बच्चेके मनपर लिखा रह जाता है। उदाहरणके लिए बच्चा जब जलती लालटेनकी चिमनीसे हाथ लगाता है तो उसकी अंगुलियां जल जाती हैं; अब दर्द और लालटेनका योग हो जाता है वह लालटेनसे डरना सीख जाता है।

बच्चेका लालटेनसे डरना उसकी याददाश्तके बलपर नहीं होता; यह डर उसके चेतन नहीं, अचेतन मस्तिष्कमें होता है। डरना उसकी नैसर्गिक वृत्तिमें शामिल हो जाता है जिसपर बुद्धिका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। प्रायः सभीको लालटेनसे जलनेका अनुभव हुआ है, फलतः गरम चीजके संपर्कमें आते ही हर आदमी सिकुड़ जाता है। यह क्रिया सहानुभूतिसाध्य है। दिमाग उसके लिए कुछ करे इसके पहले ही वह पूरी हो जाती है। इससे बचपनमें चरित्रपर पड़नेवाले कार्योंके प्रभावको अच्छी तरह समझा जा सकता है। जिसके दिमागपर 'यह मत करो', 'वह मत करो'के हथौड़ेकी चोटके बचपनमें पड़े अनगिनत दाग होते हैं वह स्वभावतः हर हुक्मके विरुद्ध हो जाता है। असलमें वह बागी बना दिया जाता है।

हठकी प्रवृत्ति

अपने दूसरे वर्षमें बच्चेको अपनी मिली चीजें अधिक प्रिय हो जाती हैं

और जब बच्चेसे वे छीन ली जाती हैं, उसे अपनी इच्छाकी पूर्ति नहीं करने दी जाती तो बच्चा जोरोंसे रोने और पैर पटकने लगता है, यहांतक कि वह जमीनपर लोटने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे उसे कोई दौरा आ गया हो। उसकी यह दशा उसके क्रोध एवं नैराश्यकी गहराईका द्योतक हैं। वह इन आवेगोंके वशीभूत होकर तबतक रोता-चिल्लाता रहता है जबतक कि उसमें शक्ति रहती है; अंतमें वह शिथिल होकर पड़ जाता है और सिसकियां भरने लगता है। अब मां डर जाती है, बच्चेको गोदमें उठा लेती है और उसे उसकी इच्छित वस्तु दे देती है। बच्चा रोने और वस्तुके मिलनेसे संबंध जोड़ता है और जान जाता है कि क्रोध करना और रोना विजयके सहायक हैं और इस प्रकार वह हठ करना सीख जाता है।

शिक्षणकी रीति

बच्चेके शिक्षणकी उचित रीति यह है कि दुनियाको समझनेमें उसकी उचित सहायता की जाय और उसे समझनेका आनंद उठाने दिया जाय। आनंदप्राप्तिकी कोशिश ही उसके हर कामके पीछे होती है। जो माता दुनियाको समझनेमें बच्चेकी सहायता ईमानदारीके साथ इस रीतिसे करती है, उसका बच्चा उसकी आज्ञाओंका पालन बड़ी खुशीसे करता है और ज्यों-ज्यों उसकी याद रखनेकी शक्ति बढ़ती है, तर्कशक्ति एवं नैतिकता जाग्रत होती है वह आवश्यक नियमोंका पालन करने लगता है।

बस, इसी एक उपायसे माता बच्चेके मस्तिष्क और चरित्रको सौंदर्य और आनंदका पथिक बना सकती है अन्यथा बच्चेमें शरारतके बीज बोये जाते हैं, वे लड़ना-झगड़ना सीखते हैं और बड़े होनेपर सारी दुनियाको युद्धकी अग्निमें झोंक देते हैं।

हम बालकको बार-बार कहा करते हैं—"अब हठ मत करना, तू कितना हठी है ? कितना जिद्दी है ?" ऐसा कहनेसे बालकको यह ज्ञात होता है कि उसमें हठ करनेकी शक्ति है, वह हठी है, जिद्दी है। इस प्रकार

बालक अधिकाधिक हठी होता जाता है। इससे हम दुःखी होते हैं किन्तु बालक हमसे भी दस गुना दुःखी होता है। उसका सारा दिन "एं-एं-एं" करनेमें बीतता है। फलतः बालक और हममें एक नयी अनावश्यक खटपट होने लगती है।

दूर कैसे किया जाय ?

बालकका हठ दूर करनेका सच्चा उपाय यह है कि हम अपने मनमें तो यह समझ लें कि वह हठी है, किन्तु उससे न कहें कि वह हठ करता है। हठका ठीक-ठीक इलाज करनेके लिए सबसे पहले यह जानना-समझना चाहिए कि हठ है क्या ? कई बार हठका कोई इलाज नहीं होता। इसका कारण यह है कि हठ—जैसी दिखाई देनेवाली बहुत-सी बातोंको हम हठ माननेकी भूल करते हैं अथवा वास्तविक हठको ठीक-ठीक नहीं समझते।

एक चार वर्षकी लड़की अपनी बड़ी बहनके साथ किसी पड़ोसिनके यहां गयी। पड़ोसिनने कहा "बहन, हमारा पटड़ा भिजवाना।" घर पहुंचकर लड़की पटड़ा उठाने लगी और उसके न उठनेपर जोर-जोरसे रोने और चिल्लाने लगी। जब घरके आदमियोंने उसके रोनेकी ओर ध्यान ही नहीं दिया तो वह और भी जोरसे रोने लगी। अब पिताका ध्यान उसकी ओर गया। रोनेका कारण पूछनेपर मालूम हुआ कि वह पटड़ा उठाकर पड़ोसिनके घर ले जाना चाहती है। पिताके अकेले ही पटड़ा उठानेपर वह फिर रोने लगी; क्योंकि वह सिर्फ सहायता चाहती थी। इसपर पटड़ेको एक तरफसे उसके पिताने और दूसरी तरफसे उसने और उसकी बहनने पकड़ा। इस प्रकार पटड़ा पड़ोसिनके घर पहुंचाया गया। लड़की आनन्दसे नाचने लगी और खुश होकर पड़ोसिनसे कहने लगी—'देखिए हम आपका पटड़ा ले आये हैं।'

पटड़ेके न उठनेपर लड़कीका रोना और चिल्लाना कोई सामान्य बाल-हठ जैसी चीज न थी। आवश्यक सहायता देनेके बदले "लड़की

कितनी हठीली है ?" एक बातके पीछे पड़ जानेपर उसे छोड़ती ही नहीं" "किस लिए चिल्ला रही है ?" "अभी नहीं", "हम भिजवा दगे" "क्यों दिमाग चाट रही है ?" आदि बातोंमेंसे कोई बात उसे कही जाती तो उसको भारी दुःख होता—एक तो अपने निश्चित अच्छे एवं निर्दोष कार्यके अधूरे रह जानेका और दूसरे अपने घरके प्रियजनोंकी असहानुभूतिका ।

वास्तविक हठको पहचाननेके लिए बालकको निकटसे, उसीका बन-कर, उसीकी दृष्टिसे देखने और समझनेका अभ्यास करना चाहिए और जब वह ऊधम करे तब इस बातका सदा ध्यान रखना चाहिए कि असली हठ है क्या चीज ।

ऐसा करनेपर हमें मालूम हो जायगा कि पहले जिन घटनाओंमें हमें हठ नजर आता था उनमें हठ नहीं था । अशक्ति, अस्वस्थता अथवा थकावटके कारण बालकके रोने और झगड़नेको ही हम हठ समझ बैठते हैं । ज्यों-ज्यों हम कारणोंकी खोज करगे त्यों-त्यों हमें हठके असली रूपका पता लगता जायगा और एक बार तो ऐसा लगेगा कि बाल-जगत्में हठ—जैसी कोई चीज है ही नहीं, किन्तु यह बात नहीं है । बालक कितनी ही बार हठ-रोगसे पीड़ित होता है जिसका तत्काल इलाज होना चाहिए ।

अस्वस्थताकी अवस्थामें

शारीरिक अस्वस्थता या निर्बलताके कारण यदि बालक झगड़ालू और चिड़चिड़ा हो गया है तो उसका इलाज करना और उसकी सार-संभाल रखना आवश्यक है; किंतु ऐसे समय बालकका मानसिक निर्बलता या विकारका शिकार हो जाना भी संभव है; अतः इस ओर भी हमारा ध्यान होना चाहिए । ऐसे समय बालककी बीमारीकी अवस्थासे अधिक महत्त्व देने अथवा जरूरतसे ज्यादा उसकी सार-संभाल करने तथा सब कुछ उसके इच्छानुसार करते रहनेसे उसके हठीला बन जानेकी संभावना

है। घरमें एक ही बालक होनेके कारण जरूरतसे ज्यादा उसका मान होनेसे भी वह हठीला बन जाता है। अक्सर सबसे छोटा बालक हठी बनता है। धनवानों के बालक प्रायः हठी होते हैं।

हठ करनेकी लत

बाल-हठमें बालकको दुनियाका राजा बननेकी इच्छा होती है। इसका मतलब यह है कि जिनपर बालकका प्रभाव होता है उन सबको अपने इच्छानुसार वह चलाना चाहता है। ऐसी विकृत इच्छाका उदय तभी होता है जब बालकको यह ज्ञान हो जाता है कि उसके रोने और झगड़नेमें बड़े-से-बड़ेको अपने सामने झुकानेकी शक्ति है।

एक चार वर्षकी इकलौती लड़की थी। उसकी सार-संभाल करनेके लिए उसकी मांके अलावा एक नौकरानी भी थी। नौकरानीका यह खयाल था कि घरमें एक ही बच्ची है, वह जो कुछ कहे वह करना ही चाहिए। मांका खयाल था कि घरमें एक ही लड़की है, इसलिए बड़े अच्छे ढंगसे इसका पालन-पोषण होना चाहिए। जब बालिका स्वच्छंद होकर कुछ कहती तो मां उसको रोक देती। थोड़ी देरमें नौकरानी आती और कहती 'आप तो बड़ी निर्दय हैं। ले-देकर एक ही तो लड़की है, वह इतनी रोती है, किंतु आपके मनमें जरा भी दया नहीं आती।' यह कहकर वह उसे अपनी गोदीमें उठा लेती, खानेको देती, समझाती और 'रानी बेटी', 'हीरा बेटी', कहकर उसे मनाती। हृष्ट-पुष्ट होनेपर भी लड़की दिनमें दो-तीन बार रोती और घंटोंतक रोती रहती। यदि यह कहें तो बेजा न होगा कि उस लड़कीको हठ-रोग हो गया था।

लड़कीकी मांका ध्यान इस ओर गया। उसने एकदम एकतंत्र राज शुरू कर दिया। एक-दो बार लड़की खूब रोयी; किंतु मांके दृढ़ रहनेपर वह आठ-दस दिनमें ही बिल्कुल बदल गयी। आठ-दस दिन पहले जो लड़की दुःखी रहती और रोती थी वह अब प्रसन्नचित्त, हसोड़ और सुदढ़ मनवाली बन गयी।

ऊपरके उदाहरणमें जो स्थान नौकरानीका था वही स्थान घरमें आमतौरपर माता-पिताका होता है। नौकरानीको तो घरसे अलग किया जा सकता है; किंतु कुटुंबको तोड़ देना असंभव है। यही कारण है कि बालक हठके शिकार बन जाते हैं; किंतु लोगोंकी तो यह धारणा है कि जो बालकको मारता है, डांटता है, वही उसको कैसे मना सकता है? इसलिए एक मारनेवाला, डांट-फटकार बतानेवाला और सख्ती करनेवाला हो और दूसरा ऐसा प्रसंग आनेपर बालकको प्यारसे अपने पास बुलानेवाला हो। मां मारे तो बालक नानी या दादीके पास जाय और वह 'बस, अब रो मत' कहकर उसको अपने पास बिठाये। इस प्रकार नियंत्रणकी दूषित कल्पना हमारे अंदर घर कर गयी है जिसके फलस्वरूप बालक व्यर्थ ही दुःखी होते हैं।

दो विशेषताएं

हठकी दो विशेषताएं हैं—एक तो अपनी बात करवाकर छोड़ना और दूसरी नियमोंका पालन न करना। बालक हो चाहे बड़ा, यदि वह अपनी इच्छा-शक्तिका विवेकपूर्वक उपयोग करता है तो वह इच्छा-शक्ति है; इसके विपरीत यदि वह अपनी इच्छा-शक्तिका दुरुपयोग करता है, विचारपूर्वक उससे काम नहीं लेता तो यह हठ है। बालककी विकसित होनेवाली इच्छा-शक्तिको बलवान् बनाने तथा उसको हठका रूप धारण करनेसे बचानेके लिए नियंत्रणकी आवश्यकता है। दुलारमें पला हुआ बालक नियमोंको तोड़ना अपना विशेषाधिकार समझता है और नियम-पालन करानेवाले माता-पिताको अपने इच्छानुसार झुकानेमें उसे सत्ताके विकृत आनंदका अनुभव होता है।

हठी बालकका विकास नहीं होता। उसमें शक्ति होनेपर भी वह अविकसित ही रहता है। फलतः बालक और हम दोनों ही दुःखी होते हैं। हठ छुड़ानेका पुराना तरीका इच्छाशक्तिको तोड़ देना है; किंतु बालककी इच्छा-शक्तिको तोड़कर उसको आज्ञाकारी बनानेका तरीका

कुछ अच्छा नहीं है। इससे तो बालक उल्टा विद्रोही और द्वेषी बनता है। इस प्रकार उसकी इच्छा-शक्तिका बल घटनेके बजाय अधिक तेजीसे विकृत होता है; अतः बालक डरपोक और भीरु बनता है। मतलब यह है कि उसकी इच्छा-शक्ति सचमुच टूट जाती है, पराधीन बन जाती है और उसका विकास नहीं हो पाता। हठका एक ही इलाज है—दृढ़ निश्चय; किंतु इस बातका जरूर पता लगाते रहना चाहिए कि हमारा निश्चय ठीक है या नहीं। एक बार निर्णय कर लेनेके बाद हमें चौहानकी तरह सख्त और दृढ़ बन जाना चाहिए।

हतोत्साह बच्चोंका सुधार

उत्साहहीनताका शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकारका प्रभाव होता है। जो विषय बच्चेके लिए कठिन पड़ता है वही अगर रोज कक्षामें चलता रहे तो वह अस्वस्थ हो जा सकता है, उसका दिल-दिमाग खराब हो जा सकता है और हकलानेका या और कोई विकार भी उसे हो जा सकता है। बच्चेमें आनेवाली उत्साहहीनता उसके चलने, खड़े होने, बैठने आदिमें जल्द ही प्रकट होने लगती है। उसके शरीरकी आकृति परिवर्तित हो जाती है और कुछ अंगोंमें स्थान-भ्रष्टता आनेके कारण उनकी सक्रियता भी मंद पड़ जाती है। प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार चाहे जितना भी उसका उपचार किया जाय उसकी उत्साह-हीनता नहीं जायगी। इसे दूर करनेके लिए पहले माता-पिताको उसकी स्थितिसे भलीभांति परिचित होना पड़ेगा जिसमें उसके अंदर आया हुआ तनाव निकालकर उसकी प्रगतिका मार्ग उन्मुक्त किया जा सके। अगर कठिन मालूम होनेवाले विषयका ज्ञान प्राप्त करनेमें व्यक्तिगत रूपमें उसकी कुछ सहायता कर दी जाय तो वह धीरे-धीरे सफलताके मार्गपर अग्रसर होने लगेगा और वह उसमें मनोयोगपूर्वक लग जायगा क्योंकि अब वह यह समझने लगेगा कि ज्ञान प्राप्त करनेसे ही प्रगति होती है।

परिस्थितियोंका प्रभाव

माता-पिताका दबाव ही हमेशा बच्चोंकी उत्साहहीनताका कारण नहीं हुआ करता। युद्ध, राजनीतिक उथल-पुथल—जैसी कि भारतमें आबादीके तबादलेके कारण हुई थी—आदिके कारण सामाजिक व्यवस्था विश्रृंखल हो जानेसे जो कठिनाइयां उत्पन्न होती हैं उनको सहन

करनेमें वच्चे समर्थ नहीं होते जिससे परीक्षामें असफल होकर हतोत्साह हो जाते हैं। अस्वस्थता या किसी और कारणसे कुछ दिनोंतक विद्यालयसे अनुपस्थित रहनेवाले वच्चे वहुतसे पाठोंको नहीं सीख पाते और वर्गकी पढ़ाईके साथ चलनेमें असमर्थ होकर उत्साहहीन हो जाते हैं। जो वच्चा अपनी अवस्थाके अनुसार पढ़ा-लिखा नहीं होता वह न तो प्रसन्नचित्त होगा, न उसमें आत्म-विश्वास होगा और न पूर्णरूपसे स्वस्थ रहेगा, आप भले ही उसे प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार अच्छे-से-अच्छा पोषण क्यों न दें। पहले उसे यह ज्ञान होना चाहिए कि वह पढ़ाईमें क्यों पिछड़ा हुआ है और अगर अवतक आगे नहीं वढ़ा है तो वढ़ सकता है। अव उसका पाठ नये सिरेसे वहांसे आरंभ होना चाहिए जहांतक वह अच्छी तरह सीख चुका है और उसे इस तरह आगे वढ़ाना चाहिए जिसमें उसमें आत्मविश्वासके साथ-साथ निश्चय और उत्साह वढ़ता जाय। इससे जो संतोष और आनंद प्राप्त होगा वह उसके सारे शारीरिक और मानसिक विकारोंको दूर कर देगा।

जो वच्चा शैशवमें पढ़ना और लिखना नहीं सीख लेता उसको सिखलाना कुछ कठिना होता है। उसका मन इतना कोमल और भावुक होता है कि थोड़ा-सा भी दवाव और कड़ाई होनेपर उसका दिल और दिमाग जवाव दे देता है। पहले यह समझ लेना चाहिए कि जितना करनेको कहा जाता है उतना वह कर ले सकता है तभी वह उसे करनेमें समर्थ हो सकता है। सफलता मिलने लगनेपर वह स्वयं अधिक सीखनेकी इच्छा और उत्साह प्रकट करने लगेगा। कभी-कभी उत्साहहीनताकी लहर आ सकती है, पर उत्साह और शक्ति वढ़ जानेपर वह आप-ही-आप दूर हो जायगी।

दोषगोपनका प्रयत्न

जिस बच्चेको यह अनुभव होता है कि वह शब्दोंको उनके शुद्ध रूपमें नहीं लिख सकता, सही उच्चारण नहीं कर सकता, स्पष्ट और सुंदर

लिपि नहीं लिख सकता या उसकी शिक्षाकी पृष्ठभूमि ही उपयुक्त नहीं है वह भी इनके कारण उद्विग्न होकर हतोत्साह हो जा सकता है। परिणाम यह होता है कि जब इन कामोंको करना आवश्यक होता है तो वह मुंह मोड़ लेता है। आमतौरसे देखा भी जाता है कि जो शुद्ध नहीं लिख सकता या जिसकी लिपि खराब है वह टेलीफोन टाइपराइटर आदिका सहारा लेनेकी ओर प्रवृत्त हुआ करता है और लिखनेसे भरसक बचनेका उपाय करता है; जिसका उच्चारण ठीक नहीं है वह समाजमें बोलनेका साहस नहीं करेगा और अगर कभी बोलेगा भी तो बहुत मंद स्वरमें जिसमें उसका दोष प्रकट न होने पाये। बच्चे ही नहीं, बड़े लोग भी अपने इन दोषोंको छिपाये रखते हैं और उनकी पूर्ति तरह-तरहके उपायोंसे किया करते हैं और इस कलामें कुशल भी हो जाते हैं। बच्चे भी अपनी त्रुटियोंको छिपानेके लिए ऐसे ही उपायोंकी ओर बढ़नेकी कोशिश करते हैं इसलिए उनको कठिनाइयोंका सामना करनेमें सहायता देते रहनेका ध्यान रखना चाहिए जिसमें दोषको अन्य उपायोंसे छिपानेकी प्रवृत्ति उनमें जरा भी न रहने पाये।

स्वभावगत दोष

कुछ बच्चोंकी प्रकृतिमें भी कुछ ऐसी बात होती हैं जो उनके कृतकार्य होनेमें बाधक हुआ करती हैं इसलिए उनका स्वास्थ्य भी पूर्णतः संतोषजनक नहीं होता। बहुतसे बच्चे मुंहचोर होते हैं। इस दोषका बढ़ना या दूर होना माता-पिता, भाई-बहन और साथियोंके रुखपर निर्भर है। न तो इसे हँसीका विषय बनाना चाहिए और न इसकी ओर बच्चोंका ध्यान आकृष्ट करना चाहिए बल्कि इस ओर ध्यान न देकर उन्हें कार्यमें प्रवृत्त करना चाहिए।

हमारे एक मित्रका लड़का मोहन, जिसकी अवस्था लगभग सात वर्षकी थी, इतना मुंहचोर था कि बोलनेका तो जल्द नाम हीं नहीं लेता था

और इजारबंदका छोर मुंहमें डाले रहता था; अगर बोलनेको लाचार होता तो इजारबंद मुंहमें दबाये-ही-दबाये बड़ी धीमी आवाजमें बोलता और अगर कभी इसकी ओर उसका ध्यान दिलाया जाय तो उसका चेहरा लाल हो जाता। यों तो अवस्थाके मुताबिक उसमें अक्ल भी थी, पर दोष एक यही था। एक दिन उसके महल्लेमें रामलीला हुई जिसे वह भी देखने गया। दूसरे दिन महल्लेके छोटे बच्चोंने भी लीला करनेकी ठानी और मोहनको भी उसमें पार्ट दिया। उसने अपना पार्ट इतना अच्छा किया कि लोग देखकर दंग रह गये। न मालूम कहांसे उसमें अभिनेताओंकी-सी गंभीरता आ गयी और इजारबंद, मुंहकी बात कौन कहे, हाथमें भी नहीं आया; शब्द भी साफ-साफ और लहजेके साथ निकले। उस दिनसे वह ऊंची आवाजमें बोलने लगा, इजारबंदका मुंहमें जाना धीरे-धीरे बंद हो गया और सभी तरहके कामोंमें उत्साह दिखलाने लगा। इस प्रकार एक ही कार्यमें उसकी सफलताने उसका कायापलट कर उसे सभी दिशाओंमें आगे बढ़ा दिया।

भाषाका प्रयोग

आत्मविश्वास या उत्साहहीनता उत्पन्न करनेमें भाषाके प्रयोगका सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है; क्योंकि जीवनकी हर एक अवस्था और रोज-रोजके कामोंमें किसी-न-किसी रूपमें इसकी आवश्यकता पड़ती रहती है। छोटे बच्चे भाषा जितना समझ सकते हैं उतना बोल नहीं सकते इसलिए जब वे बहुत छोटे हों तभीसे उनको कुछ-कुछ पढ़कर सुनाते रहना चाहिए और उसके लायक कोई बात मिले तो समझाते जाना चाहिए—भले ही वे उसे पूरी तरह ग्रहण न कर सकें। यह व्याख्या उनमें अपनेको बुद्धिमान् समझनेकी भावना उत्पन्न करेगी। उनकी क्रीड़ामें भी बराबर भाषाका प्रयोग होना चाहिए। इससे उनकी वाणीका आधार प्रस्तुत हो जाता है और वे बोलनेके प्रयत्नमें आनंदका अनुभव करते हैं।

कुछ बच्चे बहुत दिनोंतक नहीं बोल पाते। कारण यह होता है कि उनकी आवश्यकताकी सारी वस्तुएं उनके पास प्रस्तुत रहती हैं और उन्हें कुछ बोलकर अपनी इच्छा प्रकट करनेकी जरूरत नहीं पड़ती। कुछ लोग तो बच्चेका जल्द न बोल सकना एक रोग समझकर डाक्टरकी सहायता लेना चाहते हैं, पर दरअसल यह कोई शारीरिक समस्या न होकर केवल मानसिक है। ऐसे बच्चोंको ऐसी परिस्थितियोंमें रखना चाहिए जिसमें उनकी जरूरतकी सारी चीज प्रस्तुत न हों और यह आशा की जाय कि वे जरूरत पड़नेपर उनकी मांग करेंगे।

नयी संतानके आगमन, बच्चोंके प्रति माता-पिताके वर्तावमें भिन्नता, बड़ोंके द्वारा उपेक्षा या अधिक प्यार तथा इस तरहकी अन्य बातोंका भी बच्चोंपर मानसिक प्रभाव होता है। इसलिए माता-पिताको बच्चोंमें उत्साहहीनता लानेवाले अवसरोंका सावधानीके साथ निवारण करते जाना चाहिए।

माता-पिताके लिए दस हिदायतें

ऐसे लोगोंकी संख्या बहुत बड़ी होगी जो किसी-न-किसी प्रकारके मानसिक विकार या उसके कारण उत्पन्न किसी रोगसे ग्रस्त होंगे। चाहे जहां जाइए आपको माता-पिता बच्चोंके आचरण या उद्दंडतापूर्ण वर्तावकी शिकायत करते हुए मिलेंगे; ऐसे परिवार बहुत कम मिलेंगे जिनमें कलहका प्रवेश न हुआ हो। आखिर इन सब खराबियोंके लिए कौन जवाबदेह है? माता-पिता तो संतानको ही इसके लिए दोषी ठहराते हैं, पर दरअसल दोष उन्हींका होता है। क्यों? इसलिए कि प्रायः सभी मानसिक विकार बाल्यावस्थामें उचित शिक्षा न मिलनेके ही परिणाम हुआ करते हैं।

एक मानसोपचारकने इस संबंधमें माता पिताके लिए मोटे तौरपर दस नियम बनाये हैं जिनपर ध्यान देकर बच्चोंको मानसिक विकारसे बहुत कुछ बचाया जा सकता है।

१. माता-पिता बच्चेकी उपस्थितिमें कभी कहा-सुनी या झगड़ा न करें; अगर उनको झगड़ना ही हो तो अन्यत्र चले जायं।

अगर बच्चेका उचित रूपमें विकास होने देना अभीष्ट है तो उसके लिए सामंजस्य और प्रेमका वातावरण उतना ही आवश्यक होगा जितना जीवनके लिए भोजन और ओषजन। अगर आपके प्रति बच्चेका विश्वास न रह जाय तो उसके मनमें उथल-पुथल बनी रहेगी, वह अपनेको अरक्षित समझेगा, उसके नैतिक विचारोंमें कमजोरी आ जायगी और उसका अंतःकरण संकीर्ण हो जायगा।

२. अगर आपके कई बच्चे हों तो बड़े बच्चोंके प्रति विशेष प्रेम प्रदर्शित कीजिए।

माता-पिताका प्रेम या ध्यान एकाएक अपनी ओरसे हटकर नवजात शिशुकी ओर जाते देखकर बड़े बच्चेको बहुत अधिक मानसिक कष्ट होता है। इसकी प्रतिक्रिया दो रूपोंमें होती है—या तो उसमें उनके प्रेमसे वंचित होनेकी भावना उत्पन्न हो जाती है या द्वेषकी। द्वेषकी भावनाका पहला लक्ष्य नवजात शिशु होता है और यह भावना यहांतक बढ़ जाता है कि उसकी प्रवृत्तियां घातक रूप धारण कर लेती हैं। इसके अलवा यह द्वेष माता-पिताके प्रति भी हो जाता है। परिणाम यह होता है कि उसके हृदयमें द्वेषात्मक संघर्ष और दुष्कर्म तथा आशंकाकी भावना प्रबल हो जाती है।

३. अपने बच्चेके प्रति अत्यधिक प्रेम मत दिखाइए।

अगर माता-पिता विशेषकर माता अपने बच्चेकी आवश्यकतासे अधिक फिक्र और देखभाल करने लगे तो बच्चोंमें दायित्वका ज्ञान विकसित होनेका अवसर ही नहीं आने पायेगा, उसमें परावलंबनकी घातक मनोवृत्ति बनी रहेगी और स्वयं कोई निर्णय करनेमें डरनेके कारण वह धीरे-धीरे भीरुता और नाड़ीदौर्बल्यका शिकार हो जायगा। अगर माता प्रेम-प्रदर्शन संबंधी शारीरिक क्रियाओंमें अधिक संलग्न रहे

तो ये विकार बढ़कर भीषण रूप धारण कर ले सकते हैं । बच्चेके प्रति अत्यधिक प्रेम-प्रदर्शन दांपत्य-जीवनके प्रति माताके असंतोषका सूचक होता है । इसका बच्चेके यौन-जीवनपर बहुत बुरा असर होता है—आगे चलकर उसके लिए समवयस्कों, विशेषकर भिन्न (पुरुष हो तो स्त्री और स्त्री हो तो पुरुष) वर्गके साथ सामंजस्य स्थापित कर सकना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य हो जाता है । इस स्थितिके संबंधमें उसमें दोषका जो भावना उत्पन्न होती है वह उसके लिए बहुत अनिष्टकर होती है और उसे मानसिक रोगका शिकार बना दे सकती ।

अगर माता अधिकार-प्रदर्शन और शासनके रूपमें प्रेम प्रदर्शन करे, बच्चेके हर काममें दखल देती या शरीक होती रहे और आलोचना करती रहे तो बच्चेकी कमजोरी और आशंकाकी भावना बहुत बढ़ जायगी जो प्रायः सहवर्गीय यौनप्रवृत्ति उत्पन्न कर देती है ।

४. बच्चेके प्रति आपका प्रेम बहुत कम भी न हो ।

प्रत्येक बच्चेको प्रेम और उचित ध्यानकी आवश्यकता होती है । अगर बच्चा यह समझने लगे कि घरमें उसकी कोई पूछ नहीं है तो उसमें दीन, हीन और असहाय होनेकी भावना घर कर लेगी । आगे चलकर जीवनमें और लोगोंसे मिलने और साबका पड़नेपर वह पराजयकी ही उम्मीद रखेगा । इस प्रकारका बच्चा हमेशा अपनेको असफल मानेगा और जिन बातोंको अंगीकार न होनेकी संभावना देखेगा उनसे बचनेके प्रयत्नमें अपनेको कोसता रहेगा ।

५. अगर बच्चा हस्तमैथुन आदि यौन दोष करता हुआ देखा जाय तो उसे दंड देनेकी धमकी मत दीजिए ।

बहुतसे बच्चे इस प्रकारके दोषके शिकार हुआ करते हैं । इसका बहुत अधिक होना आगे चलकर हानिकर होता है, पर हानि विशेषतः निषिद्ध कर्ममें प्रवृत्त होनेकी भावनासे होती है । जननेंद्रियके बेकाम होने

या मानसिक रोग होनेका भय दिखलानेसे सचमुच इस तरहके रोग प्रस्तुत हो जा सकते हैं। यह स्थिति हस्तमैथुनके कारण नहीं; बल्कि भावनात्मक द्वंद्वके कारण उत्पन्न होती है और इस द्वंद्वकी उत्पत्तिका कारण एक ओर तो अपराध और आशंकाकी भावना होती है और दूसरी ओर दुर्दमनीय यौनप्रवृत्ति ।

६. बच्चेकी जननेंद्रियपर ज्यादा ध्यान मत दीजिए और न उसे लज्जापूर्वक छिपानेका प्रयत्न कीजिए ।

कुछ माताएं अपने बच्चेकी जननेंद्रियके साथ तरह-तरहके खेल खेलकर मनोविनोद किया करती हैं, लड़केको लड़कीकी और लड़कीको लड़केकी पोशाक पहनाया करती हैं और प्रायः ग्यारह—बारहकी अवस्थातक अपने ही साथ सुलाया करती हैं। इस तरहके काम बड़े खतरनाक होते हैं; क्योंकि बच्चेकी यौन—भावना असमय जाग्रत हो जाती है। अगर बच्चेमें यौनसंबंधी दोषकी भावना तीव्र हो तो वह उन्मादरोगके रूपमें परिणत हो जा सकती है। बादमें इस यौनभावनाको औरोंकी ओर प्रवृत्त करना कठिन हो जाता है और इसका परिणाम सहवर्गीय यौनभावनाके रूपमें सामने आता है ।

जननेंद्रियको लज्जापूर्वक छिपाना भी उतना ही हानिकारक हो सकता है; क्योंकि इससे दोष और आशंकाकी भावना उत्पन्न होती है इसलिए सबसे अच्छा तरीका यही है कि बच्चेमें यौनभावना कृत्रिम रूपमें उत्पन्न न कर आप—से—आप विकसित होने दी जाय ।

७. माताएं अपने पतिपर हावी होनेका प्रयत्न न करें ।

माता—पिताके बीच इस प्रकारकी स्थितिसे भी बच्चेमें सहवर्गीय यौनभावनाकी प्रवृत्ति बढ़नेका आधार प्रस्तुत हो जाता है। अगर माता दबंग और उग्र स्वभावकी हो और पिताका स्वभाव कोमल और दब्बू हो तो बच्चेकी शारीरिक और मानसिक स्थिति स्पष्ट न रह सकेगी। लड़का

तो इस मर्दानी माताके सामने कुढ़नकी भावना और स्त्रीसुलभ नम्रताके साथ झुकता रहेगा और लड़की अपनेको उस माताके रूपमें समझकर पुरुष प्रकृतिकी हो जायगी जिससे न तो वह विवाहके योग्य रह जायगी और न सामान्य यौन-जीवनके साथ सामंजस्य स्थापित कर सकेगी।

८. न तो ज्यादा नरम बनिए और न बहुत कड़ा दंड दीजिए।

प्रत्येक बच्चेमें माता-पिता, विशेषकर माताको अपनी इच्छाओंकी पूर्तिका साधन बनानेकी प्रवृत्ति होती है। आसानीसे उसकी बातें मानते जाना एक तरहसे दासत्व स्वीकार करना है। इसके अलावा दूसरी बात यह होगी कि बच्चा बड़ा होनेपर विफलता और नैराश्यकी स्थिति सहन करनमें समर्थ नहीं हो सकेगा ।

बच्चोंका काफी बड़े होनेतक रातमें सोते समय बिस्तरपर पेशाब करते जाना इस प्रकारकी अनुचित दयालुताका एक अच्छा उदाहरण है। बिस्तर गीला हो जानेपर बच्चा चिल्लाकर माताको इधर ध्यान देनेके लिए प्रेरित करता है; अगर माता उसकी तरफ फौरन ध्यान न देकर कुछ उपेक्षा कर दिया करे तो बच्चेकी यह बुरी आदत छूट जायगी।

दंड देना नियम न होकर अपवाद ही होना चाहिए। मारना-पीटना तो विशेष रूपसे हानिकारक हो सकता है; क्योंकि भूल करनेपर बच्चा प्रतिकारके रूपमें इसकी प्रतीक्षा करने लगता है। अगर इस तरहका व्यवहार बच्चेके वयस्क प्राप्त होनेतक चलता रहे तो यह एकके बाद दूसरा ऐसा काम करता रहेगा जिसमें उसे क्षति पहुँचती रहे और तब वह दुनिया-के बुरी होने और अपने प्रति अन्याय किये जानेकी शिकायत करने लगेगा।

९. बच्चेको अनावश्यक नश्तर मत लगवाइए।

यों तो अनिवार्य हो जानेपर नश्तर लगवाना ही पड़ेगा, पर ऐसे बहुतसे अवसर आते हैं जब नश्तर उतना आवश्यक नहीं होता। स्मरण रखनेकी बात यह है कि नश्तरसे बच्चेको भयंकर मानसिक आघात पहुंचता

है और बच्चेके मनमें यह आशंका और धारणा बैठ जाती है कि ऐसा कोई काम किया जा रहा है जिससे शरीरकी पूर्णतामें हमेशाके लिए कमी आ जायगी।

अगर बच्चेके मनमें हस्तमैथुन आदिके संबंधमें दोषकी कोई भावना हो तो चीरा लगाना खोजा बनाने-जैसा प्रतीत होगा जिसकी उसके मनमें पहलेसे ही आशंका बनी रहती है। सुन्नतके संबंधमें तो यह बात और भी सत्य प्रमाणित होती है।

१०- बच्चेपर मलमूत्रके त्यागके लिए अनावश्यक दबाव मत डालिए।

यह देखना तो आवश्यक है ही कि बच्चेके मलादिका विसर्जन नियमित और उचित रूपमें हो रहा है, फिर भी बच्चा यह जल्द ही समझ जाता है कि उससे क्या आशा की जाती है और उसे माता-पिताकी इच्छाके विरुद्ध पाखाने आदिकी हाजत रोकनेके रूपमें अपने मनकी बात कर उन्हें कुढ़ानेका अच्छा उपाय मिल जाता है। माता इसके लिए जितना ही जोर देती है उतना ही बच्चा इसके विरोधमें बैठा रहकर उसे कुढ़ानेमें आनंद मानता है। अगर कुढ़ानेकी यह प्रवृत्ति स्थायी हो जाय तो भावी जीवनमें यह मानसिक असंतुलनका कारण बन जाती है।

अगर आप अपने बच्चेको स्वस्थ और साधारण मानसिक अवस्था-वाले तरुण या तरुणीके रूपमें देखना चाहते हैं तो इन नियमोंका पालन करनेका प्रयत्न कीजिए; क्योंकि प्रौढ़ावस्थामें होनेवाले मानसिक विकारोंका आरंभ शैशवकालमें ही हुआ करता है।

बालरोगोंका कारण और उपचार

दवाओंके प्रयोगका उद्देश्य रोगोंके लक्षणोंको दूर करना—और अगर ठीक-ठीक कहा जाय तो दवाना—होता है। जो दवाएं पहले प्रयोगमें आती थीं उनके प्रभावहीन सिद्ध होनेपर इधर कुछ दिनोंसे उनके स्थानपर सुई और टीका प्रयोगमें लाये जाने लगे हैं, फिर भी रोगोंकी व्यापकता ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। इसके विपरीत प्राकृतिक चिकित्सक यथासंभव पीड़ा और कष्टको कम करते हुए शरीरमें मौजूद मूल कारणको दूर करनेका प्रयत्न करता है जो लक्षणोंके रूपमें व्यक्त होता है। लक्षणोंको दवा देनेसे रोगसे छुटकारा नहीं मिलता।

खतरेकी घंटी

अगर बच्चेको सिरदर्द या बुखार हो तो डाक्टर दर्द दूर करनेके लिए एस्पिरिन और बुखार कम करनेके लिए कुनैन या इस तरहकी कोई दवा दे देगा, पर प्राकृतिक चिकित्सक तो सिरदर्द, बुखार आदिको खतरेकी घंटी मानेगा जिनकेद्वारा शरीर यह सूचित करता है कि अंदरकी हालत ठीक नहीं है और सुधारकी आवश्यकता है या सुधार हो रहा है।

अगर सड़ककी मरम्मत होते समय सवारियोंको चेतावनी देनेके लिए लाल झंडी लगायी जाय तो चालक इस झंडीको हटानेकी बात कभी न कहेगा; वह समझ जायगा कि सड़ककी हालत ठीक नहीं है और जबतक सड़क ठीक न होगी झंडी नहीं हटायी जायगी। उसी प्रकार सिरदर्दकी हालतमें उसके मूल कारण कब्ज आदिको न दूर कर एस्पिरिन खिलाना अपने रोगसंबंधी अज्ञानका परिचय देना है।

अगर बच्चेको दमा हुआ है तो डाक्टरका उद्देश्य होगा सांसका कष्ट दूर करना; उसका ध्यान इस बातपर कभी नहीं जायगा कि सांसका यह कष्ट

अंदरकी असाधारण अवस्थाका व्यक्त लक्षणमात्र है। थोड़े समयके लिए यह कष्ट दूर हो जा सकता है, पर इससे दमेसे छुटकारा नहीं मिलेगा। प्राकृतिक पद्धति इसके मूल कारणको ही दूर कर आगेका दौरा रोकनेकी कोशिश करेगी।

औषधविज्ञानका कहना है कि ये विभिन्न प्रकारके रोग कीटाणुओंके कारण होते हैं जो शरीरमें प्रविष्ट होकर विशेष प्रकारसे कार्य करते हैं, पर प्राकृतिक पद्धतिके मतानुसार सभी रोग एक ही मूल कारणसे उत्पन्न होते हैं और यह कारण सर्दी, खांसी, दमा, फोड़ा, मसूरिका आदि तरह-तरहके रोगोंके रूपमें व्यक्त हो सकता है।

रोग क्यों ?

बालरोगोंका मूल कारण साधारणतः पांच प्रकारसे प्रस्तुत हुआ करता है—

(१) अयुक्त आहार—सभ्य जातियोंके आहारमें रोग उत्पन्न करने-वाली दो बातें होती हैं—एक तो यह कि आहारकी मात्रा या उसमें कुछ खास चीजोंकी मात्रा बहुत अधिक होती है और दूसरी यह कि उसमें तरकारियां, फल और पूर्णान्न न होनेके कारण वह बहुतसे तत्वोंसे वंचित होता है जिससे अंगों और रक्तकी शक्ति कम पड़ जाती है। इन दोनों बातोंका परिणाम यह होता है कि शरीर अपने मल-मार्गों—त्वचा, फेफड़ों, वृक्कों और आंतों—से सारा मल और विकार नहीं निकाल पाता, बचा हुआ मल शरीरमें ही रह जाता है और विशेष भागोंमें एकत्र होकर रोगका आधार बनता है।

(२) धूप, हवा आदिकी कमी—धूप, शुद्ध हवा और निद्रा सभी मनुष्योंके लिए आवश्यक है और बच्चोंके लिए तो उनकी आवश्यकता और भी अधिक है। स्वस्थावस्थामें भी बहुतसे बच्चोंको पर्याप्त मात्रामें इनकी प्राप्ति नहीं हो पाती और रुग्णावस्थामें तो, जब इनकी और अधिक

आवश्यकता रहती है, बहुतसे बच्चोंको शुद्ध हवा और निद्रा और भी कम मिल पाती है।

(३) दुर्घटना, आघात आदि—चारपाई, पालने आदिसे गिरनेके कारण कभी-कभी मेरुदंड आदिका स्थान-भ्रंश हो जाता है जिसका उस समय पता नहीं चलता, पर इसके कारण शारीरिक क्रियामें बाधा पड़ने लगती है। प्रसवमें कठिनाई होनेपर यंत्रों आदिके प्रयोगसे भी खोपड़ीको जड़के पासकी कोमल अस्थियां अपने स्थानसे हट जा सकती हैं। इस स्थान-भ्रंशके कारण कुछ नाड़ियोंपर दबाव पड़ सकता है जिससे वे अपने क्षेत्रका नियंत्रण करनेमें असमर्थ हो जा सकतो हैं। उदाहरणार्थ, श्वास-कष्ट खोपड़ीके मूलके पासकी नाड़ीपर दबाव पड़नेका परिणाम हो सकता है और यदि वह आहारोपचारसे ठीक न हो तो मालिश आदिसे ठीक किया जा सकता है।

(४) गर्भगत और आनुवंशिक प्रभाव—यह सत्य है कि गर्भमें रहते समय प्रकृति अगर आवश्यक हो तो माताकी शक्तिका ह्रास करके भी शिशुकी यथासंभव रक्षा करती है, पर पुश्त-दर-पुश्त बेमेल या बुरा आहार ग्रहण करते और बुरी अवस्थामें रहते आनेके कारण कुछ रोगोंकी प्रवृत्ति आनुवंशिक हो जाती है। मां-बापके कारण भी कुछ बच्चोंमें विकार आ जाते हैं जो एकसे दूसरी पीढ़ीमें संक्रमण करते रहते हैं।

(५) रोग दबानेवाला उपचार—रोगके लक्षणोंको दबानेवाले और गलत उपचारसे पीछे उसी मूल कारणसे किसी दूसरे रूपमें रोग प्रकट होता है।

ये ही पांच बात अलग-अलग या एक दूसरीसे मिलकर रोगका कारण बनती हैं। इनकी बहुत कुछ रोक-थाम की जा सकती है और लक्षणोंको दवाओं, वैक्सीन, लसीका आदिके जरिये दबानेकी अपेक्षा इन रोग उत्पन्न करनेवाली परिस्थितियोंमें परिवर्तन करना अधिक बुद्धिमत्तापूर्ण बात है। कुशल यही है कि शरीरमें पूर्वस्थिति प्राप्त करनेकी प्राकृतिक प्रवृत्ति होती है और वह स्वास्थ्यलाभके लिए हमेशा प्रयत्नशील रहता है। सर्दी,

फोड़ा आदि शरीरके अपने विकारोंको दूरकर सफाईकर लेनेके प्रयत्नके ही परिणाम हैं।

कीटाणुओंका स्थान गौण

एलोपैथी बच्चोंके संक्रामक रोगोंको कीटाणुओंके आक्रमणका परिणाम मानती है जिसपर माताका वस्तुतः कोई नियंत्रण नहीं होता, इसलिए यह पद्धति इन कीटाणुओंका नाश करने और चाहे जिस प्रकारका आहार देकर रोगीकी ताकत बनाये रखनेका प्रयत्न करती है। प्राकृतिक पद्धति इसके विपरीत कीटाणुओंको गौण स्थान देती है और वह मानती है कि वे तो बच्चेके शरीरमें तभी अड्डा जमाते हैं जब उनकी बाढ़के लिए उपयुक्त क्षेत्र प्रस्तुत रहता है और शरीरमें एकत्र मल और विकारको छिन्न-भिन्न करके साफ करनेकी जरूरत होती है।

कीटाणु शत्रु नहीं !

प्रकृतिका संतुलन कायम रखनेका तरीका बहुत जटिल और विचित्रता-पूर्ण है। जिन कीटाणुओंके विरुद्ध डाक्टर युद्ध छेड़ते हैं वे प्रायः मानव-जातिके मित्र होते हैं। शरीरकी हालत ठीक न होनेपर, वे इसकी सूचना देते हैं और एकत्र मलपर, जो उनका आहार है, रहकर शरीरके लिए भंगीका काम करते हैं। कुछ कीटाणु बच्चेके शरीरमें विशेष प्रकारके लक्षण भी उत्पन्न करते हैं। विशेष प्रकारका चर्मस्फोट, खांसी, ग्रंथिशोथ आदि इसी प्रकारके लक्षण हैं जिन्होंने डाक्टरोंको कीटाणुओंको मूल कारण माननेको बाध्य किया है। शरीरकी प्राकृतिक रक्षणशक्ति इन भंगियोंसे बादमें निपट लेती है और अंतमें उन्हें ठीक उसी तरह नष्ट कर देती है जिस तरह ये कीटाणु एकत्र मलका खातमा करते है। अगर शरीरको पुनः साधारण क्रिया करने योग्य स्वस्थ बनाना है तो एकत्र मल, नष्ट हुए कीटाणुओं, निर्जीव श्वेतकणों तथा इस प्रक्रियाके कारण उत्पन्न अन्य सारे विकारोंको शरीरसे किसी-न-किसी प्रकार बाहर

निकालना ही होगा। विचारकी दृष्टिसे आक्रमण करनेवाले कीटाणुओंका विषय गौण है। अधिकांश संक्रामक रोगोंका क्षेत्र बहुत कुछ सीमित होता है, पर रोगका दौरा समाप्त हो जानेपर बच्चेको अवस्थामें बहुत अधिक अंतर आ जाता है—वह रोगका तीव्र रूप रहते समय जैसा उपचार हुआ होगा उसीके अनुरूप होगी, इसलिए उपचारमें इन चार बातोंपर विशेष रूपसे ध्यान देना आवश्यक है।

१. बच्चेके शरीरमें जो मल एकत्र है उसमें किसी तरह वृद्धि न होने पाये। मतलब यह कि जबतक बच्चेको बुखार रहे तबतक उसका भोजन—चाहे वह कोई ठोस पदार्थ हो या दूध आदि तरल पदार्थ—बिलकुल बंद रखा जाय, जब मलके पूर्णतः निकल जानेका लक्षण प्रकट हो तभी खानेको दिया जाय। औषध, पुष्टिकारक पदार्थ, सूई आदिका प्रयोग भूलकर भी न किया जाय; क्योंकि इन्हें भी निकालना पड़ता है और ये शारीरिक क्रियामें बाधा डालने और असंतुलन उत्पन्न करनेके अलावा मलकी वृद्धि करते हैं।

२. शरीरको मलसे, जो भंगियों (कीटाणुओं) के आक्रमणका कारण हुआ है, छुटकारा पानेमें मदद की जाय। इसका अर्थ यह है कि मल निकालनेवाले चारों प्राकृतिक मार्गोंको अपना काम करनेमें सभी संभव उपायोंसे सहायता दी जाय।

३. बच्चेकी जीव-शक्ति और नाड़ियोंकी शक्तिकी रक्षा की जाय जिसमें शरीरकी सारी शक्ति मल-निष्कासनके कार्यमें संलग्न हो सके। अभिप्राय यह कि बच्चेको बिस्तरपर गरम रखा जाय और उसकी शक्ति भोजन या दवा पचाने या अभिशोषित करके कार्यमें जरा भी न लगे।

४. मल निकल जानेपर शरीरके नव-निर्माणके लिए बच्चेको अच्छे खाद्य पदार्थ दिये जायं।

औषधविज्ञानकी भूल

प्रचलित औषध-पद्धतिमें इन चारों बातोंपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं समझी जाती। यह सत्य है कि रुग्ण बच्चेके शरीरसे उस खाद्य पदार्थको निकालनेके लिए जो उसे नहीं देना चाहिए था, दवामें कुछ रेचक भी रखा जाता है, पर कोषाणुओंमें स्थित मूल विकार, मृत और जीवित कीटाणुओं और लक्षणोंको दबाने के लिए प्रयोगमें लायी गयी तरह-तरहकी रासायनिक दवाओंको शरीरसे बाहर निकालनेके प्रश्नपर जरा भी ध्यान नहीं दिया जाता। ये सभी बच्चेके शरीरके लिए विजातीय होते हैं, इसलिए उसके स्वाभाविक रूपमें कार्य करनेके लिए इनका निकाला जाना जरूरी है और अगर शरीरको इनके निकालनेके प्रयत्नमें सहायता न दी जाय तो इनका बहुत-सा अंश शरीरमें पड़ा रह जायगा।

इस प्रकार औषधोपचारका परिणाम यह होता है कि रोग अपनी स्वाभाविक अवस्थामें पहुंच जाता है और शरीर विकारों, विषों तथा प्रयोगमें लाये गये खनिज द्रव्योंसे भरा ही रह जाता है और शरीरका अपनी सफाई करनेका प्रयत्न विफल हो जाता है। रोगकी तीव्रावस्था समाप्त हो जानेपर भी बच्चेकी तबीयत खराब ही रहती है और उसका शरीर बड़ी मंथर गतिसे स्वास्थ्यकी ओर बढ़ता है। कहनेके लिए तो बच्चा नीरोग हो जाता है; क्योंकि रोगका कोई लक्षण मौजूद नहीं होता, पर दरअसल उसका रोग पूर्व अवस्थामें बना रहता है और उसका शरीर सफाईके दूसरे अवसरपर कीटाणुओंके आक्रमणके लिए उपयुक्त क्षेत्र बना रहता है।

प्राकृतिक उपचार चार मुख्य सिद्धांतोंपर आधारित है—

१. उपवास—भोजन, दवा और सूईसे परहेज;

२. स्वच्छता—चारों मल-मार्गोंसे मलका समुचित विसर्जन जिसमें भीतर-बाहर पूरी सफाई रहे;

३. विश्राम—जीवशक्तिका संचय, और

४. पुनर्निर्माण—उपवासके बाद संयत मात्रामें उपयुक्त आहार।

उपवास

अस्वस्थ शिशु आप-ही-आप भोजनका त्याग कर देता है। शरीरके ठीक तरहसे काम न करते समय उसका भार न बढ़ने देनेका यह प्रकृतिका उपाय है। माताको प्रकृतिके इस आदेशके पालनपर हमेशा ध्यान देना चाहिए और उसे प्रसन्न होना चाहिए कि बच्चेका स्वास्थ्य इतना अच्छा है कि अस्वस्थ होनेपर भोजन नहीं ग्रहण कर रहा है और उससे परहेजकर विश्राम करना चाहता है। प्रायः बच्चे खानेके लिए तैयार हो जाते हैं जब कि खानेसे एक-दो दिन और परहेज करना अच्छा हुआ होता। जुकाम, टौंसिलका बढ़ना, खांसी, कृमि आदि जैसे रोगोंमें यह स्थिति हो सकती है। इस हालतमें माताको इस बातका प्रयत्न करना चाहिए कि बच्चा खानेसे परहेज करे।

खाद्य पदार्थ बच्चेकी दृष्टिसे अलग रहे और उसे उसकी गंध भी न मिलने पाये। सबसे अच्छा यह हो कि बच्चा बिस्तरपर ही रखा जाय। भोजनजन्य आनंदके अभावकी पूर्ति उसे खिलौने आदि देकर की जा सकती है। माताको चाहिए कि पहलेकी अपेक्षा उसके निकट अधिक समयतक रहे और उसे कुछ सुनाती या उसके साथ खेलती रहे।

स्वच्छता

उपचारका यह सर्वाधिक सक्रिय अंग है। सफाईके चार मार्ग हैं इसलिए इसके चार विभाग हो जाते हैं—

क—आंतोंके द्वारा—उपवास करते समय मलविसर्जनकी साधारण क्रियाको उत्तेजित करनेके लिए बच्चेके अन्नमार्गमें कोई नया पदार्थ नहीं पहुंचता; इसके अलावा अभिशोषणकी क्रिया न होनेके कारण शरीरके कोषाणुओंसे मल निकलकर आंतमें पहुंचता है। इस मलको आंतमें नहीं

रुकना चाहिए, नहीं तो शरीर पुनः उसका शोषण कर लेगा, इसलिए उपवास करते समय बच्चेको सुबह-शाम एनिमा देना आवश्यक है। यह बिलकुल सरल काम है, इसमें माता या बच्चेको कोई परेशानी नहीं होनी चाहिए।

ख—त्वचाके द्वारा—त्वचा मल निकालनेका अच्छा अंग है और उसके साथ इसी रूपमें व्यवहार भी होना चाहिए। वह छोटे-छोटे छिद्रों या स्वेद-ग्रंथियोंसे भरी रहती है जिनके जरिये बराबर क्लेद निकलता रहता है। इस क्लेदके भाप बननेपर स्वस्थावस्थामें भी मलके सूक्ष्मकण त्वचापर जम जाते हैं, रुग्णावस्थामें तो इस प्रकार निकलनेवाले मलकी मात्रा और बढ़ जाती है, इसलिए त्वचाको यह कार्य करनेके लिए उद्दीप्त करनेका जो भी उपाय हो करना चाहिए। पहला उपाय तो यह है कि अगर बच्चा बहुत बीमार नहीं है, तेज बुखार नहीं है या बहुत लस्त नहीं हो गया है तो उसे रोज गरम पानीसे दो बार नहलाया जाय; बुखार आदिकी हालतमें गरम पानीमें तौलिया निचोड़कर बदन पोंछ दिया जाय। इससे त्वचापर जमा हुआ मैल निकल जायगा और नीचेकी ग्रंथियां उद्दीप्त होकर और सक्रिय हो जायंगी।

दूसरा उपाय कटि-स्नान है। इससे भी त्वचा और आंतोंको अधिक मल निकालनेके लिए उद्दीप्त किया जा सकता है। बुखार होने और पसीना कम निकलनेकी हालतमें यह बहुत प्रभावकर होता है और नींद भी लाता है। ठंढ न लगने देनेके संबंधमें पूरी सावधानी बरती जाय।

तीसरा उपाय सारे बदनकी गीली पट्टीका प्रयोग है। इससे शरीरको कभी-कभी बहुत लाभ पहुँचता है और उसकी मल-निष्कासनकी शक्ति बढ़ जाती है। अगर माताको इस उपचारमें हिचक या घबराहट मालूम हो तो इसे करना जरूरी नहीं है। अगर पहली बार इस उपचारसे परिचित किसी व्यक्तिसे मदद ली जाय तो बुद्धिमानीकी बात होगी।

ग—फेफड़ोंके द्वारा—फेफड़ा मल निकालनेवाला तीसरा अंग है।

सांस छोड़नेपर क्लेद और वाष्पीय मल शरीरसे निकल जाता है और अगर सांससे लगातार शुद्ध हवा न मिलती रहे तो निकला हुआ मल फिर फेफड़ोंके अंदर पहुंच जायगा।

रुग्ण बच्चा गरम रखा जाय, पर कमरेकी हवा ताजी हो। इसका मतलब यह है कि खिड़कियां खुली रखी जायं। अगर ठंड अधिक हो तो बैठे रहते समय गरम पानीकी बोतल रखी जायं और बच्चा स्वेटर या कोई आरामदेह कपड़ा पहने रहे। अगर बहुत आवश्यक हो तो कमरेमें आग भी रखी जा सकती है, पर चाहे जैसे हो, हवा शुद्ध रहे। अगर बच्चा बहुत बीमार या अशक्त न हो तो सुबह-शाम खिड़कीके पास जाकर गहरी सांस लेनेका कुछ व्यायाम करे और अगर कमरेमें धूप आती है तो चारपाई इस तरह रखी जाय कि उसको कुछ धूप मिल सके।

घ—पेयोंके द्वारा—रुग्ण बच्चेको खाना तो नहीं चाहिए, पर वह पानी इच्छाभर पी सकता है। सादा पानी सबसे अच्छा होता है और कुछ बच्चे और पेयोंसे इसे अधिक पसंद भी करते हैं। अगर वह सादा पानी पीना न चाहे तो संतरे, सेब, दाख—जैसे किसी फलका रस या तरकारीका कुनकुना या ठंडा रसा भी दिया जा सकता है। पानीमें घोला हुआ कच्ची गाजरका रस बहुत अच्छा पेय है। अगर बर्फ मिलती हो तो बहुतसे बच्चे उसका एक टुकड़ा ग्लासमें रखना पसंद करते हैं। पेयकी मात्रा बच्चेकी इच्छापर निर्भर है। कभी-कभी रुग्ण बच्चे काफी पानी पीते हैं और कभी बहुत कम। रातमें उसके बिस्तरके पास एक ग्लास पानी अवश्य रहे और कमरेमें मंद प्रकाश भी रहे जिसमें बच्चेको प्यास लगनेपर पानी आसानीसे मिल जाय।

विश्राम

वस्तुतः शरीरकी जीवशक्ति ही आरोग्य प्रदान करती है। यहां जिस उपचारका उल्लेख किया गया है उससे शरीरके अंदर निहित आरोग्य-

दायक शक्तिको सहारा भर मिलता है जिसमें वह और अधिक कार्य कर सके। शरीरकी सारी शक्ति आरोग्य-लाभकी इसी प्रक्रियामें लगनी चाहिए। यह भी एक कारण है जिससे बच्चेको बिस्तरपर गरम रखनेकी राय दी जाती है जिसमें उपवास करते समय शरीरमें गरमी लाने या चलने-फिरनेमें उसकी शक्ति खर्च न हो। फिर भी अगर बहुत बीमार न हो तो छोटे बच्चेको उपवास करते समय भी हमेशा बिस्तरपर रखना अच्छा नहीं होता। अगर बच्चा वस्तुतः रुग्ण न होकर साधारण रूपमें अस्वस्थ हो और जीवन तथा उत्साह लहर मार रहा हो तो उपवास करते समय भी उसे बिस्तरपर रखना भूल है। इस हालतमें उसकी प्रवृत्तिके विरुद्ध उसे बिस्तरपर रखनेमें कमरेमें खेलनेकी अपेक्षा नाड़ी-शक्तिका अधिक व्यय होगा।

उपवास करते समय बच्चेको कमरेके अंदर ही रखना चाहिए जिसमें उसे ठंढ लगनेका भय न रहे और वह खाद्य पदार्थको देख या उसकी गंध न पा सके। अगर वह बिस्तरपर पड़ा न हो तो उसे मध्याह्नमें पूरा विश्राम करना चाहिए और शामको जल्द सो जाना चाहिए। बीमारीकी हालतमें प्राकृतिक उपचार करानेवाले बच्चोंको उन बच्चोंसे अधिक नींद आती है जिन्हें अपने रोगके साथ-साथ आहार और दवासे भी निपटना पड़ता है। वे स्वस्थावस्थाकी तरह आरामकी नींद नहीं सो पाते, पर उनमें अधिक सोनेकी प्रवृत्ति रहती है। यह आरोग्य-लाभकी प्रक्रियाका एक महत्त्वपूर्ण अंग है। अगर बच्चा सो रहा हो और उसे कटि-स्नान कराकर या बदन पोंछकर सोनेके लिए तैयार करनेका समय हो तो भी उसे नहीं जगाना चाहिए।

साधारणतः बच्चे शामको कटि-स्नान, एनिमा आदिके लिए तैयार हो जाते हैं और यह कुछ दिन रहते कर लेना अच्छा होता है; क्योंकि देर होनेपर थके हुए बच्चे सो जाया करते हैं। ज्वरग्रस्त बच्चेको गाढ़ी नींद नहीं आती और वह स्वप्नमें प्रलाप भी कर सकता है, इसलिए कमरेमें धीमी रोशनी जलाकर किसी चीजसे ओट कर दी जाय और कोई प्रौढ़

व्यक्ति उसके निकट रहे जो बच्चेके प्रलाप करने लगनेपर उसे शांत कर सके।

पुर्नानिर्माण

ज्वर उतर जानेपर—जिसमें प्रायः तीन दिन और कभी-कभी पांच दिन लग जाते हैं—पाचन-क्रिया पुनः प्रकृत रूपमें चालू हो जाती है। अधिकांश अवस्थाओंमें पहले फलका रस—जल मिलाया हुआ नहीं—देना अच्छा होता है और बादमें संतरा, टमाटर, सेब आदि फल दिये जा सकते हैं। फलाहार कितने दिन चले इसका निश्चय बच्चेके रोगकी अवस्थापर निर्भर होगा। कुछ हालतोंमें दूध या पानी मिला हुआ दूध फलके साथ दिया जा सकता है। इसके बाद आहारमें सूखे फल, हरी तरकारियां, चोकरदार आटेकी रोटी, मक्खन, शहद, आलू आदि रखे जा सकते हैं।

जो बच्चे पहले तरकारी नापसंद करते थे उन्हें अगर उपवासके बाद थोड़ी तरकारी दी जाय तो वे खुशीसे स्वीकार कर लेंगे। इस कालमें इस बातका खयाल रखना चाहिए कि बच्चेके आहारकी मात्रा आवश्य-कतासे अधिक न हो—मात्रा संयत होनेपर भूख तेज रहेगी। कई दिनोंके उपवासके बाद उठकर तत्काल दौड़-धूप भी नहीं करनी चाहिए, क्योंकि भोजन आरंभ करनेपर बड़ी शक्ति मालूम होती है। उसे धीरे-धीरे ही बढ़ने देना चाहिए।

लक्षण दबाये न जायं

रोगका मूल कारण दूर न कर ज्वर या रोगके लक्षणोंको दवाओंके जरिये दबानेका भयंकर परिणाम यह होता है कि मसूरिका आदि रोगोंके बाद तरह-तरहके उपद्रव उठ खड़े होते हैं। आरंभिक रोगके परिणामस्वरूप दृष्टि, हृदय आदिको किसी तरहकी क्षति नहीं पहुंचनी चाहिए। प्राकृतिक पद्धतिके जो सिद्धांत यहां दिये गये हैं उनके अनुसार उपचार होनेपर इस तरहकी कोई बात नहीं होती; क्योंकि रोग अप्रिय

या कष्टकर होते हुए भी शरीरकी प्राकृतिक प्रक्रिया है—स्वास्थ्यका सुधार करनेका प्रकृतिका एक उपाय है। मनुष्य प्रकृतिके इस रहस्यको न समझकर रोगके लक्षणोंको दबानेका प्रयत्न करता है जिससे रोग पीछे दूसरे और प्रायः अधिक भयंकर रूपमें प्रकट होता है।

प्राकृतिक पद्धतिसे बच्चेका उपचार होनेपर उसका स्वास्थ्य मसूरिका आदिके प्रकट होनेके पहलेकी अपेक्षा अधिक अच्छा होगा। उसका शरीर अब ऐसे मकानके समान होगा जो पूरी सफाईके कारण कुछ अव्यवस्थित तो हुआ था, पर उसमेंकी सारी धूल, जाले और मकड़े निकल गये हैं। अब सारी चीज यथास्थान हो गयी हैं और मकान धो-पोंछकर चमका दिया गया है। अगर उपचार उचित ढंगसे हुआ है तो स्वास्थ्य-लाभका समय लंबा नहीं होगा और रोगका प्रत्यावर्तन और उपद्रव आदि होनेकी भी कोई संभावना नहीं रहेगी।

रोगकी पूर्वावस्था और उसका निवारण

अगर हम शतप्रतिशत स्वस्थ हों तो ऐसा कोई कारण नहीं जिससे हम शरद ऋतुमें भी ग्रीष्मकी ही तरह स्वस्थ न रह सकें; पर दुर्भाग्यकी बात तो यह है कि हमारा स्वास्थ्य ऐसा नहीं है और हम मौसम या जीवनयापनके ढंगमें परिवर्तन होते ही रोगके चंगुलमें फंस जाया करते हैं। यही कारण है जिससे आश्विन और चैत्रमें हमेशा रोग व्यापक हो जाया करता है। अगर स्वास्थ्य गिरी हुई अवस्थामें न हो, रोगकी प्रवृत्ति या उसकी पूर्वावस्था पहलेसे प्रस्तुत न हो तो सक्रिय रहनेवाले बच्चोंके पास रोग फटकनेका नाम भी न ले। स्वास्थ्यकी दृष्टिसे इस अवस्थापर ध्यान देना बहुत आवश्यक है और प्राकृतिक पद्धति तो इसी-को रोगका अग्रदूत मानती है।

रोगकी पूर्वावस्थाके लक्षण

रोगकी पूर्वावस्था शरीरकी वह अवस्था है जिसमें उसका कोई भाग इससे अछूता नहीं रहता। इस अवस्थाकी अंतिम परिणति किसी एक अंगमें व्यक्त रोग या किसी संक्रामक रोगके रूपमें हो सकती है, पर आरंभिक रूप उपर्युक्त अवस्था ही है जो सारे शरीरमें व्याप्त रहती है।

रोगके किसी अंगमें प्रकट हो जानेपर दवाओं, सुइयों या प्रचलित चिकित्सा-प्रणालीके अन्य साधनोंके जरिये केवल उस अंगका या उस अंग में व्यक्त लक्षणोंका उपचार करनेमें लग जानेकी गलती करना लोगोंके लिए साधारण-सी बात है, पर जो माता-पिता स्वास्थ्यके रहस्योंसे परिचित हैं वे रोगके होनेकी प्रतीक्षामें नहीं बैठे रहेंगे, बराबर सावधानी-के साथ यह देखते रहेंगे कि बच्चेमें रोगकी पूर्वावस्था प्रस्तुत न होने पाये और उसका स्वास्थ्य इतना अच्छा बना रहे कि वह खूब खेलता-

कूदता रहे, प्रसन्न रहे, अच्छी तरह सोये और उसे अच्छी भूख लगे; पर साधारणतः लोग कोई रोग प्रत्यक्ष न होनेपर बच्चेको स्वस्थ मान लेते हैं और उन्हें रोगकी इस पूर्वावस्थाकी पहचान नहीं हो पाती। ऐसे बच्चेमें साधारणतः ये बातें देखी जा सकती हैं—

१. दांतोंका क्षय,
२. चिड़चिड़ापन,
३. कब्ज,
४. अनिद्रा या प्रगाढ़ निद्राका अभाव,
५. सर्दीकी प्रवृत्ति,
६. आंतमें कृमि,
७. जल्द थकान आना, और
८. सादे, प्राकृतिक आहारसे चिढ़।

क्षयोन्मुख दांत, चिड़चिड़ापन, भोजनसंबंधी परेशानियां आदि रोगकी पूर्वावस्था वर्तमान होनेके ही चिह्न है, पर ये अवस्थाएं ऐसी नहीं हैं कि इनका स्वतंत्र रूपमें उपचार किया जा सके; क्योंकि ये गहराईतक पहुंची हुई खराबीके लक्षणमात्र हैं और औषध, इंजेक्शन आदि उपचारों द्वारा इनपर नियन्त्रण नहीं किया जा सकता। इस पूर्वावस्थाके निवारणका एकमात्र निरापद उपाय है स्वास्थ्यका सुधार जिसके लिए निम्नांकित सात उपायोंका सहारा लेना आवश्यक है।

सुधारके उपाय

१. बच्चेकी समुचित बाढ़ और जीवन-धारणसंबंधी दैनिक क्रियाओंके विचारसे उसके आहारमें सभी आवश्यक तत्त्वोंवाले खाद्य पदार्थ सादे और अविकृत रूपमें पर्याप्त मात्रामें रहें। कुछ पदार्थोंका अपक्वावस्थामें रहना भी आवश्यक है। यह व्यवस्था बिना किसी झमेलेके, इतमीनानके साथ होनी चाहिए।

२. बच्चेके आहारमें कोई निःसत्त्व पदार्थ न रहे; पाकक्रियाद्वारा स्वादिष्ट बनाया हुआ पदार्थ भरसक न रहे और अगर रहे भी तो नाममात्रका।
३. आहार पूर्णतः संतुलित हो, उसमें किसी पदार्थकी मात्रा आवश्यकतासे अधिक न रहे; क्योंकि अच्छा होते हुए भी उसके अधिक होनेपर शरीरमें विकार एकत्र हो जायगा।
४. बच्चेको दिन और रातमें भी पर्याप्त स्वच्छ वायु मिलनेकी उचित व्यवस्था रहे।
५. बच्चेके व्यायाममें कमी न हो और जहांतक संभव हो मैदानमें धरतीमाताके संपर्कमें हो।
६. बच्चा गाढ़ी नींदमें काफी सो सके।
७. बच्चा यह अनुभव करे कि वह सुखी और सुरक्षित है और उसे प्यार प्राप्त है, पर इसका दिखावा न हो और उसके प्रति जो कुछ वर्ताव हो वह उतावलीके साथ न होकर अनुशासित रूपमें हो।

नियमोंका उलंघन

ये सभी नियम केवल व्यवहारबुद्धिपर आधारित हैं और शायद अधिकांश माताएं इनसे सहमत होंगी। वे यह भी खयाल कर सकती हैं कि वे इन नियमोंका पालन भी कर रही हैं, फिर भी वे यही देखती हैं कि उनका बच्चा रोगके चंगुलमें फंस जाता है। हमारा ख्याल है कि बहुत कम माताएं इन नियमोंका पालन करती हैं और अधिकांश तो प्रथम तीन नियमोंका अवश्य ही उल्लंघन करती हैं। प्राकृतिक सिद्धांतोंके आधारपर निकलनेवाली पत्रिकाओंके पाठक भी जो प्राकृतिक आहार चलानेका प्रयत्न करते हैं, उक्त नियमोंके पालनमें पूरे नहीं उतर पायेंगे। अगर इन नियमोंका पालन न हो तो धीरे-धीरे अलक्षित रूपमें निर्बलता आती जायगी और रोगकी पूर्वावस्थाके कुछ लक्षण प्रकट होने लगेंगे। अगर इन नियमोंका ईमानदारीके साथ पालन भी किया जाय तो

आनुवंशिक दोषों और निःसत्त्व धरतीमें उपजाये जानेके कारण खाद्य पदार्थोंकी खराबीका सवाल रह ही जाता है। फिर भी ये त्रुटियां ऐसी नहीं हैं जिनके कारण उपर्युक्त नियमोंके पालनकी आवश्यकतामें किसी तरहकी कमी आये।

आनुवंशिक दोष

अगर आनुवंशिक दोषके कारण बच्चेको पुष्ट शरीर नहीं प्राप्त हुआ है तो माता उपर्युक्त नियमोंके पालनपर उचित ध्यान देकर बच्चेका बहुत कुछ कल्याण कर सकती है, पर यह आशा नहीं कर सकती कि उसका बच्चा आनुवंशिक विशेषताके कारण अच्छा शरीर पानेवाले और स्वास्थ्यकर ढंगसे रहनेवाले बच्चेकी तरह हृष्ट-पुष्ट और स्फूर्तिमय होगा। कभी-कभी माताके सामने यह वैपरीत्य एक बड़ी कठिनाईके रूपमें उपस्थित हो जाता है कि वह तो अपने बच्चेका स्वास्थ्य ठीक रखनेके लिए कोई प्रयत्न उठा नहीं रखती, पर उसे बराबर निराश ही होना पड़ता है और पड़ोसिनका बच्चा, जिसके लिए वह कोई प्रयत्न नहीं करती और बच्चा जो जीमें आता खाता-पीता रहकर उसके बच्चेसे अच्छा नहीं तो कम तंदुरुस्त नहीं रहता। यह बात हतोत्साह करनेवाली प्रतीत होती है, पर इससे उक्त नियमोंकी विशेषतामें कोई अंतर नहीं आता। अगर कोई व्यक्ति निराश माताके कार्योंको गौरसे देखे तो उनमें दोष अवश्य देख पड़ेंगे; साथ ही यह भी हो सकता है कि पड़ोसिनके बच्चेका स्वास्थ्य दरअसल उतना अच्छा न हो जितना होनेका वह अनुमान करती है।

पहले नियममें बच्चेके आहारकी व्यवस्थाके संबंधमें इतमीनानकी आवश्यकता बतलायी गयी है। इसका अभिप्राय यह है कि मातामें बच्चेके आहारके संबंधमें किसी तरहका उतावलापन नहीं होना चाहिए और न इसके संबंधमें माता और पितामें या माता-पिता और घरके बड़े-बूढ़ों या अन्य सदस्योंमें किसी तरहका मतभेद होना चाहिए। प्रायः लोग बच्चोंकी बात लेकर आपसमें झगड़ जाया करते हैं। हालांकि अच्छे-से-अच्छा खाद्य

पदार्थ भी किसी बच्चेके लिए अयुक्त या अस्वास्थ्यकर सिद्ध हो सकता है।

सिद्धांत और व्यवहार

कभी-कभी माताएं इन नियमोंको सिद्धांतरूपमें तो मानती हैं, पर उनके व्यवहारमें यही देखा जाता है कि बच्चेमें किसी कारणसे रोगकी पूर्वावस्था प्रस्तुत होनेपर इस अवस्थाके निवारणके लिए वे इन नियमोंका और कड़ाई और विवेकसे पालन करनेके बजाय औषधोपचारकी ओर दौड़ती हैं। मलमें दो-एक केंचुओंका पाया जाना इसका अच्छा उदाहरण है। वे इन पराश्रयी जीवोंको देखकर बहुत डर जाती हैं और उन्हें नष्ट करनेके लिए झटपट दवा इस्तेमाल करने लगती हैं। इससे होता यह है कि इन पराश्रयी जीवोंको, जो कब्ज या जुकाम—जैसे रोगकी पूर्वावस्थाके कारण आंतोंमें पड़ जाते हैं, नष्ट करनेके लिए जो विषैली दवा दी जाती है वह अनिवार्यतः इतनी तेज होती है कि बच्चेके शरीरको भी विषाक्त कर देती है। केंचुओंकी उपस्थितिसे प्रत्यक्ष होनेवाली रोगकी पूर्वावस्था दूर करके लिए किया जानेवाला यह उपाय बच्चेकी हालत और खराब कर आसानीसे रोग प्रस्तुत कर देता है। अगर इस पूर्वावस्थाका समझदारीके साथ उपचार किया जाय तो औषधोपचारसे प्रस्तुत होनेवाली पाचनकी अस्तव्यस्तता आदि खराबियोंका आसानीसे निवारण हो जाय।

जिस तरह घबड़ाकर द्रव्यौषधोंका सहारा लेना बुरा होता है उसी तरह घबराहटमें उपवासका सहारा लेना भी हानिकारक हो सकता है। माताका प्रयत्न स्थिरता और धीरताके साथ बच्चेका स्वास्थ्य ऐसा बनानेका होना चाहिए जो रोगकी पूर्वावस्थासे उसे मुक्त कर दे।

दवा और टीका

कुछ दिनोंकी वात है कि एक एलोपैथिक डाक्टर मित्र हमसे मिलने आये तो अपने चिकित्सासंवंधी अनुभव सुनाने लगे। हम उनके अपने कुटुंबमें हुए अनुभवोंको सुनानेके लिए ज्यादा उत्सुक थे। उन्होंने बताया कि उनके छोटे वच्चेकी वीमारी उनके या उनके मित्रोंकी समझमें नहीं आ रही थी फिर भी डाक्टरोंने स्टेप्टोमाइसिनका उपयोग किया। वच्चेकी तबीयत कुछ संभली, लेकिन फिर यकायक एक रात खराब होने लगी और उसकी कोई सहायता न की जा सकी। हमारे मित्रका विश्वास था कि वच्चेको पहले जो स्टेप्टोमाइसिनका तीस लाख यूनिट दिया गया था उसीने वच्चेको उस वक्ततक चलाया था। हमारे मित्रके इस विश्वासपर कि स्टेप्टोमाइसिन उनके वच्चेको लाभकारी हुआ हमारी कोई आस्था नहीं हो सकी।

हम किसी भी रोगकी किसी अवस्थामें किसी भी दवाके इस्तेमालके विरोधी हैं। दवाद्वारा लाये जानेवाले नाशसे हम परिचित हैं फिर भी कहीं किसी औषधकी बातपर विचार किया जा सकता है, पर बच्चोंकी चिकित्सामें तो दवाका प्रयोग प्रायः घातक ही होता है। दवा रोगके लक्षणों को दवानेके प्रयत्नमें जीव-शक्ति कम कर देती है और बच्चेके नीरोग होनेकी संभावना कम हो जाती है। यदि शरीरकी अपनेको स्वस्थ करनेकी शक्ति रोग और दवा दोनोंसे निपट पाती है तभी रोगी स्वस्थ हो पाता है। यों लोग इस चीजको समझते हैं, इसलिए छोटे बच्चोंकी चिकित्सा एलोपैथसे न कराकर थोड़ी दवा देने वाले होमियोपैथ या काष्ठ औषधोंका प्रयोग करने वाले वैद्यसे कराते हैं।

बच्चेके रोगी होनेका कारण क्या है?

पहला कारण बच्चेको आवश्यकतासे अधिक खिलाना है।

दूसरा कारण पीनेके लिए बच्चेको पानी न देना। तीसरा कारण है ठोस चीज खानेको देना, जब कि उसका मेदा उसे पचानेके काबिल नहीं होता। उसके बीमार पड़नेका कारण उसे बेजरूरत कपड़ोंसे लादे रखना और तंग तथा बंद कोठरियों या घरोंमें रखना भी है। बच्चेको साफ हवा मिलनी ही चाहिए। साफ हवा बड़ोंकी बनिस्बत बच्चोंके लिए ज्यादा जरूरी है। फिर कसरतकी भी, आदमी बूढ़ा हो या बच्चा, हर उम्रमें जरूरत है।

इतना ध्यान रखा जाय तो बच्चा बीमार न पड़े, पर यदि बच्चा बीमार हो ही जाय तो दवाके बदले बच्चेकी चिकित्सा क्या हो ?

बच्चेको बहुत कपड़ोंसे ढकें नहीं, उसे काफी पानी पिलाएं। पानीमें स्वादके लिए नींबूका रस, थोड़ा शहद या किसी फलका रस मिलाया जा सकता है। बच्चेको पेटके बल सुलाकर यदि उसकी रीढ़पर हलके गरम पानीमें भिगोया मोटा कपड़ा रख दिया जाय तो उसके शरीरकी सारी नाड़ियोंको अपना कार्य करनेके लिए उत्तेजन मिलेगा। बच्चेको रोगके समय उपवास कराते जरा भी न डरें।

बीमारीमें बच्चेकी भूख बंद हो जाती है। उस समय उसे केवल पानी पिलाना आवश्यक है। दो तीन दिनतक बच्चेको पानीपर रखनेमें किसी तरहकी चिंता करनेकी जरूरत नहीं है।

रोग जानेके बाद ही बच्चेको दूध देना चाहिए। बच्चा मांका दूध पीता हो तो बच्चेको मांका ही दूध पिलाना चाहिए अथवा गायका। बकरीका मिल सके तो ज्यादा अच्छा है। बकरीके दूधको लोग कोई महत्त्व नहीं देते। हालां कि वह मांके दूधका स्थान लेनेके लिए अधिक उपयुक्त है। गायके दूधकी अपेक्षा बकरीका दूध अधिक सप्राण होता है, इनकी चिकनाईके कण गायके दूधकी चिकनाईके कणोंकी अपेक्षा छोटे होते हैं, वे गायके दूधकी तरह दूधके ऊपर इकट्ठे होनेके बजाय सारे दूधमें मिले रहते हैं। कहीं-कहीं गांवोंमें बकरीका थन बच्चेके मुंहमें लगा दिया जाता है और बच्चा दूध पी लेता है। यह पद्धति आदर्श है। कुछ

शहरोंमें ग्वाले घर-घर गाय ले जाकर दूध दुह देते हैं, यह दूध भी बच्चोंके लिए उपयोगी है।

यहां बच्चेकी हर हालतकी चिकित्सा बताना संभव नहीं है, पर जितना बताया गया है उसपर बच्चेकी चिकित्साके लिए डाक्टर बुलानेके पहले विचार करने लायक है।

याद रखें जबतक बच्चेके पूरे दांत नहीं आ जाते वह ठोस चीज खाने लायक नहीं होता, दांत आनेपर ही ठोस चीजोंको चबा सकता है; अतः पूरे दांत आनेतक बच्चेको दूध ही देना चाहिए और कोई दूसरी चीज नहीं; पर यदि दूध बच्चेको उबालकर देना पड़े तो बच्चेको थोड़ा-सा संतरेका या किसी फलका रस भी दिया जा सकता है।

टीका घातक क्यों ?

टीका लगाना भयंकर भूल है और यह प्रायः घातक भी होता है। इसके द्वारा नन्हेंसे शरीरमें पहुंचाया जानेवाला पदार्थ रोगग्रस्त गाय, चूहे या घोड़ेके शरीरसे लिया जाता है। प्रकृतिका उद्देश्य प्रत्येक जीवको स्वास्थ्यका पात्र बनाकर रखना है और स्वास्थ्यका अर्थ है स्वच्छता; इस लिए रोगी जानवरके शरीरसे लिया गया विषाक्त पदार्थ शरीरमें प्रविष्ट करना कभी युक्तियुक्त नहीं कहा जा सकता। इसके लाभदायक होनेके प्रमाणमें इसके हिमायती आंकड़े भी पेश कर सकते हैं, पर वे सही न होकर भ्रामक ही होते हैं। जादू-टोनेमें जनता और सरकारी कर्मचारियोंका जिस समय विश्वास था उस समय डायनोंका अस्तित्व भी सिद्ध करना कठिन नहीं था। जनता जिस बातको सत्य मान लेती है उसे आंकड़ोंका सहारा बड़ी आसानीसे दिया जा सकता है।

जीवविज्ञानकी प्रयोगशालाओंमें तैयार किये गये वैक्सीन, लसीका आदिका प्रयोग करनेके लिए लोगोंको धुन सवार हो गयी है और यह मान लिया गया है कि इनमें स्वास्थ्य प्रदान करने या रोगनिवारण करनेकी

बड़ी शक्ति है। बच्चोंमें बहुकालव्यापी या स्पष्ट प्रभाव प्रकट किये बिना ही इन विषोंको निकाल बाहर करनेकी पर्याप्त शक्ति होती है। टीका लगानेपर बच्चोंमें इतना अधिक विष प्रविष्ट हो जाता है कि उन्हें स्वास्थ्यलाभ करनेमें महीनों लग जाते हैं और प्रायः मृत्यु भी हो जाती है। कभी-कभी तो सुई देनेके कुछ ही समय बाद मृत्यु हो जाती है, पर इसपर किसी तरहका दोषारोप नहीं किया जाता। बच्चेके शरीरको विषाक्त करना एक अपराध है; उसे स्वस्थ जीवन व्यतीत करनेका अवसर मिलना चाहिए। जिस बच्चेकी देखभाल समझदारी के साथ होगी वह एक दिन भी अस्वस्थ नहीं होगा और जो बच्चा एक मास, एक सप्ताह या एक दिन भी स्वस्थ रहने योग्य है वह हमेशा स्वस्थ रह सकता है।

पेटका दर्द

छोटे वच्चोंके पेटमें जव-तव दर्द पैदा हो जाता है। नादान वच्चा ताये क्या, माता नहीं जानती और न डाक्टर कुछ समझ पाते हैं। वड़ी परेशानी होती है। यह दर्द कोई नयी वीमारी नहीं है, सभीको होता आया है और इस दर्दके कई घरेलू उपचार भी प्रचलित हैं; पर इस संवंधमें जो नयी खोजें विदेशकी शिशु-हितैषिणी संस्थाओंने की हैं वे हमारी वहनोंके लिए लाभदायक हो सकती हैं, इसीं खयालसे यहां उनका जिक्र किया जा रहा है।

वायुका प्रवेश

पेटका दर्द लगभग तीन महीनेके वच्चेको ही अधिकतर होता है। वड़ा हो जानेपर उसे यह कम सताता है। दर्दके समय वच्चेके पेटमें मरोड़ भी होती है, वह रोने-चिल्लाने लगता है और ज्यों-ज्यों दर्द जाता है वच्चा रोना कम करके सिसकने लगता है और धीरे-धीरे रोना बंद कर देता है। ऐसा दर्द यकायक ही आता है और जानेके बाद फिर करीव-करीव निश्चित समयपर आता है।

यदि वच्चा मांका दूध पीते वक्त हवा अधिक पी जाता है अथवा पेटमें वायु अधिक होती है तो पेटमें दर्द हो जाता है। इस समय मां वच्चेको कंधेसे लगाकर उसकी पीठपर धीरे-धीरे थपथपाये तो वच्चेको डकार आ जाती है और क्रमशः दर्द चला जाता है। इस विधिसे यह साधारण दर्द प्रायः मिनटभरमें गायव हो जाता है।

जो दर्द अधिक देरतक रुकता है और लौट-लौटकर आता है उसका कारण वच्चेकी पाक-प्रणालीमें, खास तौरसे आंतोंमें वायुका पैदा होना है। यह दर्द भी डकार आनेसे कम हो जाता है, पर इससे दर्दका

मूल कारण वायुका बनना—नहीं रुकता। ऐसी दशामें बच्चेको किसी गरम कपड़ेपर या गरम पानीसे भरी और तौलियेमें लपेटी हुई रबरकी थैलीपर पेटके बल लिटाना चाहिए। इससे वायु शीघ्रतासे निकल जायगी। यदि इस समय एक चम्मच गरम पानीमें दो बूंद नींबूका रस निचोड़कर बच्चेको पिलाया जाय तो भी शांति मिलेगी। इस दर्दमें आध पाव गरम पानीका एनिमा देना भी लाभकर सिद्ध होता है। बच्चेके पेटमें दर्द उसको अधिक पिलाने या पिलानेमें जल्दीबाजीसे काम लेनेसे हो जाया करता है, पर नयी बात जो मालूम हुई है वह यह है कि बच्चेकी खुशीमें बाधा पड़नेसे भी यह दर्द पैदा हो जाता है अर्थात् मानसिक व्याघातके कारण बच्चेको यह शारीरिक कष्ट होता है। छोटे बच्चों और बड़े बच्चोंकी मानसिक बनावटमें बड़ा अंतर रहता है। दुर्भाग्यकी बात यह है कि बड़े बच्चोंके संबंधमें जितनी कुछ जानकारी हो चुकी है उससे बहुत कम ही छोटे बच्चोंके संबंधमें हुई है। इसमें जरा भी संदेह नहीं है कि छोटे बच्चोंके मस्तिष्कपर मनोवेगोंका एवं मनोवेगोंपर शारीरिक सुख-:दुखका बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।

परिस्थितियोंका प्रभाव

नवजात शिशु अपनेको नयी परिस्थितिके अनुकूल बनानेमें बड़ी कठिनाइयोंका सामना करता है। उसका मानस, उसकी पाचन-प्रणाली और उसका शरीर तीनों ही बड़ी कोमल दशामें रहते हैं जिनका संतुलन बड़े बच्चोंकी अपेक्षा बहुत आसानीसे और बहुत शीघ्र बिगड़ जाता है। उदाहरणके लिए, बराबर यह देखा जाता है कि तीन महीने या तीन महीनेसे कमके बच्चेको यदि डरा दिया जाय या उसके निकट अधिक शोर किया जाय तो इसका उसपर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। यदि बच्चेका खाट किसी चीजसे टकरा जाय या बच्चेके सिरके निकट कोई चीज जोरसे खट-खटाई जाय तो वह अपने हाथोंको फैलाकर उनसे अपनेको ढकनेकी कोशिश करता है। बड़े लड़कोंमें यह प्रवृत्ति नहीं देखी जाती।

पाचन-प्रणालीके रोगोंके संबंधमें जितने अन्वेषण हुए हैं वे सभीं बताते हैं कि जब पाचन-प्रणाली ठीक रहती हैं तब आदमी खुश रहता है और मानसिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक शांत रहती है । यह स्थिति बच्चों और बड़ोंमें समान होती है, पर विशेष जाननेकी बात यह है कि बच्चे जितने ही छोटे होते हैं इस स्थितिके प्रति उतने ही अधिक संवेदनशील होते हैं । यह सब देखते हुए यह जान पड़ता है कि बच्चेके पेटके दर्दका संभाव्य कारण परिस्थितिद्वारा उसके मनपर पड़नेवाले प्रभावकी प्रतिक्रिया एवं पाचनकी गड़बड़ी है ।

बच्चोंके पेटका दर्द प्रायः दोपहरके बाद शामको या रातको होता है; क्योंकि इस वक्त बच्चा और उसकी मां दोनों ही थके रहते हैं जिससे साधारण कारण भी उन्हें शीघ्रतासे उत्तेजित एवं क्रुद्ध कर देते हैं । यह भी देखा गया है कि जो बच्चे शोरगुलवाली जगहमें रहते हैं उन्हें पेटका दर्द अधिक होता है । शहरके बीच रहनेवालोंके बच्चे शहरसे दूर शांत वातावरणमें रहनेवालोंके बच्चोंकी बनिस्बत पेटके दर्दसे अधिक पीड़ित रहते हैं । यदि बच्चोंको इसके दर्दसे बचाना चाहते हैं तो उन्हें उचित भोजन देना चाहिए, उनके आरामका खयाल रखना चाहिए और देखना चाहिए कि उन्हें शौच समयपर होता है और इन सबके ऊपर उन्हें शांत वातावरणमें रखना चाहिए। शांत वातावरण बच्चोंको अनेक रोगोंसे बचाता है ।

घरमें होनेवाली पडपड़-तड़तड़—जैसे टेलीफोनकी घंटीका बार-बार बजना, घरका दरवाजा खुलवानेके लिए दरवाजेपरकी थप-थप, रेडियोके बेसुरे गीत या लेक्चर, लोगोंका हँसी-ठट्ठा या सिलाईकी मशीनका कर-कर—बड़ोंको बुरी नहीं लगती; क्योंकि वे लोग इन आवाजोंका अर्थ समझते हैं और इस तरहके घरमें होनेवाले अनेक तरहके शब्दोंके विरुद्ध उनके कानोंमें प्रतिरोधक शक्ति पैदा हो गयी होती है, पर बच्चोंकी श्रवण-शक्तिमें ऐसा कोई प्रतिरोध सा पैदा हुआ नहीं होता अतः वे शीघ्रतासे

चौंक उठते हैं। यह प्रतिक्रिया चाहे आपको दिखाई न दे, पर ऐसी प्रतिक्रियाएं मिलकर बच्चेमें पेटका दर्द पैदा करनेमें कारण होती हैं।

दूधका असर

बच्चा जबतक तीन महीनेका नहीं हो जाता जबतक उसकी मांसे उसका बहुत अधिक संबंध रहता है और उसकी मांकी खुशी और नाराजगी, स्वास्थ्य और अस्वास्थ्यका उसपर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। यदि मां क्रुद्ध अथवा चिंतित हो जाय अथवा उसमें नाड़ी-दौर्बल्य पैदा हो जाय तो इससे उसके दूधकी किस्म और मात्रापर ही असर नहीं पड़ता वरन् उसके द्वारा मांके मनकी स्थिति भी बच्चेको मिलती है और वह बच्चेमें पेटका दर्द भी पैदा कर सकता है।

मांको दूध पिलाते वक्त खूब खुश रहना चाहिए और बच्चेको सहज भावसे ऐसी होशियारीसे उठाना चाहिए कि वह किसी तरह चौंक न जाय और उसके आसपास पूर्ण शांत वातावरण रखना चाहिए, क्योंकि शांति बच्चोंको पेट और अन्य सभी तरहके दर्दसे बचाती है।

कोष्ठबद्धता

बच्चोंके लिए यह बहुत बुरा होता है; क्योंकि इसे ठीक तरहसे संभाल ले जाना कुछ मुश्किल होता है। इससे तरह-तरहके शारीरिक विकार तो उत्पन्न होते ही हैं, मानसिक विकार भी पैदा हो जाते हैं जो रोज-रोजकी परेशानीके कारण होते हैं। बहुत-से विकारोंमें तो लोगोंको यह अनुमान नहीं हो पाता कि उनका मूल कारण यह होगा।

रोगका आरम्भ

साधारणतः यह रोग शैशवके आरंभमें ही पैदा हो जाता है और अगर सावधानीके साथ इसकी प्रत्तिवृका निवारण न कर दिया जाय तो यह पूरे शैशवकालमें ही नहीं, युवावस्थामें भी बना रहा भाता है और तरह-तरहके रोग उत्पन्न किया करता है। कहा जाता है कि रातमें या सफर आदिमें वच्चेको तौलियेपर रखना और उसके गंदा हो जानेपर उसे वदलनेमें विलंब करना ही इस रोगकी प्रवृत्ति होनेका कारण होता है; क्योंकि इससे मलमार्गके तंतुओंमें उपदाह पैदा हो जाता है जिससे वच्चे-की आंत साफ नहीं हुआ करती।

वच्चेमें कोष्ठवद्धता होनेका असल कारण होता है स्तनपान करानेवाली माताका बुरा खान-पान तथा वच्चेको खिलाने-पिलानेका गलत तरीका। ये तथा छोटी-मोटी अन्य भूलें आंतमें शिथिलता आने तथा वनी रहनेका कारण हुआ करती हैं। कभी-कभी मां-बाप भूलसे मृदु विरेचकके जरिये पेटका साफ होना कब्जका दूर हो जाना मान लेते हैं। अगर शैशवकालमें इस प्रवृत्तिको दूर करनेकी ओर उचित ध्यान न दिया जाय तो मां-बापकी आंखोंके सामने कम रहनेकी अवस्था होनेके समय-

तक रोग जीर्ण रूपमें परिणत हो जा सकता है जिससे बच्चेका जीवन ही संकटमय हो जायगा।

लक्षण

कोष्ठवद्धताके सारे लक्षणोंका उल्लेख करना बहुत कठिन है। सच तो यह है कि बच्चेका स्वास्थ्य बुरा होनेका सूचक एक भी लक्षण ऐसा नहीं हो सकता जिसकी जड़में आंतका यह विकार न हो। सबसे प्रकट लक्षण तो मलका अवरोध है, पर इसकी बुराई कहांतक पहुंचती है इसका अनुमान केवल इस अवरोधसे नहीं किया जा सकता। मुख्य बात तो रक्त आदिके द्वारा बड़ी आंतोंसे विषका अभिशोषित होना है। इसके साथ अन्य मार्गोंसे मलके विसर्जनमें जो कमी आती है उसे भी शामिल कर लीजिए तब कहीं आप यह अनुमान कर सकते हैं कि रोगोंके निर्माणमें यह विकार कितना सहायक होता है।

जिस बच्चेको कब्ज रहता है—उसमें किसी भी रोगकी—मामूली जुकामसे लेकर यक्ष्मातककी—प्रवृत्ति हो जायगी। इस विकारसे आत्म-विषमयता प्रस्तुत हो जाती है जो रोगका निर्माण करती है। सांस बहुत गंदी हो जाती हैं, जीभपर मैल बैठ जाती है, नींदमें बच्चा दांत भी पीस सकता है, रातमें डरकर चौंक सकता है और कभी-कभी उसे मूर्च्छा भी हो सकती है। वह छोटी-छोटी बातोंपर चिढ़ जाया करेगा। जीर्ण-प्रतिश्यायक्षीणता, दंतक्षय—जैसे भयंकर शारीरिक लक्षण भी इसके कारण प्रकट हो सकते हैं।

दूर करनेका उपाय

अगर इस विकारकी ओर ध्यान देनेमें कुछ दिनोंतक लापरवाही होती रहे तो इसपर काबू पाने और बच्चेके रहन-सहनका तरीका ठीक करनेमें कुछ समय लगेगा। खिलाने-पिलानेकी आदतोंका विश्लेषण कर यह पता

लगानेका प्रयत्न किया जाय कि इस विकारका आरंभ कैसे हुआ। अगर सारे शरीरमें प्रतिश्याय हो तो शरीरकी भीतरी सफाईकी तरफ फौरन ध्यान दिया जाय। इसका फल भी शीघ्र ही देख पड़ने लगेगा। ऐसी हालतमें अच्छा यह होगा कि आंतकी सफाई और शारीरिक क्रियाओंके उद्दीपनके लिए एनिमाका प्रयोग किया जाय और बच्चेको दो-एक दिन पानी या संतरेके रसपर रखनेके बाद तीन-चार दिन सिर्फ फल और सलादपर रखा जाय। यह उपचार किसी तरहकी दवा देनेसे कहीं अच्छा होगा। जबतक बच्चेके मलसे बदबू बिलकुल दूर न हो जाय और मल साफ न निकलने लगे तबतक वह फलों और तरकारियोंपर ही रखा जाय। अन्य अवस्थाओंमें केवल आहार ठीक कर देना काफी होगा। आहारके संबंधमें सादगीका ध्यान बराबर रखा जाय। तरह-तरहकी पाकक्रियाओंद्वारा खाद्य पदार्थोंको जायकेदार बनाकर खानेकी चाट बढ़ानेकी जरूरत नहीं है।

आहार

जिन बच्चोंकी आंतोंमें शैथिल्यकी प्रवृत्ति हो उनको नाश्तेमें ताजा और सूखा फल, दोपहरके भोजनमें चोकरदार आटेकी थोड़ी-सी रोटी, थोड़ा मक्खन, कुछ हरी तरकारी और शामके भोजनमें फल और थोड़ा दूध देना लाभदायक होगा। विशेष रूपसे स्मरण रखनेकी बात यह है कि आहार और दिनचर्या ठीक करनेके अलावा बच्चोंका कब्ज दूर करनेका और कोई उपाय नहीं है। रोगोंके निर्माण, सर्दी, टौंसिल आदिका पीछे होनेवाली परेशानी और समयकी बर्बादीमें कब्जका कितना हाथ रहता है, इसे मां-बाप कभी-कभी नहीं समझ पाते। अगर आंतें ठीक तरहसे काम करती रहें तो किसी तरहकी कोई शिकायत पैदा होनेका कोई कारण ही नहीं रहेगा।

अग्निमांद्य

अग्निमांद्य अर्थात् आहारका परिपाककर पोषण ग्रहण करनेकी अक्षमता, रोगकी दिशामें पहला कदम है। बच्चेके आरंभिक जीवनमें यह बात विशेष रूपसे घटित हुआ करती है। अगर इस कालमें आहारसंबंधी नियमोंका उचित रूपमें पालन न किया जाय तो पाचन-संस्थान इस कदर खराब हो जा सकता है कि मृत्यु भले ही प्रस्तुत न हो, पर हालत आजीवन खराब ही बनी रहेगी।

कारण

अगर बच्चेको प्राकृतिक आहार अर्थात् माताका दूध न मिले और वह तरह-तरहके कृत्रिम खाद्य पदार्थोंपर रखा जाय तो उसकी जीवन-यात्रा कभी खतरोंसे खाली न होगी। बहुधा इसी अवस्थामें अग्निमांद्यका आरंभ होता है और कुछ दिनमें उसके जीर्ण रूपमें परिणत हो जानेपर पाचन-संस्थान उसीका आदी हो जाता है। बहुतसे बच्चे तो जन्म लेनेके दिन ही इसके चंगुलमें फँस जाते हैं; क्योंकि उन्हें पहले ही दिन स्तनपान शुरू करा दिया जाता है; दूसरी भूल है बार-बार दूध पिलाना। अगर बच्चेमें दूध पिलानेके नियत समयोंके बीच कुछ बेचैनी देख पड़ती है तो माता इसे पाचनकी खराबीकी सूचक न मानकर भूखकी सूचक मान लेती है। इस प्रकार आहारकी मात्रा और भी बढ़ जाती है जिसका भार बच्चेके पाचन-संस्थानके लिए असह्य हो जाता है।

लक्षण

यों तो इस विकारमें और भी लक्षण होते हैं, पर बच्चेकी शारीरिक परीक्षा करनेपर तीन लक्षण आमतौरपर देखे जाते हैं (१) पाचनक्रिया

का शिथिल होना और कुछ खाद्यांशका अपक्व अवस्थामें शेष रह जाना (२) जुकामकी प्रवृत्ति, मलमें श्लेष्माकी अधिकता और अन्ननालीकी श्लैष्मिक कलाकी संकुलता, और (३) अगर रोगीकी हालत बुरी हो और उसकी उपेक्षा होती रहे तो अंत्रावरणमें प्रदाह या व्रणकी उत्पत्ति। इन लक्षणोंके साथ बच्चेमें बेचैनी भी रहा करती है। तीव्रास्थामें वमन, उदरामय और ज्वर भी हुआ करता है, मलत्यागमें नियमितता नहीं रहती और कभी-कभी श्लेष्मा अधिक मात्रामें निकलता है। कुछ अवस्थाओंमें अफरा और दर्द भी होता है।

रोगके जीर्णावस्थामें परिणत हो जानेपर लक्षणोंमें और अधिक विभिन्नता देख पड़ती है। बच्चेकी बाढ़ रुक जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है और वजन जितना होना चाहिए उतना नहीं होता; मलत्याग नियमित रूपमें नहीं होता और मलमें बहुत अधिक श्लेष्मा रहता है, जीभपर मैल बैठ जाती है, सांस गंदी हो जाती है और नींद भी ठीक तरहसे नहीं आती; बच्चेको जोरोंकी सर्दी हो जाती है और श्लेष्माके कारण वायु-मार्गमें घड़घड़ाहट रहती है; वह बहुत जल्द चिढ़ जाता है और छोटी-सी बातपर आगबबूला हो जाता है और अगर उसमें बड़ी-दुर्बलता हो तो पासके लोगोंके साथ मेलसे रहना उसके लिए कठिन हो जाता है। इस विकृत पाचनके कारण बहुतसे बच्चोंका स्वभाव खराब हो जाता है, पर लोगोंको असल कारणका पता नहीं रहता।

उपचार

अगर रोगी बहुत कमजोर हो गया हो या उसमें चिड़चिड़ापन आदि लक्षण देख पड़ते हों तो उसे बिस्तरेपर रखिए और रोज शरीरके तापमान-वाले पानीका एनिमा देकर उसकी आंत साफ कर दीजिए। अगर यह काम ठीक तरहसे हो जाय तो आहारका वह अंश जो पचा नहीं है, बाहर निकल आएगा और बच्चेको बहुत आराम मालूम होगा।

इस अवस्थामें अन्ननालीमें सड़नेकी क्रिया चलती रहती है। औषधोपचारक इससे उत्पन्न होनेवाले जीवाणुओंको नष्ट करनेके लिए जीवाणु-नाशक घोलका प्रयोग करते हैं, पर यह हानिकारक होता है। फलके रसका आहार इसका सबसे निरापद उपाय है। अगर प्रोटीन (दूध, दही, दाल, मांस, अंडा), कार्बोज (रोटी, चावल, आलू), चिकनाई और साधारण चीनी देना बंदकर नारंगी, अनन्नास, सेव आदि फलोंका रस दिया जाय तो सड़नेकी क्रियापर काबू होनेके साथ ही पोषणकी प्राप्ति भी होती रहेगी। अंडीका तेल आदि दवाएं देना बुरा होता है। रसाहार चलानेके बाद तीन-चार दिनोंतक केवल ताजा फल दिया जाय और साधारण आहार देनेकी अवस्था आनेपर तीन बातोंका खयाल रखा जाय (१) भोजन साधारण और सादा होनेके साथ ही भरसक सूखा हो (२) तरह-तरह चीज एक साथ न मिलायी जायं और (३) अधिक खानेकी गलती करनेसे कम खानेकी गलती करना अच्छा है।

इस रोगके शिकार हुए बच्चोंका स्वभाव चिड़चिड़ा हो जानेकी संभावना रहती है और वे सब बातोंमें अपनी ही ओर ध्यान देते हैं। इसलिए अगर संभव हो तो उन्हें ऐसे वातावरणमें रखना चाहिए जहां वे अपनी योग्यताका विकास और रचनात्मक कार्योंमें अपनी नाड़ीशक्तिका उपयोग कर सकें, उन्हें अपने पैरोंके बल खड़ा होनेका प्रयत्न करने दिया जाय और अधिक मार्ग-प्रदर्शन न किया जाय।

उदरामय या कैकी प्रवृत्ति

उदरामयसे मां-बापको अन्य रोगोंकी अपेक्षा अधिक परेशानी होती है। यह रोग शैशवकालके बिलकुल शुरूमें भी पैदा हो जा सकता है और बेचारी अनुभवहीन माता घबड़ाकर गलत उपचार करने लगती है। बच्चेके स्तनपान करते समय और अन्य बातोंके बिलकुल ठीक होनेपर भी पालन-पोषणके साधारण ढंगमें थोड़ा भी परिवर्तन हो जानेपर यह रोग हो जाया करता है।

अतिपानका परिणाम

अधिक स्तनपान कराना ही उदरामयका मुख्य कारण होता है। बच्चोंके अधिकांश विकार अतिपानसे ही होते हैं, अल्पपानसे नहीं, जैसा कि साधारणतः लोग विश्वास किया करते हैं। अतिपानका पहला लक्षण है दूधका वमन, पर अफसोसकी बात तो यह है कि माताएं इसका रहस्य ठीक-ठीक नहीं समझ पातीं और बच्चोंको मोटा-ताजा देखनेकी धुनमें इस तरह पागल बनी रहती हैं कि अधिक पिलानेसे बाज आनेका नाम ही नहीं लेतीं। प्रकृति इस अतिपानके खतरेसे बच्चेको बचानेके लिए ही उदरामय पैदा कर अनावश्यक अंश शरीरसे बाहर निकाल दिया करती है।

इसे दवा देकर दबानेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए; आहारकी मात्रा बहुत घटा दी जाय। आंतोंको आराम पहुंचानेका सबसे अच्छा उपाय यह है कि बच्चेको सिर्फ सन्तरेके रसपर चौबीस घंटे रखा जाय। अगर मलमें सड़ान और बदबू ज्यादा हो तो गुनगुने पानीसे एनिमाद्वारा आंतकी धुलाई कर दी जाय और कुछ कालतक बच्चेको उतना ही पिलाया जाय जितना वह धारण कर सके, जरा भी मुंहसे बाहर निकालनेपर मात्रा घटा दी जाय। अगर मां-बाप अच्छी तरह समझ जायें कि साधारण

उदरामय अतिपानके ही कारण होता है तो उसके उपचारमें कोई कठिनाई नहीं होगी।

बड़े बच्चोंको भी अधिक खाने तथा चीनी, श्वेतसार आदि खमीर पैदा करनेवाले पदार्थोंके साथ कच्चा फल या मांस-मछली आदि जल्द सड़ानेवाली चीजें गरमीमें खानेसे उदरामय हो जाया करता है। इनमेंसे कोई एक कारण यह विकार पैदा करनेके लिए काफी होता है। अगर रोगका रूप साधारण हो तो बच्चेका पेट जल्द ही साफ हो जाता है, पर गंभीर होनेपर सुस्ती, ज्वर आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

उपचार

रोगका रूप चाहे जैसा हो, उपचार एक ही प्रकारसे होता हैं। पहला उपाय है खिलाना बंद कर देना। साधारण उदरामयमें तो यही काफी होता है, पर गंभीर अवस्थामें बच्चेकी ताकतका खयाल रखना पड़ेगा कि कहीं वह जवाब न दे दे। उपवास करते समय एनिमा दे-देकर उसकी आंतकी पूरी सफाई कर दी जाय और जहांतक हो सके मानसिक और शारीरिक विश्राम देनेका खयाल रखा जाय। ऐसा न होनेपर उसपर बहुत जोर पड़ेगा जिसका असर रोग जानेके बहुत दिनों बादतक बना रहेगा।

सामान्य लक्षणके रूपमें

बच्चोंके बहुत-से रोगोंमें उदरामय सामान्य लक्षणके रूपमें प्रस्तुत हुआ करता है। दंतप्रस्फुटनके समय होनेवाला तथाकथित उदरामय पाचनकी खराबीका ही परिणाम होता है। रोहिणी, आरक्त ज्वर, शीतला आदि कुछ कठिन रोगोंमें उदरामय कुछ दिनोंतक बना रह सकता है। उस हालतमें इस मल-विसर्जनको अच्छा समझना चाहिए। दवाके जरिये इसे रोकनेका प्रयत्न बहुत बुरा होता है। औषधोपचारक माता-पिताके आग्रहसे प्रायः यह गलती कर बैठते हैं।

भोजनमें सतर्कता

अगर उचित उपचार हो तो इसका रूप शायद ही कभी गंभीर होगा, पर आरोग्योन्मुख अवस्था संभाल ले चलना रोग संभालनेसे अधिक कठिन होता है। आमतौरसे भूल यह होती है कि लोग बच्चेको जल्द ही प्रोटीन और श्वेतसारवाले खाद्य पदार्थ खिलाने लग जाते हैं। आहार-पर कड़ाईसे ध्यान दिया जाय और रोगका जरा भी चिह्न देख पड़े तो खिलाना फौरन बंद कर दिया जाय। गर्मीके दिनोंमें मांस-मछलीसे परहेज किया जाय, श्वेतसारवाला पदार्थ सिर्फ एक वक्त दिया जाय और केला, आलू तथा इस वर्गके अन्य पदार्थ भरसक न दिये जायं और अगर दिये जायं तो बहुत कम। इनके स्थानपर मौसमी फल, हरी तरकारियां, सलाद आदि और दूध भी दे सकते हैं। मट्ठा देना, विशेषकर गर्मीके दिनोंमें, बहुत अच्छा होता है।

सर्दी और खांसी

बच्चेका पालन चाहे जितनी सावधानीसे क्यों न किया जाय, पर वह शैशवकाल बिना सर्दी हुए पार कर जायगा, इसकी संभावना कम ही रहेगी। इस रोगकी उत्पत्तिमें ऋतु-परिवर्तन उतना सहायक नहीं होता, पर मौसममें अचानक होनेवाला अल्पकालिक परिवर्तन सब रोगोंको उत्तेजन दिया करता है।

सर्दी और खांसीमें लक्षणोंको दबानेका प्रयत्न सबसे ज्यादा खतरनाक होता है। अगर इन छोटे विकारोंके उपचारमें समझदारीसे काम न लिया जाय तो जीर्ण रोगोंके लिए, जिनका शरीरमें अज्ञात रूपमें निर्माण होता रहता है, दवाकी तलाश करनेको बाध्य होना पड़ेगा।

दवासे लाभ नहीं

सर्दीकी नपी-तुली परिभाषा बतलाना बहुत कठिन है। कीटाणु-वादियोंका कहना है कि सर्दी कीटाणुके कारण होती है और वे कभी भी आक्रमण कर दे सकते हैं इसलिए सर्दीका निवारण करने या उससे छुटकारा पानेके लिए वायुमार्गके क्षेत्रमें कीटाणुनाशक द्रव्योंका प्रयोग करना आवश्यक है, पर दरअसल ये द्रव्य कुछ सफाई करनेके अलावा और कोई खास लाभ नहीं पहुंचाते और भविष्यमें रोगका निवारण करनेकी दिशामें तो वे जरा भी प्रभावकर नहीं होते।

प्राकृतिक पद्धतिका सिद्धांत

सर्दी और खांसीके संबंधमें प्राकृतिक पद्धतिका सिद्धांत बिलकुल भिन्न है जिसकी सत्यताकी परीक्षा दूसरी बार सर्दी होनेके समय आसानीसे की जा सकती है। रोग शरीरमें एकत्र विषाक्त मलका ही परिणाम होता

है। क्षय और निर्माणकी क्रियामें विषाक्त मलका बनना जारी रहता है और साधारण रूपमें कार्य करते समय शरीर इस मलको वृक्क, त्वचा आदि मलमार्गोंके जरिये बराबर बाहर निकालता रहता है। अगर किसी कारणसे मल-विसर्जनकी यह क्रिया मंद हो जाय तो यह विकार तंतुओंमें एकत्र होने लगता है। अगर यह अवस्था अधिक दिनोंतक बनी रहे और मल-विसर्जनकी क्रिया उद्दीप्त करनेका कोई उपाय न किया जाय तो रोगकी नींव अवश्य पड़ जायगी।

ऐसे विषाक्त मलसे भरे हुए शरीरमें सर्दीका प्रस्तुत होना कोई कठिन बात नहीं है। ठंढ लगने या इस तरहकी और कोई बात होनेपर शरीरकी प्रतिक्रिया सर्दीके रूपमें हो सकती है। अगर सर्दी बहुत मामूली हो तो वायुमार्गके ऊपरी हिस्सेमें सिर्फ उपदाह-जैसा संवेदन जान पड़ेगा, बार-बार खांसी आयेगी और कुछ श्लेष्मा भी निकल सकता है, पर अगर इसका रूप गंभीर हो तो गलेमें श्लेष्माके कारण घड़घड़ाहट मालूम होगी और खांसनेपर काफी श्लेष्मा निकलेगा। अगर नासा-रंध्रमें उपदाह हो तो बहुत छींक आयेगी और नाक भी बहेगी और श्वसनी इससे ग्रस्त हो जायगी और उसमें प्रदाह प्रस्तुत हो जायगा। फेफड़ोंमें फैल जाय तो फुप्फुसप्रदाह (न्यूमोनिया) हो जायगा। कुछ द्रव्यौषधोंके सहारे शरीरके सफाईके इस प्रयत्नको दबा देना संभव है, पर इसका परिणाम बहुत भयंकर हुआ करता है।

अगर बच्चोंकी सर्दी और खांसी इस दृष्टिसे देखी जाय तो उपचार-के लिए अच्छा आधार मिल जाता है। यह फौरन स्पष्ट हो जायगा कि कीटाणुओंका पीछाकर उनको ढूंढ़ निकालनेका प्रयत्न करनेकी आवश्य-कता नहीं है; यह सारी प्रक्रिया हानिकारक विषाक्त पदार्थको निकाल बाहर करनेकी है।

बच्चोंको सर्दी कई तरहसे हुआ करती है। थोड़ी-सी ठंढ लग जानेपर भी ऐसा मालूम होता है कि सर्दी हो गयी है और यह अवस्था कुछ

कालतक बनी भी रह सकती है, पर इससे माता-पिताको घबड़ाकर तथा-कथित आरोग्यदायक औषधोंके प्रयोगकी बात नहीं सोचनी चाहिए; क्योंकि लक्षणोंपर पर्दा डालकर उनको इस धोखेमें डाल दे सकते हैं कि खतरा बिलकुल दूर हो गया।

जाड़ेमें होनेवाली सर्दी

जाड़ेमें आम तौरसे होने वाली सर्दी-खांसीसे प्रायः सभी लोग परिचित हैं। खान-पान आदिमें कोई गड़बड़ी होनेपर इसका आरंभ हुआ करता है और इससे छुटकारा पानेका प्रयत्न करनेपर भी प्रायः वसंतागमतक बनी रहती है। यह एक बंधे हुए रास्तेपर चलती है, कभी-कभी पेटमें कुछ गड़बड़ीं हो जाती है और कुछ खांसी हो सकती हो जो बढ़कर कुकुरखांसी का रूप ग्रहण करती हुई जान पड़ सकती है। माता-पिता औषधोपचारकी सहायता लेते हैं, पर उसका कोई खास प्रभाव नहीं होता और लगभग इसी समय वसंत आकर इसका अंत कर देता है। अगर माता-पिता सर्दी और खांसीको हौवा बनने देना नहीं चाहते तो उन्हें इसे समझनेके लिए प्राकृतिक पद्धतिका दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। इस हालतमें वे इस समस्याका आसानीसे हल करनेमें तो समर्थ होंगे ही, इसे दवाके जरिये दबाकर जीर्णरूपमें परिणत करनेकी गलतीसे भी बच जायंगे।

इस दृष्टिसे देखनेपर सर्दी और खांसीकी भयंकरता भी गायब हो जाती है। इसके लिए मां-बापको बच्चेके रोजकी आदतोंका विश्लेषण कर सर्दीके कारणका ही नहीं, उसे दूर करनेके उपायका भी पता लगाना पड़ेगा। यह उपाय शरीरकी क्रियाओंको उत्तेजितकर उसका प्रयत्न आगे बढ़ानेकी दिशामें उतना न होकर उसने जो कार्य आरंभ किया है उसमें पड़नेवाली बाधाओंको दूर करनेका होना चाहिए।

उपचार

शरीरको स्वयं अपना प्रयत्न करनेके लिए छोड़ देना चाहिए। इसके

लिए पहला काम तो यह होना चाहिए कि भोजन बिलकुल बंद रहे; क्योंकि इस समय शरीर खाद्य पदार्थोंको पचाने और उनसे पोषण ग्रहण करनेकी अवस्थामें नहीं होता। इस समय भोजनसे अरुचि भी हो जाती है जो भोजन बंद रखनेका प्रकृतिका संकेत है।

सर्दी और खांसीसे ग्रस्त बच्चेको सफाईकी जरूरत होती है जो सिर्फ उपवाससे पूरी हो सकती है। चौबीस या छत्तीस घंटेका उपवास सर्दीका जोर खत्म करनेमें जितना सहायक होगा उतना और कोई उपाय नहीं हो सकता। इस तरहके उपवाससे किसी तरहके खतरेकी आशंका करना भूल है, उलटे इससे बच्चेको शारीरिक और मानसिक दृष्टिसे बड़ा लाभ होता है। इससे शरीर अपनी सफाई करनेकी क्रिया ठीक तरहसे चलानेकी स्थितिमें हो जाता है और इसके साथ ही बच्चेमें आत्मानुशासनका भाव भी आ जाता है जो और किसी उपायसे उतना नहीं आता। अगर परिस्थितियां अनुकूल हों तो बच्चेके लिए उपवास करना कठिन नहीं होगा। प्रौढ़ोंमें जो भय और परेशानीकी स्थिति होती है वही बच्चेका संतुलन अस्तव्यस्त कर देती है।

उपवासके बाद बच्चेको कुछ दिन सिर्फ फल और सलादपर रखा जाय। इन पदार्थोंसे उसे शरीरके लिए आवश्यक वानस्पतिक लवण तथा अन्य तत्त्व मिल जायंगे। इसके बाद हालतमें ज्यों-ज्यों सुधार होता जाय पूर्णान्न और तरकारियां बढ़ाते जाइए और फिर दूधसे बने पदार्थ शामिलकर उसे प्राकृतिक पद्धतिद्वारा अनुमोदित आहारका रूप दे दीजिए जिसमें बच्चेके शरीरमें रोगोंका निरोध करनेकी शक्ति काफी बढ़ जाय।

कुकुरखांसी

कुकुरखांसी बहुत कष्ट देनेवाला रोग है और अगर इसके उपसर्गोंपर ध्यान दिया जाय तो यह बहुत खतरनाक भी है। इसके कारणोंके संबंधमें बहुत मतभेद देख पड़ता है। औषधोपचारकोंके अनुसार यह रोग संक्रामक होता है और जाड़ेके दिनोंमें तो यह ऋतुव्यापक भी हो जाता है। पहली और दूसरी बार दांत निकलनेके बीचकी अवस्थावाले बच्चे इसके अधिक शिकार होते हैं। दुधमुंहे बच्चे भी इसके अपवाद नहीं हैं। यह भी कहा जाता है कि यह रोग लड़कोंसे अधिक लड़कियोंको होता है। कभी-कभी जवानों और बूढ़ोंको भी हो जाता है और बूढ़ोंमें तो इसका रूप बहुत भयंकर होता है। ऐसा जान पड़ता है कि जुकामकी हालतमें ही यह संक्रामक होता है। एक बार हो जानेपर यह दूसरी बार शायद ही होता है।

लक्षण

इस रोगके लक्षणोंकी पहचान बड़ी आसानीसे हो जाती है। यह लंबे अरसेतक बना रहता है इसलिए इस प्रकारके अन्य रोगोंसे इसका अन्तर करना कठिन नहीं होता। लगातार जोरदार छोटी-छोटी खांसियां आती हैं और उनमें सांसका उतना योग नहीं होता। चेहरा तमतमा जाता है, काफी श्लेष्मा निकलता है और कभी-कभी वमन भी हो जाता है। इसमें बच्चेको बड़ा कष्ट होता है और वह डरकर सहायताके लिए माता-पिताको पकड़ लेता है।

औषधोपचारकोंको इसके उपचारमें किसी प्रकारकी जरा भी सफलता नहीं मिलती। प्रत्येक औषधका कुछ-न-कुछ असर होता ही है। अगर वह अच्छा नहीं होता तो उसका बुरा होना निश्चित है। इसलिए रुग्ण

शरीरमें अज्ञात प्रभाव उत्पन्न करनेवाले द्रव्योंको प्रविष्ट करना नासमझी-का परिचायक है।

रोगका कारण

औषधोंका प्रयोग न करनेवाली मर्दनोपचार आदि पद्धतियां भी इस रोगके कारण और उपचारके संबंधमें एकमत नहीं हैं। वे कीटाणु-सिद्धांत नहीं मानतीं और शरीरके सुधारपर ही ध्यान देती हैं और अंगरचना आदि दोषोंको दूरकर रोग अच्छा करनेका प्रयत्न करती हैं, पर आहार आदि स्वास्थ्यसंबंधी बातोंकी ओर उनका ध्यान नहीं जाता जिससे रोग बहुत कुछ बना ही रह जाता है। रोगके मूल कारणका पता लगानेके लिए हमें उन नियमोंकी ओर ध्यान देना होगा जिनकेद्वारा मानव-जीवनका संचालन होता है। कोई भी रोग इन नियमोंका अपवाद नहीं हो सकता। इसलिए मानना पड़ता है कि रोगका आरंभ होनेके पहले प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन अवश्य होता रहा है।

रोगोंकी एकतावाले सिद्धांतका अभीतक किसीने खंडन नहीं किया है। इस रोगके कारणपर विचार करते समय इसे ध्यानमें रखना आवश्यक है। अस्वस्थता शरीरके अंदर आयी हुई खराबीका व्यक्त रूप है जो गलत रहन-सहन आदिका परिणाम है। इसलिए कुकुरखांसी किसी विशेष कीटाणुकी सृष्टि नहीं है जो कहीं बाहरसे आकर निरीह बच्चेमें जम गयी है। अगर सावधानीके साथ शारीरिक अवस्थाका परीक्षण किया जाय तो इस बातकी सत्यता प्रमाणित हो जायगी। ऐसे बच्चेमें नाड़ी-संस्थानकी अस्तव्यस्तताके साथ-साथ पाचन-संस्थानकी खराबी अवश्य देख पड़ेगी, शायद सारी अन्नप्रणालीमें जुकाम मौजूद होगा। जांच-पड़तालसे यह भी पता चल जायगा कि उसमें उपयुक्त आहारके साथ अति-भोजनका भी दोष है। उसकी सांस भी गंदी होगी और कब्जकी भी प्रवृत्ति हो सकती है। इन बातोंके साथ ही नाड़ी-शक्तिपर भी ज्यादा जोर पड़ना संभव है।

उपचार

रोगका चिह्न प्रकट होते ही इसपर ध्यान देना आवश्यक है कि बच्चे को आरामके साथ बिस्तर पर रखा जाय और उसका शरीर, विशेषकर पैर, गर्म रखनेका प्रयत्न किया जाय और नाड़ी संस्थान शांत करनेके लिए उसका बदन ढीला कराया जाय। शरीर और मनके विश्रामपर सबसे अधिक ध्यान दिया जाय। सच्चे आरामके लिए शरीरको विश्राम मिलना आवश्यक है जिसका अर्थ केवल पेशियोंका विश्राम नहीं बल्कि पाचन-संस्थानका भी विश्राम है। जबतक रोगीको आराम न मालूम हो उससे उपवास कराया जाय और सच तो यह है कि भीतर-बाहर पूरी सफाई हुए बिना आराम मालूम भी नहीं हो सकता। रोग कड़ा होनेपर सुबह-शाम दोनों वक्त एनिमा दिया जाय और गरम पानीसे नहलाया जाय जिससे शिथिलीकरणमें अच्छी सहायता मिलेगी।

दिनमें एक बार पीठ, विशेषकर मेरुदंडकी मालिश भी की जाय जिसमें गरदन और पीठकी नाड़ियों और पेशियोंमें ढीलापन आ जाय, ठुड्डी और कंठिकास्थि ऊपर उठा-उठाकर ढीली की जाय और पेट सावधानीके साथ मलकर आंतें उत्तेजित की जायं।

अगर बच्चेका इस प्रकार उपचार किया जाय तो उपसर्गोंके पैदा होनेका खतरा बहुत कम हो जायगा, उसका स्वास्थ्य पहलेसे अच्छा हो जायगा और निरोध-शक्ति काफी बढ़ जायगी। रोगका दौरा समाप्त होनेपर आहारपर विशेष ध्यान दिया जाय। पूरी-मिठाई या इस तरहकी अन्य चीजें उसे न दी जायं और जो चीज मुश्किलसे पचनेवाली हों उनसे पूरा-पूरा परहेज किया जाय।

श्वसनी-प्रदाह

कमजोर वक्षःस्थलवाले बच्चोंके शरीरके इस भागमें रोग होनेकी विशेष संभावना रहती है और उसपर मौसमके परिवर्तनका भी बहुत जल्द असर होता है। ऐसे बच्चोंका लाड़-प्यार साधारण बच्चोंकी अपेक्षा अधिक किया जाता है और इस शारीरिक दोषके कारण लोग उन्हें तरह-तरहकी पेटेंट चीजें खिलाते रहते हैं। अगर उनके रहन-सहनके ढंगमें थोड़ा भी परिवर्तन हो जाय तो वे इस रोगकी चपेटमें आ जाते हैं।

प्रतिश्यायकी अवस्था

श्वास-संस्थानमें फुफ्फुस, फुफ्फुसावरण, नासिका, श्वासनलिकाका ऊर्ध्वभाग, कंठनली, श्वसनी आदि अंग सम्मिलित हैं जिनके जरिये वायु अंदर प्रवेश करती है। ये सभी वायुमार्ग एक ही तरहके बने हैं और इन सबमें श्लैष्मिक कलाका अस्तर रहता है। इस कलासे हमेशा श्लेष्मा निकलता रहता है जो हवाके साथ आनेवाले धूलिकणोंको ग्रहण कर लेता है। कभी-कभी रोगकी हालतमें इस श्लेष्माका रूप बदल जाता है और उसकी मात्रा भी बहुत बढ़ जाती है जिससे वह नलिकाओंमें ठसाठस भर जाता है। हम इसे ही प्रतिश्याय कहते हैं। अगर श्लेष्माके विसर्जनका क्षेत्र ऊपरका हिस्सा होता है तो हम इसे सर्दी कहते हैं। कभी-कभी तो श्लेष्माके निकल जानेपर यह भाग जल्द ही साधारण अवस्थामें पहुंच जाता है, पर कभी-कभी यह अवस्था जीर्णरूपमें परिणत होकर प्रदाह उत्पन्न कर देती है।

रोगका आरंभ

शैशवकालमें विसर्जनकी क्रिया शीघ्रतासे फैल जाती है और इसपर शरीरकी बड़ी प्रबल प्रतिक्रिया होती है। यही कारण है जिससे सर्दी होनेपर श्वसनी-प्रदाह बहुत जल्द हो जाया करता है और अगर उपचारमें

शीघ्रता और सावधानी न की जाय तो अंग कमजोर पड़कर इस रोगका क्षेत्र बन जाता है। इस प्रकारके बच्चेमें ठंढ, वर्षा आदिका प्रतिरोध करनेकी शक्ति नहीं होती और ठंढ लग जानेपर फौरन इस रोगका आक्रमण हो जाता है। इस रहस्यको न समझ सकनेके कारण लोग इसे ही रोगका कारण मान लिया करते हैं। अब देखना यह है कि शरीर, परिस्थितियों या पोषणमें वह कौन-सा दोष है जिसके कारण शरीर मौसमके साथ मेल बैठानेमें समर्थ नहीं हो पाता। केवल स्टेथोस्कोप लगाने और जीभ देखनेसे काम नहीं चलेगा, शरीरके ढांचेकी सावधानीके साथ जांच करनेपर कुछ पता चल सकता है ऐसे बच्चेके मेरुदंड़, कंठास्थि और ऊपरकी पसलियोंमें कुछ असाधारणता देख पड़ती है जो रोगोत्पत्तिका कारण होनेके साथ ही आरोग्यलाभमें बाधक भी होती है।

परिस्थितियोंपर भी विचार करना आवश्यक है। ऐसे बच्चोंमें चिड़-चिड़ापन होनेसे उसकी नाड़ीशक्ति सहयोग नहीं करती और नींद गाढ़ी नहीं होती जिससे उसकी शारीरिक स्थिति अच्छी नहीं होती, उसके दिमागपर अध्ययन का बहुत जोर पड़ता है और वह विद्यालयमें और बच्चेके साथ नहीं चल पाता।

इसके साथ ही पोषणका भी विश्लेषण किया जाय। प्रायः यही देखा जाता है कि असंतुलित आहार बच्चेको अस्वस्थताके गड्ढेसे निकलने नहीं देता। ऐसे बच्चेको चिकनाई, चीनी और श्वेतसार अधिक परिमाणमें देना आवश्यक माना जाता है, वानस्पतिक लवणों और विटामिनोंकी प्राप्तिपर ध्यान नहीं दिया जाता जो रोगके आक्रमणका एक प्रमुख कारण हुआ करता है।

लक्षण

सीनेमें सर्दी लगनेपर तापमान बढ़ता जाकर १०१ अंशके आसपास पहुंच जाता है। खांसी पहले सूखी रहती है, पर दो-एक दिन बाद तर

हो जाती है। श्लेष्माका रंग पीला जाता है जो रोगके रूपका परिचायक होता है। रोगकी गंभीरता उसके क्षेत्रपर निर्भर है। साधारण अवस्थामें वह कंठनलीके निचले भाग और वड़ी श्वसनियोंमें रहता है, पर नीचे बढ़नेपर उसकी गंभीरता बढ़ जाती है और आरोग्यलाभ कठिन हो जाता है।

तीव्र और जीर्ण रूप

अगर बच्चा काफी मजबूत हो और सावधानीके साथ उपचार किया जाय तो तीव्र श्वसनी-प्रदाह लगभग एक सप्ताहमें चला जाता है और रोगका कोई चिह्न शेष नहीं रहता, पर अगर कुछ कसर रह जाय तो बार-बार दौरा होते रहनेकी संभावना बनी रहेगी और तब रोग जीर्ण रूप ग्रहण कर लेगा जिसमें तंतुओंका रूप बदल जायगा और श्लेष्मा बहुत गाढ़ा और कुछ-कुछ लाल हो जायगा; पेशियोंके तंतुओंमें भी परिवर्तन हो जायेगा जिससे स्वरनलिकाका लचीलापन जाता रहेगा और उसकी क्रिया भी ठीक तरहसे नहीं होगी; श्वास-संस्थानका शरीरके अन्य भागोंसे संबंध नहीं बना रहेगा, शरीरको पूरा ओपजन नहीं मिलेगा, सांस लंबी हो जायगी, सीनेकी शकल बदल जायगी और बच्चेकी हालत बहुत खराब हो जायगी।

उपचार

एलोपैथिक चिकित्सामें वास्तविक स्थितिपर ध्यान न देकर केवल लक्षणोंको दूर करनेका प्रयत्न किया जाता है। आक्रमणका जोर समाप्त हो जानेपर शरीरको दृढ़ करनेका प्रयत्न नहीं किया जाता जिसमें फिर रोगका आक्रमण होनेकी संभावना न रहे। द्रव्यौषधें धड़ल्लेके साथ दी जाती हैं जो लाभसे अधिक हानि ही किया करती हैं। प्राकृतिक चिकित्सामें ऐसी कोई चीज नहीं दी जाती जो शरीरके लिए विजातीय हो। रोगका रूप तीव्र हो तो बच्चा साफ और हवादार कमरेमें बिस्तरपर रखा जाय और ज्वर रहते समय रोज एनिमा देकर उसकी आंत साफ कर दी जाय। अगर बुखार तेज—लगभग १०२ अंश हो तो

सीनेपर केवल ठंढी और अगर कम हो तो बारी-बारीसे गर्म और ठंढी पट्टी पंद्रह-बीस मिनटतक दिनमें दो-तीन बार लगायी जाय। नाड़ी-केंद्रोंको उद्दीप्त करनेके लिए रीढ़के ऊपरी हिस्सेपर भी ये पट्टियां लगायी जा सकती हैं। बुखारकी हालतमें पानी और फलके रसके अलावा और कुछ भी न दिया जाय। अगर बुखार उतर जानेपर भी खांसी बनी रहे तो बच्चा केवल फलपर रखा जाय। रोग जल्द दूर करनेका प्रयत्न न कर धीरे-धीरे ही सुधार होने दिया जाय।

बच्चेके पूर्णतः नीरोग हो जानेपर खान-पानका पहला तरीका बदल दिया जाय और फेफड़ोंकी शक्ति बढ़ानेके लिए कुछ श्वाससंबंधी व्यायाम रोज कराये जायं। बच्चेको एकाएक बाहर ले जाना ठीक नहीं, मौसम अच्छा होनेपर ही वह बाहर ले जाया जाय और हवामें रहनेका धीरे-धीरे अभ्यास किया जाय। शरीरकी निरोध-शक्ति बढ़ानेके लिए उसे धूप-स्नान भी कराया जाय।

अगर रोग जीर्णावस्थामें पहुंच चुका है तो उपचारमें अधिक समय लगेगा। कोई कष्ट या ज्वर न देख पड़े तो भी वह यों ही न छोड़ दिया जाय। अगर श्लेष्माके साथ खांसी हो तो बच्चेको बिस्तर पर ही रखकर उपर्युक्त उपचार चलाया जाय। आरंभमें कुछ दिनोंतक सिर्फ फलका रस दिया जाय और उसके बाद आठ-दस दिनोंतक बच्चा केवल फलोंपर रखा जाय और फिर उसे एक वक्त तो चोकरदार आटेकी रोटी या दलिया और उबली हुई हरी तरकारी दी जाय और एक वक्त फल या हरी तरकारी और सलाद। भविष्यमें श्वेतसार और चीनी बहुत कम देनेका नियम रखा जाय।

अगर इन उपायोंको ठीक तरहसे चलाया जाय तो बच्चेका स्वास्थ्य बहुत जल्द ठीक हो जायगा, पर अगर रोग बना रहा, दवाएं दी जाती रहीं तो तंतुओंमें परिवर्तन होना जारी रहेगा जिससे आरोग्य लाभ होना असंभव हो जायगा। आरंभमें उपचार करनेमें जितना समय नष्ट होगा उसी हिसाबसे कठिनाई बढ़ जायगी।

सामान्य चर्मरोग

चर्मरोग इतने प्रकारके होते है कि अगर सबपर विचार किया जाय तो एक स्वतंत्र पुस्तक बन जायगी, इसलिए यहां केवल ऐसे रोगोंपर विचार किया जायगा जो आम तौरसे बच्चोंको हो जाया करते हैं।

दुग्ध-पीड़िका आदि

अगर बच्चेमें त्वचाके मार्गसे विकार निकलनेकी प्रवृत्ति हो तो केवल स्तनपान करनेपर भी कुछ चर्मविकार प्रकट हो जा सकते हैं और अगर देखभालमें लापरवाही की जाय तो वे अधिक दिनोंतक बने रहकर परेशानीके कारण हो जा सकते हैं। सिरके चर्मकी शुष्कता, दुग्धपीड़िका आदि इसी प्रकारके रोग हैं। इन विकारोंके प्रकट होनेपर पाचनकी अस्तव्यस्ततापर ध्यान देना आवश्यक है अन्यथा ये तरह-तरहके उपसर्ग प्रस्तुत कर दे सकते है। इन्हें दबानेवाले लेपोंका, जो जस्ते, सीसे आदिके योगसे तैयार किये जाते हैं प्रयोग कभी न किया जाय। प्रायः इन विकारोंके साथ जुकामकी प्रवृत्ति भी रहती है इसलिए उपचारमें इसका खयाल रखना आवश्यक है। दूधकी मात्रा घटाकर सिर्फ इतनी रखी जाय जिससे बच्चेका काम किसी तरह चलता रहे और एकबार दूध न पिलाकर दूधके बदले आधा या पौन छटांक संतरेका रस दिया जाय। आंत साफ रखनेके लिए एनिमाका प्रयोग किया जाय और साथ ही रोगवाले क्षेत्रकी सफाईका भी खयाल रखाजाय। अगर सिरमें रूसी पड़ गयी हो तो रातमें जैतून या तिलका तेल लगाकर ढक दिया जाय और सुबह बारीक कंघीसे उसे साफकर दिया जाय। विकार स्थानीय होनेका खयालकर शरीरके साधारण स्वास्थ्यके सुधारका उपाय न करना ठीक न होगा।

विसर्प

बढ़ते हुए बच्चोंमें पाचनकी खराबीसे होनेवाले विकार आमतौरसे देखे जाते हैं, हालांकि बहुतसे लोग यह बात माननेके लिए तैयार नहीं होते। विसर्प इसी प्रकारका एक रोग है जिसमें चमड़ेकी ऊपरी परतमें प्रदाह होता है और कुछ विकार भी निकल सकता है। विकार निकलनेकी क्रिया चंद दिनोंमें भी समाप्त हो सकती है और छह-सात सप्ताह भी चल सकती है। इसमें प्रायः खुजली पैदा हो जाती है जो बहुत कष्ट देती है। इसके बढ़ जानेपर वृक्कोंमें खराबी आ जाती और ज्वर भी हो जाता है। सारांश यह कि आत्मविषमयताके सभी लक्षण प्रकट जाते हैं।

शीत-पित्त

शैशवमें शीत-पित्त नामका एक विकार होता है जिसकी प्रवृत्ति वात-प्रधान और अधिक संवेदनशील त्वचावाले बच्चोंमें विशेषरूपसे होती है। इसमें लाल-लाल ददोरे हो जाते हैं, उनमें बड़ी खुजली होती है और खुजलाने पर ददोरे बढ़ते जाते हैं। तीव्रावस्थामें यह जिस शीघ्रतासे आता है उसी शीघ्रतासे चला भी जाता है। इसका जीर्ण रूप भी होता है जो वर्षों टिकता है। इस रोगका कारण भी पाचनकी खराबी ही है। बच्चेको गर्म पानीसे नहलाकर बिस्तरपर लिटा दीजिए। अगर इससे खुजली शांत न हो तो अधिक खुजलीवाले क्षेत्रपर और आवश्यक हो तो सारे बदनपर गीली पट्टीका प्रयोग कीजिए। इससे जल्द आराम मालूम होगा। अगर रोगका रूप उग्र हो तो पाचनसंबंधी खराबीपर ध्यान दीजिए। बच्चा कुछ दिन सिर्फ फलपर रखा जाय और उसके बाद फल और दूध दिया जाय।

पामा आदि

पामा (उकवत), विचर्चिका तथा इस प्रकारके अन्य कठिन रोगोंमें उपचारका वही आधारभूत सिद्धांत काममें लाया जाता है। तथाकथित

निर्दोष लेपों आदिके प्रयोगसे कोई लाभ नहीं होगा और अगर रोग दबानेवाली दवाओंका प्रयोग किया गया तो यह शरीरके लिए बहुत हानिकारक सिद्ध होगा। विकारग्रस्त शरीरके पोषण और विसर्जनसंबंधी दोषोंको दूर करनेके लिए बच्चेकी शारीरिक और मानसिक अवस्थाका पूर्णरूपसे परीक्षण और विश्लेषण करना भी आवश्यक होगा।

अगर उपचार प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार किया जाय तो विकार जल्द ही चला जायगा और इसके साथ ही चर्मविकार पुनः होनेकी संभावना भी बहुत कम रहेगी।

चेचक

इस देशमें हर साल विशेषकर वसंतागमके समय बहुतसे लोग चेचकसे आक्रांत होते और कई, समझदारीके साथ उपचार न होनेके कारण, मौतके शिकार हो जाया करते हैं। इससे बचनेके लिए लोग प्रायः टीका लिया करते हैं, पर यह चाल अच्छी नहीं है। बहुतसे लोगोंकी यह धारणा है कि टीका लेनेसे चेचकके आक्रमणका भय जाता रहता है, लेकिन वे जानते नहीं कि वास्तवमें टीका क्या है और इससे शरीरमें कितनी खराबियाँ उत्पन्न होती हैं। गायके शरीरपर चेचक होती है, उसका मवाद लिया जाता है और वही मवाद टीकेके जरिये मनुष्यके खूनमें डाल दिया जाता है। यह विकार मनुष्यके रक्तमें पहुंचकर जहर फैलाता है; पर यह घृणित क्रिया इसलिए की जाती है कि इससे चेचकका बचाव होगा। यह कौन-सी बुद्धिमानी है कि दुश्मनके डरसे मकान ही बरबाद कर दिया जाय ?

टीका लेनेपर भी लोग मरते हैं ?

आजकल प्रायः देखा जाता है कि जिन लोगोंने टीका लिया है वे भी चेचकसे बीमार होते और मरते हैं। इस बातकी पुष्टि करते हुए, अमेरिकाके डा० लिंडल्हार एम० डी० ने, जो पीछे प्राकृतिक चिकित्सक हो गये थे, अपनी पुस्तकमें लिखा है कि सन् १९२७ ई० में जर्मनीमें चेचक इतने जोरसे फैली थी कि एक लाख बीस हजार आदमी बीमार हुए जिनमें एक लाख मरे। इनमेंसे लगभग ९६ हजार टीका ले चुके थे, केवल चार हजार बिना टीकेके थे। अट्ठारह वर्षकी लगातार खोजके बाद जर्मनीके प्रधान मंत्री प्रिंस बिस्मार्कने अपने अधीन समस्त राज्योंको लिख भेजा कि त्वचाके रोगोंका देशमें फैलानेका कारण टीका है, पर चेचकका कारण और चिकित्सा अभीतक नहीं मालूम हुई है। टीकेसे जो सफलताकी आशा की जाती थी, धोखा साबित हुई। इसी पत्रके आधारपर जर्मन राज्यमें टीका या तो

बंद कर दिया गया या कानून ढीला कर दिया गया। कहनेका तात्पर्य यह है कि टीका लगवानेके बाद भी आदमी खतरेसे खाली नहीं रहता बल्कि चेचकके अलावा और भी रोगोंका शिकार उसे बनना पड़ता है। दुर्भाग्य है कि हिंदुस्तानियोंके वास्ते टीका न लगवाना ही जुर्म है।

क्या चेचक छूतकी बीमारी है ?

लोगोंका कहना है कि चेचक छूतकी बीमारी है, इसीसे जहां फैलती है वहां बहुत ज्यादा लोगोंको इसका शिकार होना पड़ता है। यह छूतकी बीमारी जरूर है, पर लगती उसीको है जिसके शरीरमें पहलेसे सामान तैयार रहता है। शुद्ध खूनवाले शरीरमें यह छूत नहीं लगती। इसको सिद्ध करनेके लिए कि चेचकसे यों ही छूत नहीं लगती डा० लिंडल्हार ने अपनी पुस्तकमें एक आश्चर्यजनक घटना लिखी है। अमेरिकाके विस्कांसिन प्रांतमें डा० रोडरमंड एक डाक्टर थे। उन्होंने अपने कुछ डाक्टर भाइयोंके सामने अपने सारे शरीरमें विस्फोटक मवाद मल लिया। कानूनके मुताबिक वे पकड़कर जेलमें बंद किये गये, लेकिन उन्हें चेचकक रोग न हुआ। इस तरहके और भी कई उदाहरण हैं।

बचनेका उपाय प्राकृतिक जीवन

सभी रोगोंका एकमात्र कारण शरीरमें विजातीय द्रव्यका इकट्ठा होना और उसका बाहर न निकलना है। जबतक मनुष्यके शरीरमें विजातीय द्रव्य मौजूद है तबतक वह नीरोग नहीं कहा जा सकता। स्वाभाविक जीवन व्यतीत करनेवालोंको चेचकका भय बिलकुल नहीं रहता। जो पहलेसे अनियमित हैं वे भी अगर दो-तीन दिनोंका उपवास करके (या बिना उपवासके ही) दस-बारह दिन फलाहारकर और इन दिनों बराबर एनिमा लें तो शरीर शुद्ध हो जाता है और रोगका भय जाता रहता है।

किसी भी रोगका लक्षण देखते ही मनुष्यको समझना चाहिए कि हमारे शरीरमें विजातीय द्रव्य इकट्ठा हो गया है और रोगके रूपमें शरीर

उसको बाहर करना चाहता है। इसमें पथ्य और दवासे बाधा नहीं डालनी चाहिए। शरीरको सहायता पहुंचानेके लिए उपवास, पेटकी सफाई और आराम करना चाहिए।

चेचककी चिकित्सा

चेचकके दाने निकलनेके पहले मनुष्यको बुखार आता है, इसलिए तुरंत बुखारका इलाज शुरू कर देना चाहिए। इसके लिए उपवासके साथ सुबह-शाम एनिमा लेनेसे दो-तीन दिनोंमें बुखार जाता रहता है। इस तरह आरंभमें ही उपचार शुरू कर देनेसे बहुत अंशमें चेचकका भय जाता रहता है; लेकिन अगर चेचकके दानोंका निकलना शुरू हो जाय तो घबराना नहीं चाहिए। उपवासके बाद रोगीको दूधमें पानी मिलाकर और उसे गर्मकर, बिना चीनी-मिश्रीके, दिनमें दो-तीन बार पिलाइए और दिनमें एक बार एनिमाका प्रयोग जारी रखिए। गर्म दूध और पानी पिलानेसे दाने पूरी तरह निकल आवेंगे, साथ ही एनिमासे पेट साफ रहेगा और तब किसी प्रकारका खतरा नहीं होगा। दाने निकल जानेके बाद दूध बंद करके केवल फलोंका रस या तरकारीका रस थोड़ा-थोड़ा पानीमें मिलाकर पिलाना चाहिए। पानी रोगीको काफी मिले इसका ध्यान रखा जाय, शरीर-को गीले कपड़े या रुईके फाहेसे पोंछकर रोज साफ किया जाय और रोज एनिमा देना जारी रखा जाय। जब दाने बिल्कुल सूख जायें तभी उसे साधारण भोजनपर लाया जाय। भोजन देते समय इस बातका ध्यान रहे कि रोगी जो भोजन करता है वह आसानीसे पचा सकता है या नहीं। इस तरहसे वह धीरे-धीरे कुछ ही दिनोंमें एकदम स्वस्थ हो जायगा। इस चिकित्साकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि चेचकके दानेके दाग नहीं रहते।

रोगीको साफ और सूखे तथा हवादार स्थानमें रखिए। भोजनका संयम जरूर रहे—पहले दूध और पानी, दानोंके उभड़ जाने पर सिर्फ फल और तरकारीका रस और दानोंके अच्छी तरह सूख जानेपर फल और अन्न दीजिए। नमक तभी दीजिए जब दाने बिलकुल ठीक हो जायं।

चुन्ना या कृमि रोग

बच्चोंकी आंतोंमें अक्सर कीड़े पड़ जाते हैं जो मुश्किलसे जाते हैं। इस रोगके पीड़ित बच्चेका स्वास्थ्य साधारणतः खराब रहता है। उसे अच्छी नींद नहीं आती स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, वह पीला पड़ जाता है और उसकी आंखोंके नीचेकी जगह काली हो जाती है। ऐसे बच्चेकी भूख राक्षसी हो जाती है, वह दिनभर खाते ही रहना चाहता है, पर बना रहता है दुबला और खाकर कभी संतुष्ट नहीं होता। इस रोगसे पीड़ित बच्चेको किसी हदतक कब्ज और जुकाम रहता है। लोग प्रायः नहीं मानते, पर ये ही दोनों कृमि रोगके मूल कारण हैं, उसके लक्षण नहीं हैं।

कृमि और केंचुए

प्रायः बहुतसे बच्चोंके मलके साथ छोटे-छोटे कीड़े निकलते हैं। इन्हें चुन्ना कहते हैं। इनकी लंबाई चौथाईसे लेकर आध इंच तक होती है। जब ये चुन्ने गुदाद्वारपर पहुंचते हैं तो वहां बड़ी खाज उठती और गुदा चुनचुनाती है। शायद इसी कारण इन कीड़ोंका नाम चुन्ना पड़ गया है और उन्हींके नामपर रोगका नामकरण हुआ है। अगर बच्चेके शौच जानेके बाद ही पाखाना ध्यानसे देखा जाय तो उसमें ये चलते-फिरते दिखाई देते हैं। दूसरी तरहके कीड़े, जो बच्चोंके पेटसे निकलते हैं, केंचुएकी शकलके होते हैं। अंतर इतना ही होता है कि गीली मिट्टीमें केंचुएकी अपेक्षा ये अधिक पीले होते हैं, पर ये मिट्टीमें मिलनेवाले केंचुए नहीं होते। ये कुछ अलग ही चीज हैं और भी कई तरहके कीड़े, बच्चोंके पेटसे निकलते हैं, लेकिन हमारे देशमें अन्य कीड़ोंसे कम ही बच्चे पीड़ित रहते हैं।

बच्चोंके पेटसे ये चुन्ने कभी-कभी दो-चार ही निकलते हैं, पर धीरे-

धीरे ये बड़ी संख्यामें और नित्य निकलने लगते हैं। ये चुन्ने बच्चोंको बहुत परेशान करते हैं अतः मांको कभी बच्चेके मलके साथ एक भी चुन्ना दिखाई दे तो उसे तुरत सजग हो जाना चाहिए, पर यदि बच्चेका स्वास्थ्य किसी तरहसे न्यून दिखाई दे और उसे कब्ज या जलन न हो तो ऐसी अवस्थामें कभी एकाध चुन्ना बच्चेके मलमें दिखाई दे जाय तो समझना चाहिए कि कोई अंडा किसी तरह पेटमें पहुंच गया है जहां उसके फूटनेकी वजहसे वह बाहर निकल आया है। ऐसी अवस्थामें कोई चिंता नहीं करनी चाहिए।

रोगका कारण

(१) गंदे हाथोंको भोजनमें लगाना या अंगुलियोंको मुंहमें डालना।

(२) नाकमें अंगुली डालनेके बाद मुंहमें डालना।

(३) किसी खानेकी चीजको जमीनपर गिरनेके बाद उसे बच्चेको खिलाना।

(४) चुन्नेके अंडोंका गुदाद्वारपर निकल आना और उन्हें बच्चेका अपने हाथोंसे मुंहमें पहुंचाना।

(५) चुन्ने रोगसे पीड़ित बच्चेके तौलिये या जांघियेका इस्तेमाल करना।

(६) कब्जके कारण आंतोंमें मलका अधिक समयतक रुकना।

(७) आंवकी बीमारी जो चुन्नेके पनपनेमें सहायक होती है।

(८) पूरी तरह पेटके साफ न होनेपर मलका गुदाद्वारके निकट आकर रुका रहना जो चुन्नोंके पनपनेमें सहायक होता है।

चिकित्सा

कुछ डाक्टरोंका कहना है कि चुन्ने बच्चेके पेटमें अंडे नहीं देते, जो चुन्ने पेटसे निकलते हैं उनके अंडे मुंहके जरिये पेटमें गये हुए होते हैं; कभी-कभी इतने अधिक चुन्ने बच्चेके पेटसे निकलते हैं और हफ्तों निकलते जाते हैं उन्हें देखते हुए इस मतकी सत्यता समझमें नहीं आती।

इस रोगको दूर करनेके लिए डाक्टर पहले ऐसी कोई कड़ी दवा देते हैं जिससे पेटमेंके चुन्ने और उनके अंडे मर जायं और फिर उन्हें बाहर निकालनेके लिए कोई तेज दस्तावर दवा देते हैं। ऐसी चिकित्सासे विशेष लाभ नहीं होता, उल्टे कभी-कभी इससे बच्चेकी पाचन-प्रणाली बिगड़ जाती है।

प्राकृतिक चिकित्सामें इस रोगको दूर करनेके लिए बच्चेकी आंतोंको चुन्नों और उनके अंडोंसे मुक्त और सशक्त करनेकी कोशिश की जाती है ताकि बच्चेका कब्ज और जुकाम चला जाय जो इस रोगका मुख्य कारण है। आंतें सशक्त और उनका कार्य स्वाभाविक बनाया जाता है जिससे वे अंडोंको देरतक रुकने नहीं देतीं और उनसे चुन्ने पैदा होनेके पहले ही उन्हें बाहर निकाल देती हैं। साथ ही सफाईका पूरा ध्यान रखा जाता है जिसमें और अंडे पेटमें न पहुंच जायं।

जब मांको बच्चेके मलमें चुन्ने होनेकी शंका हो जाय तब उसे उसकी उपस्थितिका निश्चय करनेके लिए मलको कई दिनोंतक अच्छी तरह देखना चाहिए। यदि कई चुन्ने एक साथ दिखाई दें तो इस रोगकी चिकित्सा अनिवार्य हो जाती है। कई अवस्थाओंमें अच्छी तरह देखा जाय तो सोते हुए बच्चेके गुदाद्वारपर चुन्ने दिखाई दे जाते हैं।

इस रोगसे पूर्णतः मुक्ति दिलानेके लिए बच्चेकी जमकर चिकित्सा करनी होती है, पर बच्चेको जलन और खाजसे मुक्त करनेके लिए तथा उसे ठीक तरह नींद आये इसके लिए कभी-कभी ऐसी चिकित्साकी जरूरत होती है जो बच्चेके इस कष्टको शीघ्र शांत कर सके।

कामचलाऊ चिकित्सा

कामचलाऊ चिकित्सा मैं उसे कहता हूं जो बच्चेको उसके गुदाद्वार-पर उठती हुई खाजसे मुक्त कर दे। इसके लिए बच्चेकी उम्रके अनुसार पाव-आध सेर गुनगुने गरम पानीमें रुपये-आठ आनेभर नमक मिलानेके

बाद उसका एनिमा देकर बच्चेका पेट साफ कर देना चाहिए और फिर पिचकारीसे दो-तीन तोला नारियलका तेल गुदाद्वारके जरिये आंतोंमें पहुंचा देना चाहिए। तेल बच्चेकी आंतकी झिल्लीकी जलनको शांत करेगा और चुन्नोंके जो अंडे-बच्चे आंतमें चिपके रहकर एनिमाके पानीके साथ न निकले होंगे उन्हें छुड़ा देगा। अगर किसी कारणसे एनिमा देना कठिन हो तो बच्चेके घुटने पेटके पास रखकर उसे पेटके बल सुला देना चाहिए और उसे शीघ्र शौच होनेके समयकी तरह जोर लगानेको कहना चाहिए। इस रीतिसे भी कीड़ियां मलद्वारसे निकलती हैं। इन कीड़ियोंको कागज-की बत्ती बनाकर उसकी नोकसे हटाते जाना चाहिए और वे जब काफी संख्यामें निकल चुकें तो पिचकारीसे तेल गुदाद्वारकी मार्फत आंतोंमें पहुंचा देना चाहिए।

रोगमुक्तिके लिए पूर्ण चिकित्सा

चुन्ने रोगसे बच्चेको पूर्णतः मुक्ति दिलानेके लिए यह आवश्यक है कि मां उसके रोगकी उपेक्षा न करे और इस रोगकी चिकित्सा जमकर करे।

चिकित्साके श्रीगणेशके तौरपर बच्चेको आराम करने देना चाहिए और एक या दो दिनतक उसे पानीके सिवा कुछ भी खाने-पीनेको नहीं देना चाहिए। अगर बच्चा न माने या मांका जी न माने तो बच्चेको पानीमें फल या तरकारियोंका रस मिलाकर दिया जा सकता है। पानी या रस मिला हुआ पानी बच्चा जितनी बार मांगे और जितना मांगे देना चाहिए। अक्सर बच्चे इस समय घंटे-घंटेपर यह पानी पीते हैं, पर बच्चा इतनी जल्दी पानी न पीना चाहे तो उसके साथ जबरदस्ती नहीं करनी चाहिए। इस उपवासमें पहले बताये हुए पानीका एनिमा भी सवेरे-शाम देना चाहिए। एनिमा इस चिकित्साका एक विशेष अंग है; क्योंकि एनिमाके पानीके साथ चुन्ने, श्लेष्मा और मल बाहर निकल आते हैं जिसमें चुन्नेके अंडे बच्चे निवास करते हैं। एनिमाके बाद बच्चेको

यदि जाड़ा मालूम हो तो गुनगुने गरम पानीसे और गरमी हो तो ताजे पानीसे अच्छी तरह नहलाना चाहिए और नहलानेके बाद उसका बदन पोंछकर उसका सारा बदन हाथोंसे धीरे-धीरे रगड़ना चाहिए। बच्चेका बिछावन रोज धूपमें डालना चाहिए। जिस कमरेमें बच्चा सोये उसकी खिड़कियां खुली रखनी चाहिए जिसमें उसे शुद्ध हवा बराबर मिलती रहे।

अन्य तीव्र रोगोंमें किसी भी बच्चेको उपवासमें कोई कठिनाई नहीं होती, उसे भूख ही नहीं लगती कि वह कुछ खाना चाहे। पर इस रोगमें अवस्था कुछ विपरीत ही रहती है; अतः बच्चेको उपवासकी आवश्यकता अच्छी तरह समझा देनी चाहिए और उसे प्रोत्साहन देकर उपवास कराना चाहिए और जरूरत पड़े तो उसे, उसके मलमें चलते चुन्ने दिखाकर उसे उपवासकी आवश्यकताकी प्रतीति करानी चाहिए। बच्चा आराम और उपवास आसानीसे कर सके इसके लिए उससे भोजनकी गंध और भोजन दूर रखना चाहिए तथा उसका दिल बहलानेको उसे कुछ नये खिलौने देने चाहिए और उसे कुछ किस्से-कहानियां सुनानी चाहिए।

उपवास

अगर बच्चा इतना बड़ा है और वह चलना सीख गया है तो उससे एक दिनके बजाय दो दिनका उपवास कराना अच्छा है। चाहे बच्चा एक दिनका उपवास करे या दो दिनका, उसे आगे चार-पांच दिनोंतक केवल फल-तरकारियां ही खिलानी चाहिए। तरकारियां कच्ची (टमाटर, गाजर, खीरा, ककड़ी, प्याज आदि) और पकी दोनों प्रकारकी दी जा सकती हैं। इस वक्त भी बच्चेको सादा पानी या फल- तरकारियोंका रस मिला पानी यथेष्ट मात्रामें पिलानेका ध्यान रखना चाहिए। इस समय उसे दूध, रोटी, भात-दाल, मिठाई या और कोई चीज किसी हालतमें भी न देनी चाहिए। इस फलाहारमें भी बच्चेको रोज शामको एनिमा दे देना चाहिए। फल-तरकारी लेनेपर बच्चेको अक्सर सबेरे अपने-आप ही शौच

होता है। इसके लिए उसे प्रेरित करना चाहिए, पर यदि न हो तो कोई हर्ज नहीं है।

फलाहारके दूसरे दिन बच्चेको दोपहरके भोजनमें तरकारियोंके साथ कुछ भुने हुए आलू देने चाहिए और नाश्तेमें पानीमें भिगोयी हुई कुछ किशमिश। इस समय बच्चेको कच्ची तरकारियां देना बहुत लाभदायक है। जो तरकारियां कच्ची खिलायी जायं उन्हें अच्छी तरह साफ करना चाहिए और अंतमें नमक मिले पानीसे धोकर साफ पानीमें धो लेना चाहिए।

एक दिन बच्चेको यह भोजन देनेके बाद दूसरे दिन उसे दोपहर और शामके भोजनमें फल-तरकारी और फुलका या दलिया देना चाहिए। रोटी देने लगनेपर एनिमाकी जरूरत नहीं होती और बच्चेके लिए दिन-भर खाटपर लेटे रहना भी जरूरी नहीं होता। अब वह घूम-फिर सकता है। फलाहारके समय भी यह आवश्यक नहीं है कि बच्चा दिनभर खाटपर ही लेटा रहे पर इसमें संदेह नहीं कि इस समय जितना आराम किया जाय उतना ही अच्छा है।

अगले पंद्रह दिन

रोटी शुरू करनेके बाद पंद्रह दिनोंतक दाल या दूध बच्चेको नहीं देना चाहिए। उसका भोजन साधारणतया इस प्रकार हो सकता है:

सवेरे उठनेपर—किसी तरकारीको पकाकर निकाले गये रसमें थोड़ा नींबूका रस मिलाकर।

नाश्ता—कोई फल और साथमें थोड़ी किशमिश या अंजीर।

दोपहरका भोजन—कुछ कच्ची और पकी तरकारियां, चोकरसमेत आटेका फुलका या दलिया और इच्छा हो तो दो-चार आलू।

तीन बजे—कोई फल या फलका रस।

शामको—दोपहरवाला भोजन। बच्चा चाहे तो रातको सोते समय तरकारीका रस पी सकता है।

चिकित्साके आरंभसे ही बच्चेके पेड़ूपर, यदि बच्चा मान सके तो, ठंडे पानीमें भिगोकर हल्का-सा निचोड़ा तौलिया या ठंडे पानीसे सानकर लप्सी-सी बनायी हुई मिट्टी करीब आध इंच मोटी आध घंटे या बीस मिनटके लिए रखनी चाहिए।

ऊपरके कार्यक्रमसे बच्चेकी आंतें सबल और कीड़ियोंसे मुक्त हो जायंगी, पर कभी-कभी जब रोग गहरी जड़ पकड़े होता है यह कार्यक्रम महीने-डेढ़-महीने बाद फिर दुहराना पड़ता है। सारा कार्यक्रम ही ऐसा है कि बच्चेका स्वास्थ्य इससे बहुत उन्नत हो जाता है और आगे वह रोगोंसे बचता है।

चिकित्सा आरंभ करनेके दूसरे दिनसे ही, पर चिकित्सा समझकर नहीं, बच्चेको थोड़ा-सा लहसुनका रस भी देने लग जाना चाहिए। लहसुन बहुत बड़ा कृमिनाशक है। यह आंतोंकी कृमियों और चुन्नोंसे मुक्त करता एवं उन्हें सशक्त बनाता है।

ग्रंथि-वृद्धि

प्रायः सभी बच्चोंको कभी-न-कभी ग्रंथि-वृद्धिका विकार हुआ करता है। बच्चोंके इस विकारका अभिप्राय उन लसीका-ग्रंथियोंकी वृद्धिसे है जो गलेमें दोनों ओर रहती हैं और बढ़नेपर उंगलियोंके सहारे मालूम की जा सकती हैं। कभी-कभी तो उनका आकार इतना बढ़जाता है कि वे आसानीसे देखी जा सकती हैं और गर्दनके तंतुओंकी आकृति विकृत कर दे सकती हैं।

लसीका-ग्रंथि

स्वास्थ्यकी साधारण अवस्थामें ये ग्रंथियां बहुत छोटी होती हैं और उनका बढ़ना इस बातका सूचक होता है कि शरीरकी हालत ठीक नहीं है। शरीरमें दो प्रकारके तरल पदार्थों—रक्त और लसीका—का प्रवाह जारी रहता है। लसीका-संस्थानमें इन ग्रंथियोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। शरीरके कोषाणुओंके साथ रक्तका सम्पर्क नहीं होता, लसीका ही उनमें पोषण पहुंचाती और उनका मल अपने साथ वहा ले जाती है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कोषाणुओंकी क्रियासे जो विषाक्त मल पैदा होता है यह सीधे रक्तमें न पहुंचकर लसीका-संस्थानमें पहुंचता है। शरीरके सारे तंतुओंमें छोटी-छोटी ग्रंथियां रहती हैं जो लसीका-संस्थानका महत्त्व-पूर्ण अंग है। लसीकामें पहुंचनेपर मल पहले इन्हीं ग्रंथियोंमें पहुंचता है जहां निर्विषीकरणकी क्रिया चलती रहती है। जिसके परिणामस्वरूप लसीकाके पुनः रक्तमें पहुंचनेके समयतक मलकी विषमयता बहुत कुछ दूर हो चुकी रहती है।

वृद्धि क्यों ?

साधारण अवस्थामें कार्य करते समय इन ग्रंथियोंपर जोर नहीं पड़ता, पर विषाक्त मलके बहुत अधिक मात्रामें पहुंचनेपर उनपर बहुत अधिक

भार पड़ जाता है जिससे वे बढ़ जाया करती है, ग्रंथियोंके बढ़नेके समय सर्दी हो सकती है और अगर इस समय गलेकी इन ग्रंथियोंको उंगलीसे दबाकर देखा जाय तो उनका आकार बढ़ा हुआ मालूम होगा।

रोगके संक्रमणसे भी ग्रंथियोंकी वृद्धि हुआ करती है। अगर कोई घाव भर न रहा हो या किसी कीड़ेका दंश दूषित हो जाय तो इनके कारण भी ग्रंथियां बढ़ जा सकती हैं; क्योंकि उन्हें विकृत तन्तुओंको साफ करना पड़ेगा जिससे उनका कार्यभार बहुत बढ़ जायगा। आम तौरसे वृद्धिका क्षेत्र गला ही होता है। बार-बार होनेवाली सर्दी और प्रतिश्यायसे ग्रस्त नाक, मुंह और गलेकी श्लैष्मिक कला और विकृत उपजिह्विका लसीकामें अधिक विषाक्त मल पहुंचाया करती हैं जो स्वभावतः इस क्षेत्रकी ग्रंथियोंकी वृद्धिका कारण होता है।

रोगका बढ़ा हुआ रूप

अगर इन ग्रंथियोंपर बराबर जोर पड़ता रहे और वृद्धि कम करनेका कोई उपाय न किया जाय तो और तरहकी खराबियां भी पैदा जायंगी। पहले तंतुओंकी सूजन होगी और पीछे, अगर जोर पड़ना जारी रहे तो, पूय बनने लगेगा और इस प्रकार व्रणशोथ प्रस्तुत हो जायगा। इसका अंतिम परिणाम यह होगा कि ग्रंथि बाहरकी ओरसे फट जायगी या यहां बने हुए पूयका भार कम करनेके लिए सर्जनसे चीरा लगवाना पड़ेगा। इससे पाठकोंको यह बात स्पष्ट रूपमें मालूम हो जायगी कि इन ग्रंथियोंके आप-ही-आप बढ़नेकी बात बिलकुल गलत है। इनकी यह अवस्था शरीरके विभिन्न भागोंमें विकार एकत्र होनेका ही सूचन करती है और अगर शरीर गिरी हुई अवस्थामें या विषाक्त न हो तो ग्रंथियोंकी यह अवस्था कभी प्रस्तुत नहीं होगी।

उपचार

इस अवस्थामें बच्चेकी आदतों और स्वास्थ्यपर तत्काल ध्यान देना

आवश्यक है। अगर ग्रंथियां बहुत बढ़ गयी हों और पूय बननेकी संभावना हो तो अवस्थामें सुधार न होनेतक बच्चेको बिस्तरपर रखकर विश्राम करने दिया जाय और उसे यथासंभव गर्म रखा जाय और ग्रंथियां बहुत बढ़ गयी हों तो गर्म पानीमें निचोड़े हुए कपड़ेसे दस-दस मिनटके लिए सुबह, दोपहर, शामको उन्हें सेंका जाय। कपड़ा उतना ही गर्म रहे जितना बच्चा देरतक रखने देकर गर्मी तंतुओंतक पहुंचने दे। अगर उपचार समयसे आरंभ कर दिया जाय तो व्रणशोथ होनेकी संभावना नहीं रहेगी। जबतक स्थान पूयसे बिलकुल रिक्त न हो जाय तबतक सेंक जारी रहे।

बिस्तरेपर रहकर विश्राम करते समय बच्चेको केवल फलका रस दिया जाय। अगर कोई मुलायम फल मिले तो वह लुगदी—जैसा बनाकर दिया जा सकता है। इसके बाद वह कुछ उबली हुई तरकारियां और फिर केला छोड़कर और फल खा सकता है। कुछ दिनोंके बाद फलके साथ दूध। फिर सलाद और उबली हुई तरकारियां और तब चोकरदार आटेकी रोटी और आलू भी दिये जायं। ग्रंथियोंकी हालतमें सुधार हो जानेपर आहार बढ़ाया जाय और रहन-सहनका ढंग प्राकृतिक रखा जाय, पर अधिक खिलानेकी उतावली न की जाय।

इस रोगसे ग्रस्त बच्चेकी आंत शिथिल होती है। विश्रामकालमें आंतकी पूरी सफाई कर देनेका प्रयत्न होना चाहिए। इसके लिए एक सप्ताह रोज एनिमा देना आवश्यक होगा। इससे आंत तो साफ हो ही जायगी, रक्त और लसीकाकी विषमयता भी बहुत कुछ जाती रहेगी।

बच्चेके नाड़ी संस्थानपर पड़नेवाला जोर कम कर दिया जाय। अगर घर करनेके लिए दिया जानेवाला काम भारी हो, विद्यालयमें अच्छा न रहनेका भय हो, दिमागपर जोर पड़ता हो या चिड़चिड़ापन हो तो बच्चेके घर और विद्यालयके जीवनका विश्लेषण कर नाड़ीशक्ति का अपव्यय रोकनेका प्रयत्न किया जाय।

उपजिह्वकाओंका शोथ

जबतक उपजिह्विकाएं (टॉंसिल) बढ़ती या सूजती रहेंगी तबतक सर्जनोंको उन्हें काटकर निकाल देनेका बहाना मिलता ही रहेगा, पर अगर माता-पिताको इन ग्रंथियोंके कार्य और उपयोगिताका ज्ञान हो जाय तो वे सर्जनकी सहायता लेनेका खयाल भी नहीं करेंगे। शरीरके विभिन्न अंगों और उनकी क्रियाओंका ज्ञान न होनेका ही यह परिणाम होता है कि वे ऐसे विचारोंको भी अंगीकार कर लेते हैं जो वस्तुतः भ्रांत होते हैं और जो सिद्धांत वस्तुतः उपचारका आधार है उसका परीक्षण भी नहीं करते।

ग्रंथियां निरर्थक नहीं

आम तौरसे लोग इन ग्रंथियोंको निरर्थक, रोगोंकी जननी और वात आदि जीर्ण रोगोंको सहायता देनेवाली मानते हैं। अगर रक्त आदिके संचरणके संबंधमें लोगोंको कुछ अधिक ज्ञान होता तो शायद इन ग्रंथियोंका इतना बलिदान न होता। लोग प्रायः जानते हैं कि धमनियां शरीरके विभिन्न भागोंमें रक्तका वहन करती हैं और वे यह भी जानते कि शिराएं उसे लौटाकर हृदयके पास ले जाती हैं, पर लसीकाधारों-के संबंधमें वे बहुत कम जानते हैं जो कोषाणुओंसे निकला हुआ मल एकत्र कर रक्तमें पहुंचानेका महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं। अगर यह मल एकत्रकर बाहर न निकाला जाता तो विषाक्त होनेके कारण शरीरको बहुत अधिक क्षति पहुंचाता। लसीकाधारोंके जरिये मल लसीका-ग्रंथियोंमें पहुंचता है जो लसीकासंस्थानमें जहां-तहां बनी हुई हैं। शरीरके संघटनमें इन ग्रंथियोंका महत्त्वपूर्ण स्थान है। इनके अंदर कुछ आश्चर्यजनक क्रियाएं चलती रहती हैं जिनके परिणामस्वरूप एकत्र किया हुआ विष शरीरको कोई क्षति पहुंचानेकी स्थितिमें नहीं रह जाता।

साधारण अवस्थाके शरीरमें विषकी मात्रा इतनी अधिक नहीं होती कि इन ग्रंथियोंको अधिक श्रम करना पड़े, पर शरीरमें विषाक्त मल अधिक एकत्र हो जानेपर विषको शिथिल करनेवाले इन कारखानोंको निरंतर अत्यधिक श्रम करना पड़ता है और अवस्था अधिक खराब हो तो वे रुग्ण हो जा सकती हैं।

[वृद्धि विकारकी सूचक

उपजिह्विकाएं, जो जिह्वामूलके पार्श्वमें स्थित हैं, ऐसी ही ग्रंथियां हैं। ये शरीरको अंदरसे विषाक्त होनेसे बचाती और विषको रक्तमें पहुंचानेके पहले शिथिल कर देती हैं। बढ़ी हुई और रुग्ण उपजिह्विकाएं शरीरके अधिक विषाक्त होनेकी ही सूचक हैं इसलिए सर्जनसे उन्हें निकलवा देना ऐसा कार्य है जिसका स्वास्थ्यके सुधारमें कोई महत्त्व नहीं हो सकता। इन अंगोंको वात, उन्माद, हृद्रोग तथा अन्य विकारोंका कारण मानना तो रोगोंकी उत्पत्ति और स्वरूपके संबंधमें अपने अज्ञानका ही परिचय देना है।

औषधशास्त्रियोंका कहना है कि कीटाणुओंके संक्रमणसे ये ग्रंथियां विकारग्रस्त हुआ करती हैं, पर प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार यह विकार रक्तमें अधिक मल, विशेषकर प्रोटीनजन्य मलके एकत्र होनेका बुरा प्रभाव है। तीव्र रूपमें यह बच्चोंका आम रोग है और स्कूल जानेकी उम्रवाले बच्चे इसके खास तौरसे शिकार हुआ करते हैं। इसके व्यापक रूप धारण करनेपर विद्यालयों और समाजके बहुसंख्यक लोग, यहांतक कि बूढ़े भी इसकी चपेटमें आ जाते हैं।

रोगके लक्षण

गलेकी परीक्षा करनेपर यह स्पष्ट रूपमें देख पड़ेगा कि उपजिह्विकाएं बढ़ गयी हैं, श्लैष्मिककला प्रदाहयुक्त है, श्लैष्मिक कोशोंसे मलाई—जैसी कोई चीज निकल रही है, जीभपर मैलकी गाढ़ी तह जमी हुई है,

सांस बहुत गंदी है और बच्चा प्रायः नाकके बजाय मुंहसे सांस लेता है। स्मरण रखनेकी खास बात तो यह है कि उपजिह्विकाओंमें आसपासके और भागोंसे अधिक रोगका कोई लक्षण नहीं देख पड़ता। पता नहीं, उपजिह्विकाओंको ही निकालनेकी बात क्यों सूझा करती है।

विकारका आरंभ होते समय बड़ी ठंढ मालूम होती है और उसके बाद ज्वर हो आता है। ज्वरकी प्रवृत्तिवाले कुछ बच्चोंमें तापमान जल्द ही १०५ अंशतक पहुंच जा सकता है। बदनमें दर्द होता है, गलेमें तकलीफ होती है, ज्वर बढ़नेके साथ-साथ नब्ज तेज होती जाती है और सांसकी भी गति बढ़ जाती है, पेशाबका रंग बदल जाता है और उसमें कुछ तलछट-जैसा पदार्थ जमने लगता है।

इस अवस्थामें गलेकी ये ग्रंथियां सूज जाती हैं और अधिकांश अवस्थाओंमें सारे शरीरकी लसीका-ग्रंथियोंमें सूजनका लक्षण देख पड़ता और दर्द भी रहता है। अन्ननालीकी हालत ठीक नहीं रहती और मलके साथ श्लेष्मा अधिक निकलता है। रोग बहुव्यापक होनेकी हालतमें तरह-तरहके उपसर्ग पैदा हो जाते हैं जिनमेंसे अधिकांश औषधोपचारके ही परिणाम होते हैं; क्योंकि औषधविधान रोगको शत्रुके रूपमें देखकर उसका अंत करनेके लिए ध्वंसक साधनोंका प्रयोग किया करता है। उपजिह्विकावृद्धि जैसे साधारण रोगके उपचारमें अगर प्राकृतिक पद्धतिका सहारा लिया जाय तो उपसर्गोंके प्रकट होनेकी संभावना ही नहीं रहेगी, पर अगर विषौषधोंका प्रयोग किया जाय तो कोई भी बात घटित हो सकती है।

उपचारका उद्देश्य

ऐसी अवस्थामें शरीरको साधारण अवस्थामें लानेका प्रयत्न करना ही उपचारका मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। मैलसे भरी हुई जीभ, गंदी सांस, सूजी हुई ग्रंथियां आदि महत्वपूर्ण लक्षण हैं। इन सभी अवस्थाओं में बच्चा बिस्तरपर रक्खा जाय और जबतक ज्वर बिलकुल न उतर-

जाय उससे उपवास कराया जाय। उपवास-कालमें रोज दो वार एनिमा देकर आंतकी सफाई की जाय और गलेपर ठंडे पानीमें भिगोकर निचोड़ी हुई पट्टी गलेके चारों ओर लगाकर ऊपरसे ऊनी पट्टी एक घंटे गलेपर रहे और दिनमें तीन वार लगायी जाय। अगर वच्चेके स्वभावमें चिड़चिड़ापन हो तो ज्वर होनेके साथ ही एनिमा दिया जाय। शरीरके ही वरावर पानीका तापमान रहे। इस वातका खयाल रखा जाय कि वच्चेको कोई तकलीफ न हो। पानी वहुत धीरे-धीरे पहुंचाया जाय और दर्द मालूम होने लगे तो उसके दूर न होनेतक पानी पहुंचाना वंद रखा जाय।

इस उपचारसे ज्वर जल्द ही उतर जायगा, जीभ साफ हो जायगी और सांसकी वदवू भी जाती रहेगी। इन सुधारोंके हो जानेपर उपजिह्वि-काओंकी सूजन कम पड़ने लगेगी और गलेकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह भी जल्द ही चला जायगा। वीमारीके वाद वच्चेकी क्षुधा किसी ठोस आहारसे शांत करनेकी भूल कभी न की जाय। वच्चेको कम-से-कम एक सप्ताह सिर्फ ताजा फल और सलाद दिया जाय। वह कुछ दुवला अवश्य हो जायगा, पर इसके वाद नष्ट तंतुओंका स्थान स्वस्थ तंतु ग्रहण कर लेंगे। इसके वाद आहारमें दूध भी शामिल कर लिया जाय और वच्चेकी ताकत कुछ वढ़ जानेपर प्रोटीन और श्वेतसारवाले पदार्थ भी दिये जायं। किसी तरहका टानिक या दवा न दी जाय। इस प्रकार चलनेपर कोई उपसर्ग पैदा नहीं होगा।

अधिकांश वच्चोंकी उपजिह्विकाएं वढ़ी हुई जान पड़ती हैं और उनका साधारण अवस्थाका रूप निश्चित करना कठिन होता है, इसलिए रोगका निश्चय इन ग्रंथियोंके आकारसे नहीं, वल्कि शरीरकी अवस्थाके आधारपर ही किया जा सकता है। रोगके कारण वढ़ी हुई ग्रंथियां सांस लेने और खानेमें वाधक होंगी, श्रवणशक्ति अपनी साधारण अवस्थामें नहीं रहेगी और उपेक्षा होनेपर चवानेकी क्रिया भी ठीक तरहसे नहीं हो सकेगी।

साधारण वृद्धिमें

अगर वृद्धि साधारण हो और उपर्युक्त कार्योंमें वाधक न हो तो स्थानिक उपचार चलानेके फेरमें न पड़कर बच्चेके खान-पान और रहन-सहनपर ध्यान दीजिए, कुछ दिनोंमें वे आप ही साधारण अवस्था में आ जायंगी। हां, अगर वाधक होती हो तो विकार दूर करनेका उपाय जल्द कीजिए। डाक्टर तो ऐसी अवस्थामें नश्तर लगानेकी ही राय देंगे और ग्रंथियोंको निकाल देंगे, पर रोगका असल रूप ज्यों-का-त्यों बना ही रहेगा। अगर प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार समझदारीके साथ उपचार चलाया जाय तो बुरी-से-बुरी अवस्था भी कुछ ही समयमें ठीक हो जायगी।

बच्चेका उपचार हो

उपजिह्विकाकी वृद्धि शरीरकी भीतरी खराबीकी ही सूचक है और इसी बातको आधार मानकर उपचार भी होना चाहिए। कहनेका अभिप्राय यह कि उपजिह्विकाका उपचार न कर बच्चेका ही उपचार करना चाहिए। सबसे पहले अन्ननालीपर ध्यान दिया जाय जैसा कि अन्य रोगोंमें होता है। केवल यह कहना काफी नहीं होगा कि बच्चेको अग्निमांद्य या कोष्ठबद्धता नहीं है। इस प्रकारकी सभी अवस्थाओंमें इनका अस्तित्व मान लेना ही अच्छा होता है। बढ़ी हुई उपजिह्विकामें आंतकी विषाक्तताका योग किसी-न-किसी रूपमें अवश्य रहता है।

आहार

उपचार साधारण स्वास्थ्यके सुधारकी दिशामें हो जिसमें उपयुक्त आहारका महत्व बहुत अधिक है। एक सप्ताहतक केवल फलोंपर रखना सभी अवस्थाओंमें लाभदायक होता है। इससे शरीरसे विषका विसर्जन

होने लगेगा जो फसादकी जड़ है। इसके बाद कुछ दिनोंतक फलों और सलादकी मात्रा बहुत अधिक और श्वेतसार तथा प्रोटीन अत्यल्प मात्रामें रखे जायं। इसके साथ ही नाड़ियोंमें रक्त-संचरण तीव्र करनेके लिए गरदनकी मालिश की जाय और उंगलियोंके जरिये ग्रंथियोंमेंसे विकार निकाल दिया जाय। इसके लिए अंगुली नीबूके रसमें डुबाकर उससे उपजिह्विकाओंको सुबह-शाम एक-एक मिनटतक धीरे-धीरे मला जाय।

कर्णमूल-शोथ

कर्णमूल-शोथ, जिसको लोग आमतौरसे 'गलसुआ' कहते हैं, उन तीन या चार बालरोगोंमेंसे है जिनके संबंधमें यह माना जाता है कि वे कभी-न-कभी बच्चोंको अवश्य होते हैं, पर अब यह अंधविश्वास धीरे-धीरे दूर हो रहा है और लोग समझने लगे हैं कि ये भी अन्य रोगोंकी ही तरह माता-पिताकी लालन-पालन संबंधी भूलोंके कारण होते हैं।

औषधविज्ञान इसे संक्रामक मानता है और अधिक समयतक सर्दीका टिकना, वर्षा, एकाएक मौसममें ठंढक आ जाना आदि संक्रमणकी वृद्धिमें सहायक माने जाते हैं। डा० हावर्डके अनुसार 'इस प्रकारका रोग पैतृक दोष निकाल डालनेकी शारीरिक प्रक्रिया है और शरीरके लिए लाभदायक होनेके साथ ही आवश्यक भी है। अगर इसे दबानेका प्रयत्न किया जाय तो बच्चेके शरीरको क्षति पहुंचेगी और उसकी जीवशक्ति कम हो जायगी।' डा० टिलडेनका कहना है कि 'अगर खान-पान और देखभालमें सावधानी रखी जाय तो तथाकथित कोई भी संक्रामक रोग पास नहीं फटकेगा।'

रोगके लक्षण

इस रोगमें तबीयत भारी हो जाती है, एक या दोनों कानोंके नीचे दर्द होता है, लाला ग्रंथियोंकी सूजनसे ऊपरकर हिस्सा उठ आता है, अधिकांश अवस्थाओंमें तापमान बढ़ जाता है, पर उतना नहीं बढ़ता जितना साधारणतः अन्य संक्रामक रोगोंमें बढ़ता है—१०१ अंश और कभी-कभी इससे भी ऊपर चला जाता है और सूजन क्रमशः बढ़कर सारी गरदनमें फैल जाती है। सूजन सात-आठ दिन टिकनेके बाद ग्रंथियां धीरे-धीरे साधारण रूप प्राप्त कर लेती हैं और बच्चा चंगा हो जाता है।

उपसर्ग क्यों ?

बहुतसे विशेषज्ञोंका कहना है कि इसमें जानके लिए कोई खतरा नहीं रहता और जो बच्चे मरते हैं वे उपसर्गोंके ही कारण मरते हैं। इस साधारणसे रोगके साथ बहुतसे बड़े रोगोंका संबंध जोड़ा जाता है जो सब-के-सब इसके उपसर्ग माने जाते हैं। हृद्रोग, वृक्कविकार, सन्धिवात, आवरणशोथ आदि कुछ रोगोंका नामोल्लेख किया जा सकता है। उपसर्गोंके संबंधमें यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि वे प्रायः मूल रोगके कारण नहीं, बल्कि उपचारसंबंधी दोषोंके कारण प्रस्तुत होते हैं।

कारणकी तलाश

औषधोपचारकों और कई प्राकृतिक चिकित्सकोंका भी कहना है कि इस रोगमें विशेष रूपसे कुछ करनेकी आवश्यकता नहीं है, फिर भी हमें रोग दूर हो जानेके बाद शारीरिक क्रियाओंके और अच्छे रूपमें चलनेके लिए आवश्यक उपाय करना ही चाहिए। इसके लिए सारी अवस्थाओंका सावधानीके साथ विश्लेषण कर रोगके मूल कारणको ढूंढ़ निकालना पड़ेगा। अधिकांश अवस्थाओंमें पाचनकी खराबी—आंतमें खमीर बनना और कब्जकी प्रवृत्ति—ही इसका कारण हुआ करती है। कभी-कभी इसका संबंध स्नायुदोष और गंडमालासे भी देख पड़ता है जिसका खयाल रखना जरूरी होता है।

उपचार

विश्लेषणसे यह सिद्ध हो जायगा कि रोग होनेके पहले साधारण स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। तापमानका बढ़ना उपवासकी आवश्यकता सूचित करता है। उपवास कराते समय केवल पानी पिलाया जाय। इसके बाद केवल फलका रस दिया जाय और तब प्राकृतिक पद्धतिके अनुसार आहार दिया जाय। इसमें विशेषकर ज्वरकी हालतमें, एनिमा देना आवश्यक है। स्थानिक उपचारके लिए गरम और ठंडी पट्टी बहुत लाभदायक सिद्ध होगी।

आरक्त ज्वर

आरक्त ज्वर तीव्र संक्रामक रोग है। दस वर्षतककी अवस्थाके बच्चे अकसर इसके शिकार हुआ करते हैं। प्रायः यह व्यापक रूपमें हुआ करता है और इसका रूप मामूली से लेकर गंभीरतक हुआ करता है, जिसमें शरीरपर बहुत जोर पड़ता है। कुछ अवस्थाओंमें गलेपर इसका ज्यादा जोर पड़ता है और कुछमें गले और त्वचा दोनोंपर। इसका एक रूप ऐसा होता है जिसमें यह चर्मस्फोटतक ही सीमित रहता है।

औषधविज्ञान इसका कारण कीटाणुओंका संक्रमण मानता है, हालां कि इस कीटाणुका अभीतक पता नहीं लग सका है। कीटाणु इस रोगमें चाहे जो करते हों, हमारे पास उन्हें रोकनेका कोई उपाय नहीं है। हां, हम खान-पान, रहन-सहन और वातावरण ठीक कर बच्चोंकी निरोध-शक्ति अवश्य बढ़ा सकते हैं। इस शक्तिके कम होनेसे ही वे आरक्त ज्वर—जैसे रोगोंसे आक्रान्त होते हैं और अगर आक्रान्त हो ही जाते हैं तो जैसे अन्य रोगोंमें शरीर स्वयम् आरोग्य लाभ करता है वैसे ही इसमें भी, अगर उसे उचित अवसर दिया जाय तो बढ़े हुए विषको निकालकर पहलेकी अपेक्षा अधिक स्वस्थ हो जायगा।

लक्षणोंका रूप

इसके लक्षण विशेष प्रकारके हुआ करते हैं। पहला लक्षण वमन है। बच्चा बहुत उत्तेजित होता है, तापमान फौरन काफी बढ़ जाता है, जीभ-पर मैलकी तह जम जाती है, सांस गंदी हो जाती है, गलेमें खराश मालूम होती है और प्रदाह नासिकातक फैल जाता है। ये चिह्न प्रायः अन्य संक्रामक रोगोंमें भी प्रकट हुआ करते हैं इसलिए इन चिह्नोंके सहारे इस रोगकी ठीक-ठीक पहचान नहीं हो सकती, पहचान तब होती है जब

बदनपर ददोरे नजर आने लगते हैं जो छत्तीससे बहत्तर घंटेतक निकलते हैं। पहले तो सिर्फ लाली देख पड़ती है, पर बादमें पीड़िका—जैसे लाल ददोरे बनकर स्थितिकी सूचना दे देते हैं।

रोगीकी शारीरिक अवस्थाके अनुसार इन लक्षणोंमें अंतर भी हो सकता है। कुछ लोगोंमें तो वे इतने हलके हो सकते हैं कि जल्द मालूम भी न हो सकें और कुछमें बुखार इतना कड़ा हो सकता है कि भयका कारण हो जाय। हलके चिह्न अंतमें प्रायः खतरनाक साबित होते हैं, क्योंकि उनके इस रूपके कारण रोगी लापरवाह-सा रहता है; इसलिए लक्षणोंका रूप चाहे जैसा हो, सबपर पूरा ध्यान देना चाहिए।

उपचार

प्राकृतिक पद्धतिमें आरक्त ज्वरका उपचार अन्य संक्रामक रोगोंके उपचारसे भिन्न नहीं होता। उपचारमें ध्यान देनेकी मुख्य बात है शरीरको, आरंभ किया हुआ प्रयत्न उचित रूपमें चलानेका अवसर देना। इस समय कुछ भी खानेकी इच्छा नहीं होती। ज्वर बिलकुल उतर न जानेतक सिर्फ पानी दिया जाय। इस नियमका उल्लंघन होनेपर उपसर्ग पैदा हो जा सकते हैं। रोगी सिर्फ पानीपर कुछ दिनोंतक मजेमें रह सकता है और इससे उसको आराम भी मालूम होगा। आरंभमें ही एनिमा देकर आंत साफ कर देना बुद्धिमानीका काम होगा। पहले रोज दो बार एनिमा दिया जाय। बड़ी आंत बिलकुल खाली हो जानेपर रोगी मजेमें सो सकेगा और नाड़ीसंस्थान बहुत कम उत्तेजित होगा।

तापमान घटानेका उपाय

अगर बुखार ज्यादा—१०४ अंशके आसपास—हो तो इसे खतरनाक होनेसे रोकनेके लिए बुखार घटानेवाला स्नान कराया जाय। १०० अंश तापमानवाला पानी टबमें भरकर बच्चेको कुछ मिनट उसमें रहने दिया जाय। इसके अनंतर टबमें थोड़ा ठंढा पानी डालकर तापमान ९० अंश

कर दिया जाय और उसमें, लगभग दस मिनट उसकी प्रतिक्रिया देखकर-रखा जाय। इसके बाद पानीका तापमान और १० अंश कम कर बच्चा रखा जाय। यह तरीका समझदारीके साथ काममें लाया जाय; क्योंकि सभी रोगियोंकी एक ही जैसी प्रतिक्रिया नहीं हुआ करती। यदि इस नहानकी व्यवस्था न हो सके तो सारे बदनकी गीली पट्टी बच्चेको दी जाय। इससे बदनकी खुजली कम पड़ जायगी और ज्वर रहनेपर भी रोगीको कुछ आराम मालूम होगा। ज्वर ज्यादा उतारनेकी कोशिश न की जाय; क्योंकि बढ़ा हुआ ज्वर उस विशेष अवस्थामें शरीरकी आवश्यक प्रतिक्रिया है।

आहारका क्रम

दो-तीन दिन बाद, बच्चेको कुछ आराम मालूम होने लगनेपर, पानीके बदले या अलावा फलका रस भी दिया जाय। नारंगी, अंगूर, नीबू, अनन्नासका रस इस अवस्थामें अच्छा होता है और रोगी पसंद भी करता है। ज्वर उतरनेके साथ-साथ इसकी मात्रा भी बढ़ायी जा सकती है। यह आहार ताजगी लानेवाला तो है ही, इससे वानस्पतिक लवण और विटामिन भी अच्छी मात्रामें प्राप्त होते हैं जिससे शरीरमें साधारण रूपमें क्षार बनता रहेगा। रोगीकी हालत सुधर जानेपर पके मौसमी फल दिये जायं। इसके बाद मुलायम सलाद और फिर उबली हुई तरकारियां दी जायं। अगर कोई खराबी न देख पड़े तो इस क्रमके बाद चोकरदार आटेकी रोटी, उबली हुई तरकारी और सलाद दिया जाय। अगर फल देते समय रोगी कुछ दूध भी लेता हो तो फलके बादका आहार-क्रम न चलाकर इसे ही कुछ दिनोंतक चलाया जाय। आरोग्योन्मुख अवस्थामें चर्मनिर्मोचन भी होता चलेगा। इसके लिए किसी उपचारकी आवश्यकता नहीं है। कभी-कभी शामको थोड़ा जैतून या नारियलका तेल मलना और सुबह गर्म पानीसे नहा लेना लाभदायक होता है।

ऊपर बतलाये हुए तरीकेसे उपचार चलाया जाय तो उपसर्गोंके उत्पन्न होनेकी संभावना नहीं रहेगी। अगर गलत उपचारके कारण कुछ उपसर्ग प्रस्तुत हो भी गये हों तो ये ही सरल उपाय आरोग्यलाभमें सहायक होंगे। अगर विषाक्त मल अधिक मात्रामें एकत्र हो तो वृक्कविकार, आमवात, कर्णविकार आदि इसके बाद हो जा सकते हैं। विषाक्त पदार्थोंको निकालनेका सबसे अच्छा उपाय उपवास और विश्राम है। यह मत समझ लीजिए कि रोग मामूली है और बच्चा जल्दी अच्छा हो रहा है, इसलिए और देखभालकी जरूरत नहीं है। जितना आवश्यक जान पड़ता हो उससे एक सप्ताह अधिक ही बच्चेको बिस्तरपर रखिए।

रोहिणी (डिप्थीरिया)

रोहिणी तीव्र संक्रामक रोग है जिसमें मैला निर्यास निकलता है और स्वरनलिका, कंठ, उपजिह्विका, वायुप्रणाली आदिमें प्रदाह होता है। गला इस रोगका विशेष क्षेत्र होनेके कारण इसका परिणाम भयंकर हो सकता है इसलिए मां-बाप इससे बहुत डरते हैं।

कीटाणु कारण नहीं

इस रोगमें विशेष प्रकारका कीटाणु पाये जानेके कारण कीटाणुवादी उसे ही इस रोगका कारण मान लेते हैं, पर यह भ्रम है; क्योंकि अगर शरीरकी प्रतिक्रिया न हो तो किसी कीटाणुमें इतनी शक्ति नहीं है कि रोग उत्पन्न कर सके। बहुतसे बच्चे इन कीटाणुओंके संपर्कमें आते हैं, पर उनमें जीवशक्ति तथा रोग-निरोधकी शक्ति होनेके कारण वे रोगसे आक्रांत नहीं होते; इसलिए हमारा प्रयत्न शरीरका स्वास्थ्य उन्नत करनेकी ही दिशामें होना चाहिए जिसमें कीटाणुको उसमें पैर जमानेका अवसर ही न मिले।

रोगका रूप

रोहिणी का खतरा मां-बापके लिए इस बातकी चेतावनी है कि गलेकी मामूली खयशकी भी कभी उपेक्षा न की जाय, विशेषकर उस हालतमें जब पास-पड़ोसके और बच्चे इस रोगसे आक्रांत हों। इसे यों ही छोड़ देना बहुत बड़ी भूल है; क्योंकि आरंभिक अवस्थामें ही उसका उचित उपचार कर देनेसे इसके बढ़नेकी संभावना नहीं रहती। इसका आरंभ ठीक सर्दीकी ही तरह होता है। गलेमें खराश पैदा हो जाती है और उसकी कलापर कुछ उजले धब्बे भी देख पड़ते हैं। तापमानका ज्यादा बढ़ना कोई जरूरी नहीं है। अगर गलेकी खराशके साथ थोड़ा ज्वर हो तो यह

समझनेकी भूल कभी मत कीजिए कि रोगका रूप भयंकर नहीं है। धब्बे इस बातके सूचक हैं कि विषाक्त मल एक विशेप स्थानसे, जो रोगका क्षेत्र बननेवाला है, बाहर निकल रहा है और अगर यह मल शरीरमें पहुंच जाय तो रक्तको विषाक्त कर हृदयको ग्रस्त कर सकता है। अगर रोहिणीवाला भाग कहीं नीचेकी तरफ बढ़ जाय तो रोगका रूप बहुत गंभीर हो जायगा।

आरंभिक अवस्थामें

इसलिए गलेकी खराशकी आरंभिक अवस्थामें उपेक्षा करना बहुत बड़ी भूल है और यह बात तीव्र और जीर्ण दोनों अवस्थाओंके लिए एक-सी लागू है। यह खराश कई रोगोंकी आरंभिक अवस्थामें हुआ करती है। अगर रोगकी इस आरंभिक अवस्थामें ही प्रकृतिकी सहायता ली जाय तो जल्द ही आरोग्यलाभ हो जायगा। चाहे जैसी भी अवस्था हो, बच्चेको बिस्तरपर रखकर पूरा उपवास कराइए और गला ठीक न होनेके समयतक पानीके सिवा कुछ भी मत दीजिए। रोज दो बार एनिमा देकर आंतकी पूरी सफाई कर दीजिए। यह बहुत आवश्यक है और किसी भी हालतमें इसमें लापरवाही नहीं होनी चाहिए। कोई भी रेचक इस स्वास्थ्यकर उपायका मुकाबला नहीं कर सकता। अगर बच्चा इसका विरोध करे तो उसपर ध्यान देनेकी जरूरत नहीं है।

स्थानिक उपचार

स्थानिक लक्षणोंके कारण होनेवाला कष्ट दूर करने के लिए गीली पट्टीका प्रयोग किया जाय। कोई साफ कपड़ा काफी ठंढे पानीमें भिगोकर निचोड़ लीजिए और उसे गलेमें लपेटकर सूखे ऊनी कपड़ेसे ढक दीजिए। गीली पट्टीसे बच्चेको बहुत आराम मालूम होगा। कुछ अवस्थाओंमें सीने, पेड़ू या सारे बदनपर इसका प्रयोग करना आवश्यक हो सकता है। संकुलता, गर्मी और तकलीफ दूर करके इस पट्टीका आश्चर्यजनक प्रभाव होता है।

उष्ण-स्नान

रोज दिनमें एक बार उष्णस्नान कराया जाय। पानीका तापमान बच्चेकी अवस्था और प्रतिक्रियाके अनुसार ९८ से १०५ अंशतक हो सकता है। बच्चा पानीमें लिटा दिया जाय या बैठा दिया जाय। इस समय सिरपर ठंडे पानीसे भीगा तौलिया रहे। अगर यह उपाय ठीक तरहसे हो तो पसीना तुरंत निकलने लगेगा और त्वचाके सक्रिय होते ही गलेका लक्षण कम पड़ने लगेगा। काफी आराम मालूम होने लगनेपर बच्चेका बदन सुखाकर उसे गरम बिस्तरेपर लिटा दीजिए। बीस-पचीस मिनटसे अधिक समयकी इस नहानमें जरूरत नहीं होती। यह गरम स्नान दिनमें एक बार देना काफी होगा, पर अग रोगीको अधिक आरामकी जरूरत हो तो उसे सारे बदनकी गीली पट्टी एक बार और दी जा सकती है। गरम नहानका प्रबंध न होनेपर सारे बदनकी गीली पट्टी दिनमें दो बार दी जाय।

गर्मी और त्वचाकी बढ़ी हुई सक्रियता गलेमें श्लेष्माका बनना रोककर उसे बाहर निकाल देगी। इसके लिए बच्चेका सिर कुछ नीचा रहे जिसमें श्लेष्मा आसानीसे निकले और किसी पात्रमें फेंका जा सके।

कुछ लोग कुल्ली और गरारा करनेकी राय देते हैं, पर इससे कोई खास फायदा नहीं होता। तीव्रावस्थामें उपवास और आरोग्योन्मुख अवस्थामें प्राकृतिक पद्धतिद्वारा अनुमोदित आहार देनेसे जल्द आरोग्य-लाभ होनेकी आशाकी जा सकती है। आराम पहुंचाने और शरीरकी प्राकृतिक शक्तियोंको सक्रिय बनानेका सर्वोत्तम और निरापद उपाय उपयुक्त जलोपचार ही है।

तांडव

यही एक ऐसा स्नायविक रोग हैं जिससे बच्चे मुख्य रूपसे आक्रांत हुआ करते हैं। यह विशेषकर उन बच्चोंको होता है जो पढ़ने-लिखनेमें तेज, चुलबुले और ऐसे परिवारके होते हैं जिसमें स्नायत्रिक रोगकी प्रवृत्ति होती है।

रोगका कारण

इस रोगके कारणोंके संबंधमें बहुत छानबीन हुई है और कई सिद्धांत प्रतिपादित किये जाते हैं। अवस्थाके संबंधमें लोगोंका मत है कि दो सालसे पंद्रह सालकी अवस्थातक इसकी प्रवृत्ति रहती है और सातसे पंद्रहतककी अवस्थामें इसके होनेकी विशेष संभावना रहती है; क्योंकि इस समय पढ़ाईमें स्नायुओंपर बहुत जोर पड़ता है। पैतृक प्रभाव, जलवायु और संक्रमण भी इसके सहायक कारण होते हैं। लोगोंका यह भी मत है कि लड़कोंकी अपेक्षा लड़कियां इससे अधिक आक्रांत होती हैं। एक प्रसिद्ध चिकित्सकका कहना है कि रक्ताल्पता, गंडमाला तथा क्षीणताके शिकार बच्चोंको यह रोग अधिक होता है, पुष्ट बच्चोंको बहुत कम। इससे यह स्पष्ट है कि जिन बच्चोंका स्वास्थ्य साधारण होगा वे इससे बहुत कुछ बचे रहेंगे। प्रायः यह भी देखा जाता है कि यह रोग कभी-कभी शीतला, आरक्त ज्वर, रोहिणी आदि संक्रामक रोगों के बाद होता है, इसलिए प्रायः वे ही इसके कारण माने जाते हैं। कुछ लोग आमवात और हृद्रोगको भी इसका कारण मानते हैं, पर हमारा मत है कि इन रोगोंके उपचारमें लक्षणोंको दबानेके लिए जो दवाएं काममें लायी जाती हैं उन्हींके कारण बच्चोंमें स्नायविक विकार प्रस्तुत हो जाता है।

विभिन्न रूप

इस रोगके लक्षण हलके, कड़े और उन्मादकी तरह बहुत उग्र भी हो सकते हैं। हलके रूपमें बच्चा अपनेको स्थिर नहीं रख सकता, हमेशा अशांत रहता है, उसकी चाल साधारण बच्चोंकी तरह स्थिर गतिवाली नहीं होती, वह चीजोंसे ठोकर खा सकता है, वर्तन तोड़ दे सकता है और उसके मस्तिष्क तथा अंगोंमें उतना मेल नहीं रहता।

रूप कड़ा होनेपर हालत और भी बुरी होती है। बच्चा अंगोंकी पेशियोंको मोड़ न सकनेके कारण चलने-फिरने या नित्यक्रिया करनेमें अंशतः असमर्थ हो जाता है जिससे दूसरोंकी सहायता आवश्यक हो जाती है। उन्माद—जैसा रूपमें तो स्थिति भयंकर ही हो जाती है और बच्चेको बराबर देख-रेखमें रखना पड़ता है।

इसमें कुछ अंगों और संधियोंमें पीड़ा होती है और हृदयकी क्रिया भी कभी-कभी अस्तव्यस्त हो जाती है; बच्चेकी मानसिक अवस्थामें संतुलन नहीं रह जाता, वह चिड़चिड़ा हो जाता है और आपेसे बाहर होकर चिल्लाने लगता है।

औषधोपचारक इस रोगमें संखिया आदि भयंकर और खतरनाक द्रव्योंका प्रयोग करते हैं। प्राकृतिक पद्धति इसके बिलकुल खिलाफ है और उसका मत है कि इस तरहकी दवाएं स्वास्थ्य और जीवनके लिए रोगसे भी ज्यादा खतरनाक हैं।

स्नायविक विकारवाले बच्चेके उपचारमें परिस्थितियोंके प्रभाव और बच्चेकी प्रतिक्रियापर उचित ध्यान देना आवश्यक है। जो बातें बच्चेके मानसिक संतुलनको अस्तव्यस्त करनेवाली हों वे दूर कर दी जायं और जहांतक संभव हो उसे स्वेच्छापूर्वक कार्य करनेका अवसर दिया जाय। अगर अध्ययन आदिके कारण किसी तरहका जोर पड़ता हो तो वह बंद कर दिया जाय।

उपचारका आधार

इस रोगमें उपचार किस प्रकारका होना चाहिए इसका संकेत उसके निद्रावस्थामें होनेपर मिल जाता है। इस समय उपयुक्त लक्षणोंमेंसे एक भी नहीं देख पड़ता, इसलिए उपचारका मुख्य अंग विश्रामकी प्राप्ति हो, पर यह विश्राम उस अर्थमें नहीं होना चाहिए जो साधारणतः लोग ग्रहण किया करते हैं। लोग कभी-कभी यह समझ लेते हैं कि पहलेकी तरह खाना-पीना, विचार करना आदि कार्य जारी रखते हुए भी बिस्तरेपर लेटे रहना विश्राम है, पर जिस विश्रामका उद्देश्य अच्छा स्वास्थ्य और शरीर तथा मस्तिष्का संतुलन प्राप्त करना है उसका अभिप्राय शरीरकी अन्य शक्तियोंकी भी निष्क्रियता है। यों तो जीवनमें शरीर और मस्तिष्क कभी निष्क्रिय नहीं होंगे—हृदय रक्तका प्रेषण करता रहेगा और अन्य अनैच्छिक क्रियाएं भी चलती ही रहेंगी, पर जो क्रियाएं इच्छापूर्वक होती हैं उनका नियंत्रण किया जा सकता है और भोजन आदिका त्यागकर शरीरको भी विश्राम दिया जा सकता है।

आरोग्यलाभके अन्य उपायोंकी अपेक्षा इससे अधिक लाभ होगा। उपवास और विश्रामकी चर्या पूरी हो जानेपर आहारका रूप निश्चित करनेमें पूरी सावधानी बरती जाय। इस प्रकर अग्निमांद्य और मलावरोधका निवारण मजेमें हो जायगा जिससे बच्चेको स्वास्थ्यलाभमें बड़ी सहायता मिलेगी।

अम्लोत्कर्ष

अम्लोत्कर्ष एक ऐसा रोग है जो बहुत कष्टदायक होता है और बहुतसे बच्चोंको हुआ करता है। दो-से-चार सालतकके बच्चोंपर इसका ज्यादा असर देख पड़ता है। यह वह अवस्था है जिसमें क्षारकी कमी हो जाती है। साधारण अवस्थामें रक्तमें अम्ल और क्षारका संतुलन बना रहता है। इस संतुलनमें अस्तव्यस्तता आनेपर इसकी यह अवस्था कुछ लक्षणों-द्वारा प्रकट होती है। प्रमेह, भुखमरी और ज्वरमें घोर अस्तव्यस्तता प्रस्तुत हो सकती है जिससे रक्तमें अम्ल बहुत बढ़ जा सकता है, पर अम्लोत्कर्षमें क्षार आवश्यकतासे कम होनेकी ही अवस्था होती है।

रोगके लक्षण

वमन, ज्वर, ओठोंका बहुत लाल हो जाना, चिड़चिड़ापन आदि इस विकारके मुख्य लक्षण हैं। वमन एकाएक और जोरोंका होता है। बच्चा जो कुछ खाये रहता है सब फेंक देता है और उसके साथ अम्लमय तरल पदार्थ भी होता है। साधारणतः आंत भी अव्यवस्थित हो जाती हैं जिससे उदरामय या कब्ज भी हो सकता है। दौरेका रूप भयंकर होता है और बच्चा बहुत लस्त हो जाता है। दौरा सात-आठ दिनोंमें समाप्त हो जाता है, पर रोगका रूप गंभीर होनेपर सात-आठ दिनोंमें फिर दौरा हो जाता है। इस प्रकार बच्चेमें कमजोरी बनी रहती है और उसकी साधारण सक्रियतामें खलल पड़ता रहता है। कुछ बच्चोंमें लक्षण इतने स्पष्ट नहीं होते—दौरेका समय आनेपर केवल भूखमें कुछ गड़बड़ी हो जाती है और दैनिक कार्योंमें कुछ अंतर पड़ जाता है, केवल ज्वर भी हो सकता है या कुछ दिनोंतक सिर्फ मतली रहती है पर दौरेका रूप चाहे जैसा भी हो वह बिलकुल नपेतुले समयके अंतरपर ही होगा।

ऐसे बच्चेमें क्षारकी कमी तो स्पष्ट ही होती है, कुछ अन्य बातोंपर

भी ध्यान देना आवश्यक होता है। संभव है, भोजनमें क्षारीय पदार्थ काफी रहते हों, पर कुछ अन्य कारण ऐसे हो सकते हैं जो उनका उपयोग न होने देते हों; इसलिए बच्चेके सारे जीवनपर विचार करना आवश्यक होता है।

आहारका सुधार

इस रोगसे ग्रस्त बच्चेका शारीरिक और मानसिक जीवन नये सिरेसे व्यवस्थित करना आवश्यक होता है। शारीरिक दृष्टिसे ध्यान देनेका सबसे महत्त्वपूर्ण विषय पोषण है। उसके आहारका सावधानीके साथ विश्लेषणकर उसका रूप निश्चित किया जाय। पहला काम तो यह हो कि प्रोटीन और श्वेतसारवाले पदार्थ बहुत कम कर दिये जायं और इसका कोई बुरा प्रभाव न देख पड़े तो बच्चा तीन-चार दिन सिर्फ फलके रसपर रखा जाय। इसके बाद उसे सिर्फ फल दिया जाय, पर केला न दिया जाय। यह भी तीन-चार दिन चला लेनेपर उसे दिनमें थोड़ा-थोड़ा करके कुछ दूध दिया जाय। अब उसके भोजनका रूप इस प्रकार रहे—सुबहमें फल और दूध, दोपहरको चोकरदार आटेकी रोटी और सलाद और शामको उबली हुई तरकारी और कोई प्रोटीनवाला पदार्थ। यह आहार चलाकर महीना पूरा कर दिया जाय। इसके अनंतर यही क्रम पुनः चलाया जाय। जल्द जानेका नाम न लेनेवाले रोगमें इस क्रमकी कई बार आवृत्ति करनी पड़ सकती है।

आंतकी सुस्ती एनिमाका प्रयोगकर दूर की जाय। रसाहार चलाते समय यह प्रयोग हो तो पूरा आहार ग्रहण करनेका समय होनेतक आंतकी हालत बहुत कुछ ठीक हो जायगी। उदरामय आदि दूर करनेके लिए दवाका इस्तेमाल करना हानिकारक होगा। सादे पानीका एनिमा प्रभावकर होनेके साथ ही निरापद भी होता है। ऐसे बच्चेका अंगन्यास भी विकृत होता है, इसलिए मेरुदंड और उसके आसपासकी पेशियोंको साधारण अवस्थामें लानेसे आरोग्यलाभमें शीघ्रता होती है। इसके साथ बच्चेका विश्वास प्राप्त कर उसकी मानसिक अवस्था ठीक करना भी आवश्यक होता है।

परिशिष्ट

एनिमा लेनेकी विधि :—१—किसी तख्ते या खाटपर चित्त लेटकर और पैतानेको सिरहानेसे चार इंच ऊंचा रखकर एनिमा लेना चाहिए। जमीनपर लेटे हुए भी एनिमा लिया जा सकता है। छोटे बच्चे मांकी गोदमें लेटकर भी एनिमा ले सकते हैं।

२—एनिमाका पात्र लेटनेके स्थानसे डेढ़-दो फुटकी ऊंचाईपर सेर-सवा-सेर गुनगुना गरम पानी भरकर टांगें और टोंटी खोलकर मलद्वारसे पानी अंदर जाने दें। ३—पैरोंको सीधा न रखकर जरा उकड़ूं खींच
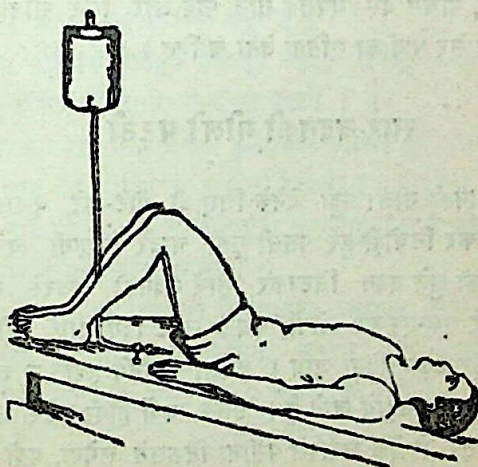
लेनेसे एनिमा लेनेमें सहूलियत रहेगी। ४—एनिमा लेनेके पहले, ट्यूबमें-से थोड़ा पानी बाहर निकाल दीजिए ताकि ट्यूबमें यदि हवा हो तो बाहर निकल जाय और जाना जा सके कि पानीका प्रवाह ठीक है। ५—जितना

पानी जा सके उतना जाने देनेके बाद दो-तीन मिनट रुककर शौच जाना चाहिए। ६—शौच जाते समय सुस्थिर होकर बैठा जाय, पानी और मलको अपने-आप निकलने दिया जाय। मलको निकलनेके लिए जोर न लगाया जाय। जोर लगानेसे सफाई अच्छी नहीं होती।

उपवास, फलाहारमें नित्य एनिमा लेनेकी जरूरत होती है। यदि एनिमा न लिया जाय तो उपवास और फलाहारका पूरा फायदा नहीं मिलता। इसमें पंद्रह-बीस मिनटका समय लग सकता है।

एनिमा एक दिनके बच्चेको भी बिना किसी डरके दिया जा सकता है। किसी प्रकारकी हानिकी कोई संभावना नहीं है।

छह महीनेतकके बच्चेको आध पाव पानीका, फिर एक वर्षतकके बच्चेको एक पाव पानीका, तीन वर्षतकके डेढ़ पाव, पांच वर्षतकके आध सेर पानीका, पांचसे दस वर्षतक तीन पाव और फिर सोलह वर्षतकके बच्चेको एक सेर पानीका एनिमा देना चाहिए।

सारे बदनकी गीली पट्टी

सारे बदनकी गीली पट्टी देनेके लिए दो मोटे-मोटे कंबलोंपर ठंडे पानीमें भिगोकर निचोड़ी हुई पतली सूती चादर बिछानी चाहिए और उसपर रोगीको खुले बदन लिटाकर सारे बदनको चादरसे लपेट देना चाहिए। फिर एक-एककर दोनों कंबल लपेट दिये जाएं और ऊपरसे एक कंबल और उढ़ा दिया जाय। कंबल, बदनमें हवा न लगने पाये इसलिए लपेटे और उढ़ाये जाते हैं। इससे गर्मी होगी और आध घंटेसे पौन घंटेके भीतर रोगीके शरीरसे पसीना निकलने लगेगा, पट्टी लपेटनेके पहले गरम पानी पिला दिया जाय तो पसीना निकलनेमें आसानी रहेगी। एक घंटे बाद रोगीको पट्टीसे निकालकर ठंढे पानीसे स्नान कराना चाहिए और उसके बाद साफ कपड़े पहनाकर पंद्रह-बीस मिनट कंबल उढ़ाकर लिटा देना चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा क्या है ?

रोज-ब-रोज डाक्टरोंकी तादाद बढ़ रही है और साथ-साथ अगणित ओषधियोंकी, पर आंख उठाकर देखें तो हर आदमी आपको किसी-न-किसी रोगके चंगुलमें फंसा मिलेगा । इससे साबित होता है कि दवाएं आदमीको न तंदुरुस्त रख सकती हैं, न कर सकती हैं ।

प्राकृतिक चिकित्सकोंने तजुरबेसे जाना है कि रसायन और दवाएं रोगको अच्छा करना तो दूर रहा, उल्टे रोगको—उसके कुछ लक्षणों-को—कुछ समयके लिए दूर करके, बाहर निकलते हुए रोगको शरीरके भीतर दबा देती हैं । जैसे गांवमें कूड़ा-कचरा इकट्ठा होकर बीमारी फैलाता है वैसे ही शरीरकी गंदगी निकल न पानेपर अंदर सड़ने लगती है और वही गंदगी सब रोगोंकी जड़ है ।

गलत भोजनकी वजहसे पैदा हुई सड़न, अपच, दवाओंके जहर, इंजेक्शन, टीका वगैरह इस गंदगीको बढ़ाते हैं ।

शरीरसे गंदगी निकालनेकी कुदरतकी कोशिश ही रोग है, और रोगके लक्षण इस कोशिशका कुदरती नतीजा है । कुदरती इलाज इस गंदगीको शरीरसे निकाल फेंकनेमें पूरी मदद पहुंचाता है और मनुष्यको स्वस्थ, सशक्त एवं सतेज बनाता है ।

कुदरती इलाजके मददगार हैं उपवास, फलाहार, संतुलित भोजन, पानी, मिट्टी, धूप, प्राणायाम, आसन, कसरत और मालिश वगैरह, जिनसे रोग दबते नहीं; बल्कि जड़से नेस्त-नाबूद होते हैं ।

आरोग्य मंदिर

इन्हीं सिद्धांतोंके अनुसार चिकित्साकी सुविधा देनेके लिए आरोग्य-मंदिरकी स्थापना की गयी है । विशेष जानकारीके लिए आरोग्य-मंदिरका परिचय-पत्र मंगानेकी कृपा करें ।

प्रबंधक, आरोग्य-मंदिर, गोरखपुर (उ० प्र०)

प्राकृतिक चिकित्साके संबंधमें ये क्या कहते हैं ?

मेरे दोनों हाथ पंद्रह वर्षसे छाजन (एक्जिमा) से भरे हुए थे। मुझे शरमके मारे उन्हें ढककर रखना पड़ता था। आरोग्य-मंदिरके मिट्टी-पानीके उपचारसे छाजन ढाई महीनेमें चला गया और हाथकी त्वचाका रंग स्वाभाविक हो गया।

काशमीरी देवी, हापुड़

मेरे पेशाबके साथ सात प्रतिशत चीनी आती थी। इसे कम करनेके लिए मुझे डाक्टर दोपहर व शामको भोजनके पहले इंसुलिनका इंजेक्शन देते थे। आरोग्य-मंदिरमें आते ही इंजेक्शन बंद कर दिया गया और यहाँ की चिकित्सासे तीन सप्ताहमें पेशाबके साथ चीनी आना बिल्कुल बंद हो गया। चिकित्सा कराये मुझे डेढ़ वर्ष हो गया तबसे मैं स्वस्थ हूं।

गादूराम चौधरी, विशनपुर (पूर्णिया)

मोटापेके साथ-साथ मैं सिरदर्द, चक्कर, बेहोशी, कमजोरी और स्वप्नदोषसे पीड़ित था। आरोग्य-मंदिरमें रहकर ढाई महीनेमें मैंने अपना अड़तालीस पौंड वजन घटानेके साथ-साथ अपने शरीरको सुडौल बनाया और सभी रोगोंसे छुट्टी पा ली।

आरोग्य-मंदिरके स्नेहपूर्ण वातावरवण छोड़ते हुए बड़ी तकलीफ हुई।

श्यामबिहारीलाल गर्ग, कृष्णा प्रेस, मेरठ

मुझे बहुत पुराना दमा था और हृदयकी कमजोरी। प्राकृतिक चिकित्साकी कृपासे ड़ेढ महीनेमें पचास वर्षकी उम्रमें इन रोगोंसे छुटकारा पाकर मैं फिर जावानीकी शक्ति और उमंगका अनुभव कर रहा हूँ।

कारूलाल साह, सूजागंज (भागलपुर)

मैं मासिककी गड़बड़ी और प्रदरकी शिकायतसे वर्षोंसे पीड़ित थी। जगह-जगह चिकित्सा कराकर निराश हो चुकी थी। आरोग्य-मंदिरकी चिकित्सासे ये सब रोग तो गये ही, भूख खुलकर लगने लगी और पुराना

कब्ज चला गया। मैंने यहां यह भी सीखा कि मनुष्यको स्वस्थ रहनेके लिए क्या खाना-पीना चाहिए और कैसे रहना चाहिए। मैंने नवजीवन पाया।

बनारसीदेवी, बरदुआरी (मालदा)

'आरोग्य-मंदिर' में आनेके पहले मुझे ये शिकायत थीं—पेट भारी होना, स्वप्नदोष, पेटमें वायु, शारीरिक कमजोरी, निरुत्साह, निस्तेज मुख-मुद्रा, स्मरण-शक्तिकी कमी, बदहजमी।...एक महीनेकी चिकित्सा-द्वारा मेरे इन लक्षणोंमें सुधार हुआ। तीन महीनेमें मैं बिलकुल अच्छा हो गया और १४ पौंड वजन बढ़ गया।

नारायण भट्ट, ग्रामसेवासमिति, अंकोला कारवार (बंबई प्रांत)

मेरे विचारसे प्राकृतिक चिकित्साका जितना अच्छा प्रबंध 'आरोग्य-मंदिर' में है उतना उत्तरी भारतके किसी भी प्राकृतिक चिकित्सालयमें नहीं है।

—प्रोफेसर हरिश्चंद्र गुप्त, बिरला कालेज पिलानी (जयपुर)

England's foremost advocate of Natural Therapeutics : Dr. Stanley Lief advised me to come to AROGYAMANDIR, Gorakhpur for it's training. Here I have had the wonderful opportunity to see Nature Cure at work. I have been able to watch so many patients, who recovered wonderfully. It must be witnessed to be believed. In this Institution I have learnt to understand many simple principles; otherwise impossible.

Albert Issac Mosseri,
CAIRO (EGYPT)

आरोग्य मंदिरमें चिकित्सा करानेके नियमादि जाननेके लिए 'आरोग्यमंदिर' का परिचय-पत्र मंगानेकी कृपा करें।

संचालक—आरोग्य मंदिर, गोरखपुर (उत्तर प्रदेश)

आरोग्य-ग्रंथमाला

प्राकृतिक चिकित्साके प्रसारकी दृष्टिसे आरोग्य-ग्रंथमालाका प्रकाशन शुरू किया गया है। इसमें हिंदुस्तानके अनुभवी प्राकृतिक चिकित्सकों-की पुस्तकोंके साथ-साथ विदेशके प्राकृतिक चिकित्सकोंकी पुस्तकें भी होंगी। ये सब हम मूल या सारांशरूपमें हिन्दी-भाषी जनताको अच्छे रूपमें और सुलभ मूल्यमें देना चाहते हैं।

१—बच्चोंका स्वास्थ्य और उनके रोग—आपके हाथमें है। शेष पुस्तकोंका परिचय लीजिये।

२—योगासन—लेखक—श्रीआत्मानंद—योगासन हिंदुस्तानके ऋषियों द्वारा संस्कृत प्राचीनतम प्रणाली तो है ही, यह दुनियाकी मानी हुई श्रेष्ठ व्यायाम-प्रणाली भी है। यह विधि शरीरको स्वस्थ रखनेके साथ-साथ मनुष्यको मानसिक रूपसे भी बलवान् बनाती है। योगासनकी विधियां और योगासन, इस 'सचित्र' योगासनसे सीखिए और आसनों-द्वारा रोगनिवारणकी कला भी जानिए। मूल्य केवल चार रुपया।

३—रोगोंकी नयी चिकित्सा—श्री लूई कूनेकी पुस्तक "न्यू सांइंस आफ हीलिंग" का भावानुवाद। सब रोग एक हैं और सबकी चिकित्सा एक है। प्राकृतिक चिकित्साके इस सिद्धांतका प्रतिपादन करनेवाली एक-मात्र पुस्तक। पृष्ठ-संख्या २५०। मूल्य पांच रुपया।

४—रोगोंकी सरल चिकित्सा—लेखक : श्रीविट्ठलदास मोदी—रोगोंकी हर घरमें चल सकने लायक सरल चिकित्सा बतानेवाली अनुभव के आधारपर लिखी गयी प्रामाणिक पुस्तक। मूल्य दस रुपया।

५—प्राकृतिक जीवनकी ओर—लेखक—एडोल्फ जस्ट, अनुवादक—श्रीविट्ठलदास मोदी। मिट्टी, पानी, धूप, हवा और भोजनकी सहायतासे नये, पुराने सभी रोगोंको दूर करने तथा स्वास्थ्यको बढ़िया बनानेकी विधि

सिखानेवाली दुनियाकी सरलतम पुस्तक। मूल जर्मनसे अबतक इसके १४० भाषाओंमें अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। बढ़िया गेट अप। मूल्य छह रुपया।

६—उपवाससे लाभ—सम्पादक : श्रीविट्ठलदास मोदी। उपवासकी महिमा, उपवास करनेकी विधि और रोगोंके निवारणमें उपवासका स्थान बतानेवाली पुस्तकके रूपमें एक धर्मगुरु। मूल्य चार रुपया।

७—सर्दी-जुकाम-खांसी—सर्दी, जुकाम, खांसीका कारण तथा इन रोगोंकी चिकित्सा बतानेके साथ रोगोंका कारण, उनसे बचने और मुक्तिका रास्ता बतानेवाली सरल भाषामें लिखी गयी, एक अपूर्व पुस्तक। मूल्य दो रुपया।

८—आदर्श आहार—भोजनसे स्वास्थ्यका क्या संबंध है और भोजनमें थोड़ा-सा हेर-फ़ेर करके रोगका निवारण कैसे किया जा सकता है? यह विशद रूपसे बतानेवाला एक ज्ञानकोष। मूल्य तीन रुपया।

९—उठो—नदी समुद्रसे मिलनेपर जिस आनंदका अनुभव करती है, पक्षीको उड़नेमें जो आसानी होती है, पृथ्वीको पहली वर्षासे जिस तृप्तिकी प्राप्ति होती है, मुरझाये बिरवेको सूर्य-प्रकाशसे जो जीवनदान मिलता है, वह आनंद, आसानी, तृप्ति और जीवन, यदि आप एक साथ पाना चाहते हों तो उठो! पढ़िए। मूल्य है केवल दो रुपया।

१०—आहार-चिकित्सा—लेखक : श्री एरनोल्ड इहरिट। इहरिटकी बीमारी सांघातिक समझी जा रही थी। वे अपने आहार-चिकित्साके प्रयोगसे बिल्कुल स्वस्थ हो गये और इतने स्वस्थ हुए और अपना स्वास्थ्य इतना उन्नत कर लिया कि छप्पन घंटे लगातार चलकर उन्होंने अपने पुराने डाक्टरोंको चकित कर दिया और अब वह सारी विधि उन्होंने "आहार-चिकित्सा" पुस्तकमें लिख दी है। मूल्य चार रुपया।

११—दुग्ध-कल्प—ले० : श्रीविट्ठलदास मोदी (उत्तरप्रदेश सरकार-द्वारा पुरस्कृत) दूध शरीरको तो पुष्ट करता ही है रग-रग, नस-नसको

धोकर शरीरको निर्मल वना देता है और रोग इसके कल्पसे चले जाते हैं। इसकी विधि इस पुस्तकमें पढ़े और लाभ उठाएं। मूल्य दो रुपया।

१२—तंदुरुस्त कैसे रहें—लेखक/श्रीवर्नर मैकफैडेन। तंदुरुस्त रहना आसान है और तंदुरुस्ती वड़े आसान नियमोंमें वंधी हुई है। तंदुरुस्त कैसे रहें? पुस्तकमें इन्हीं नियमोंका विश्व-विख्यात स्वास्थ्य-शास्त्री श्रीवर्नर मैकफैडेनने वड़े सरल शब्दोंमें विवेचन किया है। इसे पढ़े। स्वस्थ रहनेकी कुंजी आपके हाथमें आ जायगी है। मूल्य पांच रुपया।

१३—कच्चा खानेकी कला—डा० सत्यप्रकाश। भोजन शास्त्रियोंका मत है कि स्वास्थ्यको उत्तम बनाये रखनेके लिए मनुष्य भोजनमें ५०% ऐसे खाद्य होने चाहिए जो आगके संपर्कमें न आये हों। इसके लिए हमें फल और कचुंवरका व्यवहार अधिकसे-अधिक करना चाहिए। पर पक्वाहार भी तो अपक्वाहारके संयोगसे स्वादिष्ट और स्वास्थ्यकर बनाया जा सकता है। यह कैसे। इस प्रश्नका उत्तर इस पुस्तकसे लें और अपने स्वास्थ्यको उन्नत बनानेकी ओर अग्रसर हों। बढ़िया छपाई-सुंदर दुरंगा कवर। मूल्य केवल दो रुपया।

१४—जल चिकित्सा—"कूने जस्ट और फादर क्नाइपने जो लिखा है, सबके लिए है और सब जगहोंके लिए है। वह सीधा है। उसे जानना हमारा धर्म है। कुदरती इलाज जाननेवालोंके पास उसकी थोड़ी-बहुत जानकारी होती है और होनी चाहिये"—गांधीजीका 'फादर क्नाइपने जो लिखा है' से संकेत क्नाइपकी इस पुस्तक जल-चिकित्सासे ही हैं। कूनेकी पुस्तक 'रोगोंकी की नयी चिकित्सा' जस्टकी पुस्तक 'प्राकृतिक जीवनकी ओर' पढ़कर लाखों व्यक्तियोंने अपनेको लाभान्वित किया है। और हजारों इन्हें पढ़कर लोगोंकी सफलतापूर्वक चिकित्सा कर रहे हैं। अब वे 'जल चिकित्सा' पढ़कर अपनी रोग निवारणको शक्तिकी वृद्धि कर सकते हैं। मूल्य चार रुपया।

१५—बढ़ो—लेखकः डा० कांतिकुमार । उठनेके लिये आवश्यक है कि आप अपनी मानसिक क्षमता बढ़ायें आत्मिक उन्नति करें । बढ़नेके लिए आवश्यक है शारीरिक क्षमता बढ़ायें । मन शरीरका संस्कार करें —व्यक्तित्वको उन्नत करें । सच्चे मित्रकी तरह यह पुस्तक इस दिशामें आपकी स्नेहपूर्वक सहायता करेगी । मूल्य तीन रुपया ।

१६—सुगठितशरीर—लेखकः डा० चतुर्भुज दास मोदी । सांड़की छाती, शेरकी कमर, सिंहकी छलांग देखकर आप कह उठते हैं ये सुंदर हैं । सौंदर्य अंग सौष्ठवका प्रतिफल है । आप स्त्री हों या पुरुष अपने अंग-अंगको सुगठित बनायें, आप अपनेमें शक्तिकी वृद्धिका तो अनुभव करेंगे ही आप सुंदर भी लगने लगेंगे । शरीरके प्रत्येक अंगकोसौष्ठव प्रदान करना एक कला है । 'सुगठित शरीर' पढ़ें आप इस कलाके पंडित हो जायेंगे । और यदि आप अपने अर्जित ज्ञानके अनुसार चले तो लोग आपके सुगठित शरीरको देखकर ईर्ष्या करेंगे । मूल्य आठ रुपया ।

१७—जीनेकी कला—लेखक : विट्ठलदास मोदी । यह पुस्तक आपका मानसिक बल बढ़ायेगी, स्मरण शक्ति तीव्र बनायेगी, चिन्ताओंसे मुक्त करेगी तथा आपके सामने वे सारे रहस्य खोलकर रख देगी जिनके जाननेके कारण वह व्यक्ति, जिसे आप बड़ा कहते हैं, बड़ा बना है । मूल्य चार रुपया ।

१८—उपवास चिकित्सा—ले० बर्नरमैकफैडेन—उपवास करने की वह सांगोपांग विधि दी गयी है जिसके अनुसार चलकर ही उपवासका पूरा-पूरा लाभ उठाया जा सकता है । मूल्य चार रुपया ।

१९—जीनेका मर्म—ले० डा० कांतिकुमार, एस०ए०, पीएच० डी०—जीते तो आप अवश्य हैं पर क्या जीनेका मर्म समझते हैं ? जीनेका मर्म समझिए, आपका जीवन रसमय हो जायेगा और आपकी खुशी बढ़ जायेगी । मूल्य चार रुपया ।

२०—आस्टियोपैथी सिद्धांत और व्यवहार —डाक्टर कृष्णमुरारी मोदी—। मूल्य दो रुपया।

—व्यवस्थापक, आरोग्य-ग्रंथमाला,
आरोग्य-कार्यालय, गोरखपुर

—:०:—

—: अगर आप चाहते हों :—

कि

- आपके घरभरका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहे,
- दवा-दारूसे पिंड छूटे,
- खान-पान, व्यायाम आदिके बारेमें जरूरी हिदायतें मिलें,
- भोजनसंबंधी खोजोंका नया-से नया ज्ञान प्राप्त हो,
- नामी प्राकृतिक चिकित्साकोंके, लेख पढ़नेको मिल,
- बिना दवा-दरपनके पुराने रोगोसे छुटकारा पाये हुओंके बयान उन्हींकी जबानी जान,
- 'आरोग्य-ग्रंथमाला' की पुस्तकें तीन चौथाई मूल्यपर मिलती रहें तो

"आरोग्य"

मासिकके ग्राहक बन जाइए। इसका हर अंक स्वतंत्र पुस्तककी भांति होता है। वार्षिक मूल्य १२)—एक अंकका १)।

व्यवस्थापक—आरोग्य, गोरखपुर (उ० प्र०)

आरोग्य-मंदिरके अन्य प्रकाशन

१. जल-चिकित्सा

२. बढ़ो

३. सर्दी-जुकाम-खाँसी

४. जीनेकी कला

५. प्राकृतिक जीवनकी ओर

६. उठो !

७. आदर्श आहार

८. उपवाससे लाभ

९. रोगोंकी नयी चिकित्सा

१०. योगासन

११. दुग्ध-कल्प

१२. आहार-चिकित्सा

१३. कच्चा खानेकी कला

१४. तंदुरुस्त कैसे रहूँ ?

१५. रोगोंकी सरल चिकित्सा

१६. सुगठित शरीर

१७. जीनेका मर्म

१८. उपवास चिकित्सा

१९. आस्टियोपैथी सिद्धांत और व्यवहार

इलाहाबाद लॉ जर्नल प्रेस, इलाहाबाद